ISSN 2350 – 1065 MUKTANCHAL
वर्ष 11:, अंक 41, जनवरी - मार्च 2024

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

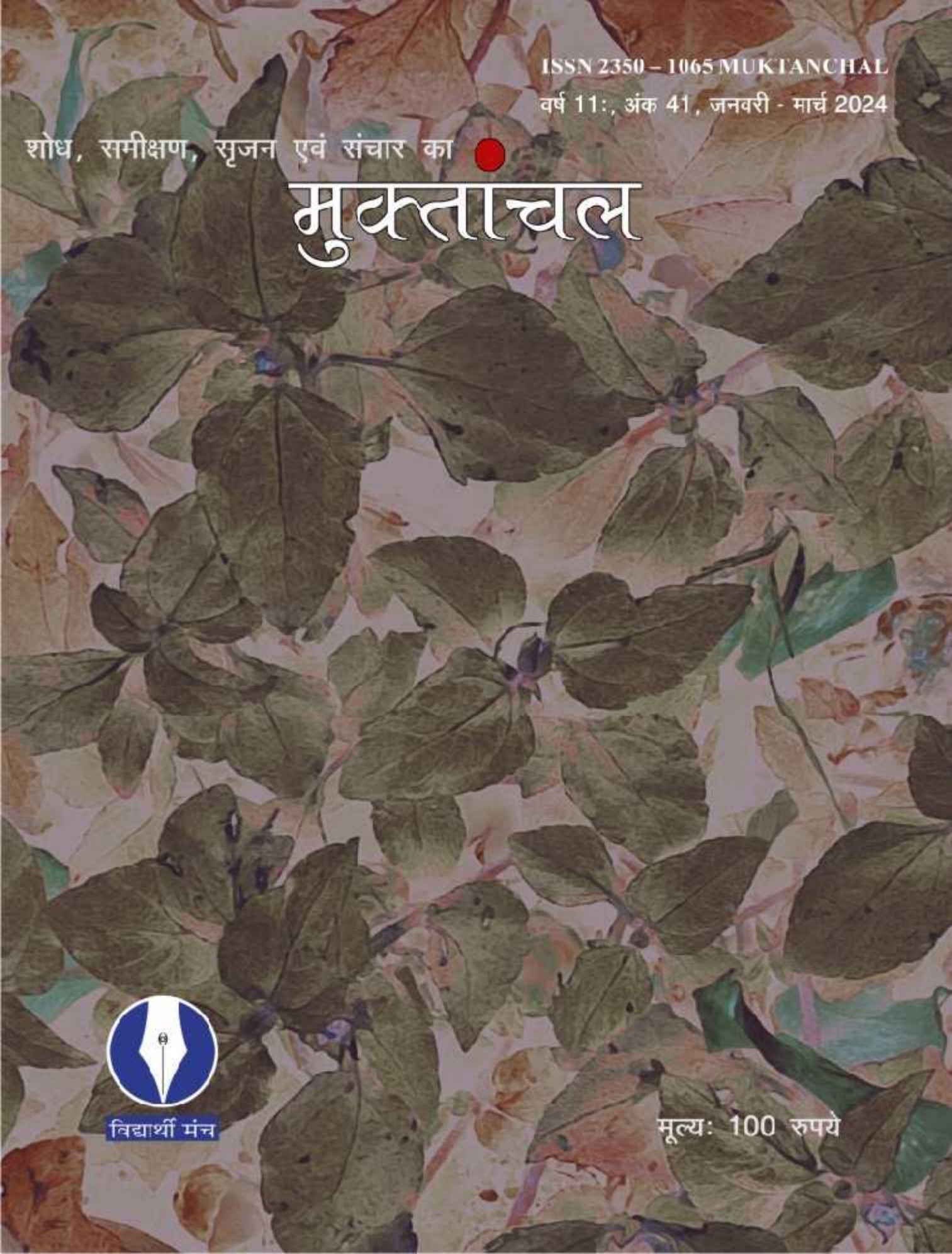

विद्यार्थी मंच

मूल्य: 100 रुपये

उस पार से.....

गजानन माधव मुक्तिबोध

(13 नवम्बर, 1917 - 11 सितम्बर, 1964)

मैं उन का ही होता

मैं उन का ही होता, जिन से मैंने रूप-भाव पाये हैं।
वे मेरे ही हिये बँधे हैं जो मर्यादाएँ लाये हैं।
मेरे शब्द, भाव उन के हैं,
मेरे पैर और पथ मेरा,
मेरा अन्त और अथ मेरा,
ऐसे किन्तु चाव उन के हैं।
मैं ऊँचा होता चलता हूँ
उन के ओछेपन से गिर-गिर;
उन के छिछलेपन से खुद-खुद,
मैं गहरा होता चलता हूँ।

- तार सप्तक, 1943

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

वर्ष-11, अंक - 41, जनवरी-मार्च 2024

संपादक : **डॉ. मीरा सिन्हा**

प्रकाशक : **विद्यार्थी मंच**

प्रबंध संपादक : **सुशील कुमार पांडेय**

कला संपादक : **शुभागता श्रीवास्तव**

परामर्श एवं विशेष सहयोग :

डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. अरुण कुमार : प्राक्तन प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यालय

डॉ. रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर

डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल : असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. मृत्युंजय पाण्डेय : सुरेंद्रनाथ कॉलेज, कोलकाता

डॉ. विनय कुमार मिश्र : प्राध्यापक, बंगबासी कॉलेज

डॉ. निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

डॉ. कृष्ण कुमार : अध्यक्ष, गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, (बर्मिंघम, यू.के.)

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :

विनोद यादव, विवेक लाल, विनीता लाल, सरिता खोवाला एवं परमजीत पंडित

संपर्क एवं प्रसार :

चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229

कुणाल किशोर (के.वि. हिमाचल प्रदेश): 7998837003

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

कार्यालय प्रभारी

बलराम साव - 8910783904, 03326751686

सम्पादक - 9831497320

प्रबन्ध सम्पादक - 9681105070

पीयर रिव्यूड टीम :

डॉ. धूपनाथ प्रसाद : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. विश्वजीत भद्र : प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रो. मोहम्मद फ़रियाद : प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद्र

प्रो. मंजु रानी सिंह : विश्वभारती, शांतिनिकेतन

प्रो. अरुण होता : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात

प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय

डॉ. सत्या उपाध्याय : प्राचार्य, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

डॉ. अंजनी कुमार झा : एसोसिएट प्रोफेसर, मीडिया स्टडीज, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK BURRABAZAR, KOLKATA- 700007, IFSC CODE- HDFC0000219

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन
सलकिया, हावड़ा-711106, पश्चिम बंगाल
संपर्क - 033-26751686, 9831497320, 9681105070
ई-मेल - muktanchalpatrika@gmail.com
sinhameera48@gmail.com

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य : एक अंक - 100 रुपये

सदस्यता शुल्क : वार्षिक- 600 रुपये, आजीवन-3000 रुपये

संस्थाओं के लिए : वार्षिक-600 रुपये, आजीवन-3500 रु.

डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

अवस्थिति

शोध समीक्षण सृजन संचार

06 संस्तुति

आलेख

07 डॉ. राणा प्रताप : कालिदास और निराला के बादल

12 डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल : शरद जोशी की व्यंग्य-रचनाओं में समसामयिक परिवेश और यथार्थ

20 डॉ. विनय कुमार मिश्र : खोर्खे लुई बोर्खेस : जादुई यथार्थवाद के पुरोधा

24 शिखर चंद जैन : चुनौतियों के दौर से गुजरता बाल साहित्य

अनुशीलन

26 पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : आत्मिक स्पन्दन की गूँजों से भरी गगन गिल की कविता : 'यह आकांक्षा समय नहीं' का सन्दर्भ!

31 सुषमा मुनीन्द्र : राजनारायण बोहरे का उपन्यास अस्थान

34 डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी : साधारण से असाधारण की यात्रा - रामनगीना मौर्य की कहानियाँ

गवेषणा

37 डॉ. अमरनाथ : हिन्दी के यूरोपीय वैयाकरण

44 पूनम सिंह : स्त्री साहित्य - बदलते परिप्रेक्ष्य

विमर्श

48 मयंक : तो क्या साहित्य की विधाओं का अस्तित्व ख़त्म हो रहा है!

संस्मृति

49 सुनीता गुप्ता : साहित्य की संजीवनी थीं उषा किरण खान

52 रंजना अरगड़े : सौन्दर्यात्मक हिंदी और हिंदी का सौन्दर्यः रमेश कुंतल मेघ

समय की शिला पर

54 ख़ुदेजा ख़ान : सहजता से कविता का पाठक तक पहुँचना ही उसकी सफलता है

सरगम के सुर साधे

57 मृत्युंजय श्रीवास्तव मानिक बच्छावत का काव्य-कैनवास

कविता

63 सरिता खोवाला : जीवट संगीत, रेत की नदी, नुकीला समय, भूख की पराकाष्ठा, जादुई यादें

65 तृषान्निता : मेरे जंगल की और एक माँ, समझौता,

66 अभिषेक पाण्डेय : खो चुका है आकाश, निस्संग नहीं होती कविता, घर की अन्तिम इच्छा, वे जो शोषित हैं

68 घुँघरू परमार : प्रार्थना की विधा, इच्छाएं

शोध समीक्षण

सृजन

संचार

कहानी

69 मनीष कुमार सिंह : सांझी छत

74 डॉ. कविता विकास : कतरे हुए पंख

77 रजनी शर्मा बस्तरिया: एक तालाब हजार जाल.....

व्यंग्य

82 डा.पंकज साहा : अंतरात्मा की आवाज

भाषांतर

83 मूल लेखक: कवि जय गोस्वामी अधीन 1, अधीन 2, सपने में, वर्षा जैसी

अनुवादक : मंजु श्रीवास्तव आर्द्र बांग्ला भाषा, सीधी बात, पानी की तरह साफ

यात्रा-पर्यटन

85 पूनम सिन्हा : ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय: एक अन्तर्यात्रा

88 अंजना वर्मा : जलप्रपात जो मन तक भिंगा देता है

प्रवासी कलम

92 अरूणा सब्बरवाल : थिरकती धुन

पुस्तकायन

97 डॉ. शशि शर्मा : पानी का पता के बहाने समकालीन समय की शिनाख्त

101 डॉ. मंजुरानी सिंह : गरिमा श्रीवास्तव का उपन्यास 'आउशवित्ज़ एक प्रेम कथा' पढ़ते हुए

शोधार्थी की कलम से

103 मनोहर कुमार कामती : समीक्षा की अवधारणा और कुँवर नारायण

107 ऋतु वर्णवाल : रवि कथा : साहित्यिक गलियारे की एक अनोखी प्रेमकथा

110 दुर्गावती प्रसाद: समकालीन हिंदी कवियों की कविता में स्त्री जीवन

116 अरुण कुमार तिवारी : प्रेम और राजनीतिक चेतना के कवि मदन कश्यप : पनसोखा है इन्द्रधनुष

साक्षात्कार

121 मोहन कुमार : नवगीत पर डॉ. शान्ति सुमन से मोहन कुमार का संवाद, डा. मोहन कुमार

गतिविधियाँ

126 विनोद यादव मुक्तांचल पत्रिका ने 10 वर्ष पूरे किए

127 डॉ. मनोज कुमार सिंह राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रतिवेदन

संस्तुति

मुक्तांचल-41 अपने प्रकाशन के दूसरे दशक का आरम्भक अंक है। इस अंक के साथ हम पहले से अधिक दुरुस्त कदम रखने की कोशिश में हैं। पत्रिका के स्वरुप में कोई बड़ा बदलाव नहीं हो रहा है लेकिन लचीलेपन के साथ विविध स्तम्भों में कुछ ताजगी की सिफारिश हो सकती है। आलेख, अनुशीलन, गवेषणा, विमर्श-के साथ-साथ सर्जनात्मक साहित्य के विविध स्वरुपों को भी भरसक समेटने की कोशिश की जाती रही है जो आगामी दिनों में भी जारी रहेगी। कई दशकों से हमारा साहित्य जगत कई तरह के सामाजिक विमर्शों की खदर-बदर से इतना अधिक आक्रान्त रहा है कि साहित्य के अपने मुद्दे कहीं गौण रह गये हैं। मुक्तांचल में कई-कई बार विविध विमर्शों की श्रृंखला को जारी रखने की कोशिश की गई है। हमने लगातार कविता के दो स्तम्भ चलाये हैं 'सरगम के सुर साधे' वरिष्ठ कवियों के द्वारा उनके वक्तव्य एवं परिचय के साथ कुछ अद्यतन कविताएँ तथा 'समय की शिला पर' पच्चीस-तीस वर्षों से लिखने वालों की कविताएँ वक्तव्य एवं परिचय के साथ प्रकाशित की जाती रहीं है। इस बार सरगम के सुर साधे के अन्तर्गत कवि एवं कविता के साथ प्रस्तुतिकार के रूप में तीसरा व्यक्ति भी शामिल है। कलकत्ते के वरिष्ठ कवि मानिक बच्छावत के काव्य-कैनवास को मृत्युंजय श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है जिसका अन्दाज बड़ा ही अनोखा है जो मन को छूकर ठहर जाता है क्योंकि, मृत्युंजय जी ने कैनवास में परिवेश और व्यक्तित्व को ऐसे गूँथ दिया है कि उसका स्वरुप समावेशी बन गया है जो सूचनाएँ तो बढ़ाता ही है स्मृति के माध्यम से आपसदारी के अंतरंग चित्र भी उकेर देता है।

पत्रिका की अवस्थिति में समेटी गई कहानी, कविता, व्यंग्य, भाषान्तर, साक्षात्कार और प्रवासी कलम भी यहाँ तक कि पर्यटन और पुस्तकायन के साथ गतिविधियाँ भी जो सिर्फ तालिका मात्र नहीं हैं बल्कि अपने कलेवर में साहित्य के विविध आयाम को समेटती हैं।

मुक्तांचल पर बात करते हुए इसके इस वर्ष के विशेष अंकों पर चर्चा कर लेना भी आवश्यक है। 2024 में दो विशेष अंक होंगे प्रथमतः मुक्तांचल - 43 जो डॉ. रमेश कुंतल मेघ के साहित्य संसार पर आलोकपात करेगा। मेघ जी का मुक्तांचल के साथ बड़ा अनन्य संबंध था अतः उनके महत्वपूर्ण आलेख मुक्तांचल को सहज ही प्राप्त हो जाते थे। यह अंक उनकी पुण्यतिथि 4 सितम्बर को स्मृति अंक के रूप में प्रसारित होगा।

मुक्तांचल का इस वर्ष का अन्तिम अंक अर्थात् अंक 44 लोक साहित्य विशेषांक होगा। इस विशेषांक के अतिथि सम्पादक होंगे विशिष्ट व्यंग्यकार, कथाकार एवं आलोचक डॉ. पंकज साहा।

मुक्तांचल के मार्च अंक में प्रायः स्त्री कलम को वरीयता दी जाती रही है। इस बार भी प्रायः विविध स्तम्भों में स्त्री अपनी लेखन की धार के साथ शामिल हैं। विशेष रुप से मैं मित्र पूनम सिंह जी का आभार मानती हूँ जिन्होंने अपनी समस्त असुविधाओं के बावजूद कोलकाता में स्त्री विमर्श पर दिये गये व्याख्यान को मेरे आग्रह पर गवेषणात्मक आलेख का रूप देकर 'स्त्री साहित्य नये परिप्रेक्ष्य' के नाम से भेज दिया। मित्रों का लेखकीय अनुदान मुक्तांचल की थाती है परन्तु मलाल एक ही बात का है कि जिनके खातिर यह सब कुछ हो रहा है वह युवा वर्ग झुण्ड और झण्डे की गफलत में ऐसे घिरे हैं कि उनके सामने धूल और धुंध के सिवा कुछ रह ही नहीं गया है।

संपादक

कालिदास और निराला के बादल

-डॉ. राणा प्रताप

पीढ़ी दर पीढ़ी - पूछेंगे लोग-मग
गाएंगे मेघराग।

- शील

कवि प्रकृति के पास क्यों जाता है? प्रकृति उसे क्यों अपनी ओर आकर्षित करती है? इसका उत्तर है कि प्रकृति से उसे सहज सौंदर्य की प्राप्ति होती है। मानव समाज की तरह ही जीवन की गतिशीलता का विराट रूप वहां मिलता है। मानव जीवन के प्रकृति के रिश्ते बहुत पुराने और दृढ़ हैं। दोनों के स्वतंत्र व्यक्तित्व हैं लेकिन फिर भी एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। हर युग के कवियों ने प्रकृति के सानिध्य में रहकर गरिमा की पहचान और परख की है। जिस कविता में प्रकृति और मानव के रिश्ते नहीं हैं, वह कविता अधूरी है।1

इस बात की जांच अगर भारतीय मनीषा से ही की जाए तो अथर्व वेद - 12-1-12 में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है – 'माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्यः' अर्थात् पृथ्वी को माता और स्वयं को पुत्र कहा गया है। यानी कि प्रकृति के साथ मनुष्य का रिश्ता सृष्टि के आरंभ से ही अटूट और अभिन्न बन गया था। इसलिए संवेदनशील कवियों का इस प्रकृति की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है।

यों भी भारतीय तन-मन पर मेघ छाया हुआ है। हमारी खेती-गिरस्ती उसी पर निर्भर है। अपना प्राचीनतम वाङ्मय 'वेद' मेघ-महिमा से मुखर है। यहाँ मेघ केवल आकाश में ही नहीं रहा, ऋचाओं की सवारी की है उसने। प्राकृत और पाली की गाथाएँ, संस्कृत के छंद, अपभ्रंशों के आख्यान, आंचलिक बोल, प्रादेशिक लोक कथाएँ, बिन्दुभास सौदामिनी वल्लभ मेघ महाराज की तरल करुणा से सिक्त है, हमारा समग्र वाग्वैभव!2

सखा भी है, साथी भी, वह हमारा भाई भी है, दादा भी। वह हमारा राजा भी है। साथ ही हम उसे लंगोटिया-यार भी मानते आये हैं। हम उसके प्रति इस कदर ढीठ हैं कि डांट-फटकार साधारण-सी बात हो जाती है। निराला ने बादल को 'विप्लव का वीर' बताकर उसकी एक क्रांतिकारी भूमिका भी स्पष्ट कर दी।3

वैज्ञानिक विवेचन के अनुसार मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं और संस्कृत साहित्य में भी उनके चार ही भेद हैं। अंग्रेजी नामों के ठीक पर्याय के रूप में तो नहीं, किंतु कुछ विशेषताओं के अनुसार संस्कृत नामों को उन नामों के समक्ष इस प्रकार माना जा सकता है –

(i) सिरस-cirxus - संस्कृत – पुष्कर
(ii) स्ट्रेटस-stratus - संस्कृत – आवर्त्तक
(iii) क्युमुलस-cumulus - संस्कृत – संवर्तक
(iv) निम्बस-nimbus - संस्कृत – द्रोण

पुष्कर मेघों में चित्रित वृष्टि अर्थात् ओले, बरफ आदि सूक्ष्म कणों का ढेर कहा गया है। सिरस मेघों की विशेषता है, ये सबसे अधिक ऊंचाई पर रहते हैं। द्रोण मेघों को अत्यंत जल बरसाने वाला कहा गया है। अतएव इन मेघों की तुलना अंग्रेजी के निम्बस मेघों से करना उचित ही है। क्युमुलस नामक मेघों में तूफान, गर्जन और घोर वृष्टि होती है। जिस समय वे आकाश में उठते हैं, प्रलय-सा मच जाता है। इन्हीं को पुराणों में संवर्तक मेघ कहा गया है जो प्रलय में जाकर वृष्टि के बंधे हुए संस्थान को तोड़-फोड़ डालते हैं। अतः इन्हें आवर्तक नाम से अभिहित किया गया है। भारत सरकार की तरफ से 1945 ई0 में प्रकाशित 'क्लाइड एटलस' भी इस मामले में द्रष्टव्य है।

मेघ का निर्माण कैसे होता है? वर्षा किस प्रकार होती है? इंद्रधनुषी पैदाइश क्योंकर होती है? बादलों का गरजना क्या है? आसमान में बिजली कैसे कौंधती है? आदि प्रश्नों का समाधान 'मेघों का वैज्ञानिक विवेचन' नामक निबंध में मिलता है। यह लेख सर्वप्रथम हिंदी साहित्य संघ, पटना द्वारा प्रकाशित-प्रचारित मासिक 'रश्मि' (हस्तलिखित) के मेघांक में छपा था। इस निबंध के लेखक द्वय पुरुषोत्तम प्रसाद ज्ञानी और कैलाश बिहारी प्रसाद दोनों सायंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना के प्रोफेसर थे।

संस्कृति वाङ्मय में महाकाव्यों की अपनी विशेष महत्ता और गरिमा रही है। भारतीय संस्कृति और चिंतना की ऊंची झलक इन्हीं महाकाव्यों में देखी जा सकती है। यह कहना अधिक समीचीन होगा कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति की जड़ इन्हीं महाकाव्यों में गहराई के साथ आरोपित हैं। इसमें कालिदास का अप्रतिम योगदान है। कालिदास का काव्य-जगत आकाश-सा विस्तृत, पर्वत-सा ऊंचा एवं सिंधु-सा गंभीर है। चराचर जीवन में जो कुछ सहज सौंदर्य हो सकता है, उसका सारतम भाग कालिदास के काव्य-सृजन में उपलब्ध है।

इस महाकवि के शाश्वत-मंडित काव्य-सृजन में 'मेघदूत' खंड काव्य होकर भी सर्वोत्कृष्ट है। यह एक सच्चे कवि-कलाकार का अनूठा सृजन है और विशद प्रतिभा का निष्कलुष प्रतिफलन। प्रकृति का शाश्वत सौंदर्य, जीवन का भोग-विलास एवं विरही मानव के अंतःस्थल में आकार बोने वाला विद्युतप्रभ भावना लोक तीनों इसमें साकार से हो उठे हैं। न जाने वह कौन-सा सौभाग्यशाली क्षण था, जिसमें उन्मुक्त प्रवाह के रूप में निर्झरित इस महाकवि का व्याकुल क्रंदन युग-जीवन का शाश्वत सौंदर्य-संवेदन एवं विरह-स्पंदन बन गया।

कहने को यों इस काव्य का नायक यक्ष है, परंतु मैं तो मेघ को ही कवि की विलक्षण कल्पना का नायक मानता हूं। विश्वविदित कुल में उसका जन्म हुआ। उसकी अंतरात्मा करुण एवं आर्द्र है। दान में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। वह काम रूप है, जब चाहे जैसा रूप धारण कर लेता है। वह प्रकृति-पुरुष है, असामान्य व्यक्तित्व वाला। वह ऐसी उत्तम कोटि का है कि उसके समक्ष हाथ फैलाते वक्त किसी को लज्जा या ग्लानि का अनुभव नहीं होता। संतप्त प्राणी उसी की शरण में आकर शांति प्राप्त करते हैं। इतना प्यारा है वह, इतना भला कि उससे अनुचित प्रार्थना भी की जा सकती है और चुपचाप मित्रों का काम कर लेता है। बिजली ठहरी मेघ की प्राण-वल्लभा, अलग तो वह होगी नहीं। कवि ने बीच-बीच में उसके बारे में कहा ही है। अंत में आशीर्वाद के समय में भी वह मेघप्रिया को याद करता है – या भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।

कवि कालिदास ने मेघ को प्रकृति-पुरुष के रूप में चित्रित किया है। मेघ की कुछ अपनी विशिष्टताएँ हैं जो इस प्रकार हैं –

1. वह मेघकुलों से संभूत है। अतः वह संतप्तों को शरण देने वाला है।

2. एक सुधी-सज्जन के सभी गुण उसमें वर्तमान हैं।

3. वह रसिक है, विनोदी है और सच्चे प्रेम का प्रतिदान देने वाला है।

4. वह कृषक-बंधुओं का प्रिय मित्र है।

5. वह अंधेरी रातों में अभिसारिकाओं का सम्मिलन कराने वाला मार्ग-दर्शक है।

6. वह चातकों की तृषा दूर करने वाला त्राटक है।

7. वह घरित्री की प्यास बुझाने के लिए वर्षा जल का कोष लुटाता है। अतः वह सबसे बड़ा कलेवर है।

8. वह परोपकारी है। अतः हिमालय की वानाग्नि प्रशमित करता है।

9. वह सच्चा मित्र है। अतः वह अपने परम रखा यक्ष का संदेश ले जाता है।

10. वह शिवभक्त भी है और यत्र-तत्र मंदिरों में उनके पुण्य-दर्शन के साथ ही उसकी पूजन-सामग्री बनती है, आर्द्र गजचर्म ओढ़ने की उनकी आकांक्षा पूर्ण करता है।

11. शंकर-पार्वती के शैल-विहार के लिए वह सोपान बनने का भी कार्य करता है।

अब, मैं आपको यह नहीं बताऊंगा कि 'मेघदूत' का रूसी संस्करण छपने पर क्यों आधे घंटे के भीतर सारी प्रतियां बिक गईं? रूसी पाठकों ने लाइन में लगकर 'मेघदूत' की प्रतियां खरीदीं। मैं आपको यह भी नहीं बतलाने वाला कि पंजाबी भाषा के क्रांतिकारी कवि पाश की डायरी में अपने प्रिय कवि के रूप में कालिदास का नाम क्यों अंकित था? नागार्जुन तो खैर अपने हैं। वे तो किसी पर भी फिदा हो सकते हैं। जब नक्सलाइट लड़कों का चुम्बन ले सकते हैं और बदले में अपना चुम्बन दे सकते हें तो कालिदास की कविताओं पर फिदा होना कौन-सी बड़ी बात है। उनका यह कहना बिल्कुल सही है कि 'मेघदूत' में कई प्रकार के मेघों की या मेघ के कितने स्वरूप की चर्चा आई हैं। कालिदास की कवि चेतना ऐसी अपूर्व और अनोखी थी कि उसमें मेघ के प्रायः सभी रूप समा गये हैं।

आधुनिक काव्य-साहित्य के क्षेत्र में हम सिर्फ एक महाकवि को जानते हैं, वह है निराला। मेघावी चिंतक और प्रतिभाशाली विचारक। रूढ़िभंजक, योद्धा और विप्लव

के वीर को आमंत्रित करने वाला क्रांतिकारी कवि। यथा नाम तथा गुण। निराला तो बस निराला ही हैं। यहां तक कि उनके नायक भी योद्धा हैं, कवि हैं, साधारण श्रमिक और सम्पत्तिहीन भिखारी हैं।

...तो उस निराला ने एक दिन स्वप्न देखा-ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बांह पर मेरा मस्तक है, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।4.

निराला आरंभ से ही स्वप्नशील थे। निद्रित अवस्था के अलावा जाग्रत अवस्था में भी सपने देखते थे। वह कल्पना के सहारे संघर्ष और वेदना का रूपांतर करके उदत्त चित्रण भी करते थे। उनमें भवभूति की तरह परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की अद्भुत क्षमता थी। अंतर्मन में उठती हुई भावधाराएं उन्हें नये-नये कल्पना-चित्र रखने पर विवश करती थी।5

फ्रायड ने कवि मन की तुलना बर्बर तथा असंतुलित मन को भावों के चित्त-विभ्रम से की है। कविता और बर्बर मानवों का जादू में विश्वास, दोनों का काफी निकट संबंध है। बल्कि गिल्कस के आधुनिक कविता पर भाषणों में तथा जार्ज रामसन की 'मार्क्सवाद और कविता' पुस्तिका में इस मान्यता को पुष्टि मिलती है।

कविता कुछ उच्च कोटि का जादू या वर्ण-चमत्कार है!

कला तथा दिवास्वप्न में कुछ इस प्रकार की शिशु-सुलभ सहजता, जादुई आभास का एक काल्पनिक, यक्ष-सृष्टि निर्मित करने की क्षमता, एक प्रकार चित्त-विभ्रम या आदिम भावावेगों की उद्दाम क्रीड़ा–समान रूप से उपस्थित है।

आधुनिक समय में कवि को सीजोफ्रेनिक भी कहा जाने लगा है। सीनोफ्रेनियां में व्यक्ति एक प्रकार के ऐसे यूटोपिया में जीता है, जहां सामान्य मनुष्य चाहकर भी नहीं पहुंच सकता। गोरख पांडेय को बाजाप्ता यह बीमारी थी और हमलोगों ने उनका इलाज आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में कराया था। इस बिना पर कहा जा सकता है कि निराला भी अवश्य सीजोफ्रेनिक रहे होंगे। उनके जीवन की सांध्यबेला भी यही कहती है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भी कहा है – "कविता के स्थापत्य सौंदर्य के नियामक-निराला के विवेक के अलावा-एक और शक्ति है, वह है उनकी स्वप्न-दृष्टि। आंखें खोले या मूंदे हुए आदमी सपने कई तरह के देखता है। कुछ सपने हल्के-फुल्के होते हैं, अस्थिर समीर-सागर पर सुख या दुख की छाया की तरह आये और उड़ते हुए चले गये। इन सपनों को जो भाव-शक्ति संचालित करती है, वह मात्रा में कम होती है। उसका स्तर भावुकतापूर्ण होता है। इस तरह के सपनों से साधारण जन परिचित होते हैं। इस तरह के सपनों से साधारण जन परिचित होते हैं। इसीलिए जो सपने बहुत देखता है, उसके बारे में लोग सोचते हैं कि उसका मनोबल क्षीण है। किंतु जो ऊर्जा विवेक को तीक्ष्ण करती है, वह सपनों को प्रत्यक्ष अनुभव की तरह सजीव भी बना सकती है। निराला में परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की अद्भुत प्रतिभा है। यह प्रतिभा यथार्थ-बोध की विरोधी हों, यह आवश्यक नहीं। निराला के स्वप्न में जहां बिखराव नहीं है, दृष्टि केंद्र-बद्ध है, केंद्र पार्श्वभूमि से संलग्न है, पार्श्वभूमि से हटकर केंद्र इधर-उधर घूमता नहीं, वहां उनकी निर्माण-कला अनुपम है।6"

हीगेल के 'ललित कलाओं के दर्शन शास्त्र' में कला के संबंध में निम्न सूत्र दिए गए हैं –

(i) कलाकृति प्रकृति की सृष्टि नहीं है। वह मनुष्य के माध्यम द्वारा अस्तित्व ग्रहण करती है।

(ii) मनुष्य द्वारा कलाकृति मनुष्य के लिए निर्मित होती है और इतना ही नहीं, बल्कि कम-अधिक प्रमाण में वह ऐंद्रिक साधनों द्वारा इंद्रियगम्य बनने के हेतु निर्मित होती है।

(iii) कलाकृति में उसका उद्देश्य उसकी प्रक्रिया में निहित रहता है।

(iv) कला में ऐंट्रिक रूप और स्वर केवल उन्हीं के लिए नहीं काम में लाए जाते। उनके द्वारा अधिक उदात्त और भावात्मक संतुष्टि की अपेक्षा रहती है।

(v) कला की नींव प्राकृतिक रूपों पर होती अवश्य है, परंतु वहीं तक कला का कार्य परिसीमित नहीं। कला अनुकरण नहीं, सृजन है।

निराला ने जानकी वल्लभ शास्त्री को लिखे पत्र में स्वयं कहा है कि "कला की जानकारी कालिदास को अधिक है, अगर कुछ गहन होते।"

काडवेल ने 'भ्रम और यथार्थ' में ठीक ही लिखा है कि "हमारी मांग केवल यह है कि तुम कला को जीवन से और जीवन को कला से बराबर मिलाओ। हम रचनाकारों से सिर्फ यह कहते हैं कि तुम नई दुनिया में जीओ, और अपनी आत्मा को पीछे मत छोड़ आओ अतीत में। हम

यह नहीं कहते कि कला के क्षेत्र में 'सर्वहारा का अधिनायकत्व' ही स्वीकार करो, हमारी मांग केवल इतनी है कि कला के क्षेत्र में तुम, ओ कलाकार! बहुजन, श्रमजीवियों के सच्चे नेता बनो।"

आप मानें या न मानें। निराला के बादल 'सर्वहारा अधिनायकत्व' के ही प्रतीक है। अरे, वर्ष के हर्ष! यह पहला संबोधन है बादल के लिए दूसरा, संबोधन-'चल रे चल, मेरे पागल बादल!' काटे को चल? राग अमर अम्बर में भरने के लिए चल। यह बादल राग भी 'गगन राग' से कम नहीं है। 'गगन-राग' वास्तव में सितारों का गीत है। कबीर ने अपने कई पदों में इसको बार-बार दोहराया है। मुस्लिम दार्शनिकों और सूफी कवियों के यहाँ वह कल्पना मौजूद है। इसका सूत्रपात यूनानी विचारक पाइथागोरस (Phythagorus) के इस सिद्धांत से हुआ कि ग्रहों की दूरी और उनकी गति का संतुलन संगीत के सिद्धांत की बुनियाद पर कायम है। मुस्लिम दार्शनिकों ने इसका यह अर्थ निकाला कि ग्रहों और नक्षत्रों से गीत उत्पन्न होता है जो खुदा की वंदना और स्तुति के लिए है। और इस गीत को आत्माएँ सुन सकती हैं। आदि नियम के चारों ओर घूमते हुए नक्षत्रों की परिक्रमा प्रेम का परिणाम है।7

धरती निदाध के ताप से जल उठी है, उसके हृदय को शीतल कर दो, धरती को नया जीवन, नयी कविता दो। यह नयी कविता क्या है? मुझे तो लगता है, जैसे कुछ आलोचकों ने गोर्की की कहानी 'बाज' को क्रांति के आवाहन का गद्य गीत कहा है, ठीक वैसे ही निराला की 'बादल राग' कविता नवजीवन के लिए क्रांति का आह्वान है, नयी कविता है। रामविलासजी भी कहते हैं, बादल सामाजिक क्रांति का प्रतीक है, निराला के प्रयोग में मौलिकता है। बादल-राग-6 में निराला ने वर्षा का भरा-पूरा चित्र दिया है। किसान के बिना यह चित्र अधूरा है। ऊपर है बादल, नीचे दलदल, नदिया, पर्वत, और उसके बीच में खेत, खेतों में शस्य अपार, अपार शब्दों के बीच हाड़ों का ढांचा लिए किसान। चित्र के अग्रभाग में समूचे परिवेश के साथ किसान है, पृष्ठभूमि अंगना अंग से लिपटे हुए घनी हैं जिसने उसका सार चूस लिया है। निराला के प्रतीक योजना में किसान और वर्षा दो अलग वस्तुएं न होकर एक ही यथार्थ के दो छोर हैं। बादल ध्वंसक और सर्जक दोनों है, निराला उसकी इस दोहरी कार्यवाही के बहाने सामाजिक क्रांतिकारी की दोहरी भूमिका चित्रित करते हैं।8

बादल की वज्र-हुंकार सुनकर संसार कांप उठता है, वज्रपात से बड़े-बड़े पर्वत क्षत-विक्षत हो जाते हैं, समाज के घनी-जन आंतक-अंक पर अपनी अंगनाओं में लिपटे रहने पर भी कांप उठते हैं, किंतु बादल का गर्जन सुनकर पृथ्वी के हृदय से सोते हुए अंकुर फूल पड़ते हैं, नये जीवन की आशा से वे बादल की ओर देखते हैं, छोटे पौधे वर्षा-जल पाकर लहलहा उठते हैं, वे बादल को संकेत से बुलाते हैं, बादल का जल अट्टालिका पर नहीं ठहरता, वह कीचड़ में पहुंचकर वहां कमल खिलाता है। बादल राग-6 कविता में क्रांति के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है।9

क्रांति का केंद्रीय प्रतीक है बादल। भयानक गर्मी के बाद उसके दर्शन होते हैं। ग्रीष्म का त्रास सामाजिक उत्पीड़न का प्रतीक बन जाता है। बादल राग का विप्लवी वीर जग के दग्ध हृदय पर अपनी छाप लेकर आता है। इसी तरह तप्त धरा के उर को वह शीतल करता है (अनामिका पृ. 82)। लू के झोंको से झुलसे हुए जनों को वह नया जीवन देता है (बेला, पृ.89)। वर्षा के साथ ग्रीष्म का अभिन्न संबंध है, ग्रीष्म के ताप से बादल का जन्म होता है, वर्षा के साथ नये पत्तों का आना, किसानों का खेत में हल चलाना, सारी पृथ्वी का हरियाली से ढंक जाना अन्य क्रियाएं हैं जो बादल को क्रांति का सार्थक प्रतीक बनाती है। किंतु निराला सारी बात प्रतीकों के माध्यम से ही नहीं कहते, बादल राग में धनी के साथ खेत में खड़ा दुर्बल किसान भी मौजूद है। अनेक रचनाओं में प्रतीक-योजना छोड़कर निराला सीधे जनता की बात करते हैं।10

निराला की क्रांतिकारी भावधारा का स्रोत उनकी गंभीर मानवीय करुणा में है। मुक्तिबोध के अनुसार करुणा क्रांति की जननी है। और क्रांति में नवजीवन के साथ धूल और खून भी मिला होता है, ऐसा लू शुन कहते हैं। बादल जब क्रांतिकारी भूमिका सम्पन्न करता है तब उसकी वज्र-हुंकार सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। किंतु उसके आगे वह आकाश से स्पर्धा करने वाले पर्वतों को 'अशनिपात' से क्षत-विक्षत भी कर देता है। जहां बादल का संबंध ललित कल्पना से है, वहां वज्र छिपा रहता है, केवल नवजीवन ही उसमें दिखाई देता है।

बादल राग–1 में गर्जन-तर्जन के साथ राग अमर अम्बर में भरने का कवि का इच्छित यथार्थ है।

बादल राग-2 में बादल भय के मायामय अंगन पर विप्लव का नव-जलधार बनकर आया है।

बादल राग-3 में कवि ने बादल को सेवा-पथ पर जाने वाले स्वर्ग के अभिलाषी वीर कहा है।

बादल राग-4 में अंधकार है, गंभर गर्जन है, किंतु आकाश भी है। दृश्य भयानक नहीं, सुखद है।

बादल राग-5 में कवि ने बादल की तुलना आंखों में काजल किये उस चपल-चंचल बालक से की है जो कभी-कभी किरण का हाथ पकड़ मुक्त गगन पर चढ़ने की कोशिश करता है।

बादल राग-6 में व्रजपात और जलप्लावन है किंतु हंसते हुए कमल भी हैं। अंधकार का अभाव है।

अंधकार का अभाव है। हो भी क्यों नहीं? कवि ने स्वयं अपने बारे में कहा है – 'मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश! जैसे नेरूदा कहते हैं –'

सचमुच मै हूं साझीदार
पृथ्वी पर प्रकाश फैलाने में।

अज्ञेय ने निराला को 'वस्त्र का अग्रदूत' और महादेवी ने 'विशिष्ट प्रतिभा' यूं ही नहीं कहा था। वैसे जोश मलीहाबादी और फिराक गोरखपुरी को निराला की 'वंसत का अग्रदूत' और महादेवी ने 'विशिष्ट प्रतिभा' यूं ही नहीं कहा था। वैसे जोश मलीहाबादी और फिराक गोरखपुरी को निराला की 'बादल छाए' कविता बहुत पसंद थी।

अंत में निराला के बादल की विशिष्टताओं का उल्लेख करना भी जरूरी है ताकि पाठकगण कालिदास और निराला के बादल की भिन्नता-अभिन्नता और सम्बद्धता को खुली आंखों से देख सकें।

1. वह कृषक का मित्र है और धरती पर हरियाली बिछाने वाला है। 2. निराला ने बादल को 'विप्लव का वीर' कहा है। यानी वह क्रांतिधर्मा है। 3. निराला ने बादल को 'जीवन का पारावार' कहा है।4. वह पौरुष का प्रतीक है। 5. वह 'अमर राग' का सर्जक यानी नाद् सौंदर्य का प्रतीक है। 6. वह धनकुबेर का शत्रु है। 7. निराला के बादल पागल हैं। स्वच्छंद हैं। त्रिलोकजित्। इंद्र धनुर्धर हैं। 8. निराला के बादल अनंत के चंचल सुकुमार। क्रीड़ा का अगार है। 9. वह इंद्रधनुष के सप्तकतार है। नयन अंजन है। 10. वह व्योम और जगती के उदार राग है। सुरबालाओं के लिए वह सुख का आगार है। 11. वह सेवाव्रती भी है।

संदर्भ :

1. कविता, मनुष्य और प्रकृति के रिश्तेः कुंवरपाल सिंह, कृति ओर-20, पृ.76. 2. चुनी हुई रचनाएंः नागार्जुन, पृ.78 3. नागार्जुन रचनावली-1, पृ. 538

4. निराला की साहित्य साधनाः रामविलास शर्मा, पृ. 450. 5. वही, पृ. 460 6. वही, पृ. 307 7. कबीर बानी : अली सरदार जाफरी, पृ. 170 8. निराला की साहित्य साधनाः रामविलास शर्मा, पृ. 413. 9. वही, पृ. 151 10. वही, पृ. 153

संपर्क : बंगाली कॉलोनी, पो. बेगमपुर, पटना सीटी, पी. 800009 **मो.** 9632639707

आलेख

शरद जोशी की व्यंग्य-रचनाओं में समसामयिक परिवेश और यथार्थ

- डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल

हिंदी व्यंग्य-परंपरा में शरद जोशी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। व्यंग्य करना सबके बस की बात नहीं है। इसके लिए व्यंग्यकार की दृष्टि व्यापक और गहरी होनी चाहिए। विसंगति रूपी आग में जलकर व्यंग्यकार को उन समस्त चुनौतियों और समस्याओं को सामने लाना पड़ता है, जिससे समाज त्रस्त है। समय-समय पर ऐसे अनेक युगद्रष्टा अवतरित होते हैं, जो अपने व्यंग्यास्त्रों से समाज को एक नयी गति और दिशा देते आये हैं। शरद जोशी के व्यंग्यों में जीवन के विविध पहलू देखने को मिलते हैं। 'सामाजिक विसंगतियों के बीच फंसे हुए व्यक्तियों के करुण रुदन की ध्वनि उनकी रचनाओं में सुनी जा सकती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि उनकी रचनाएं कमजोर लोगों की ताकत थी और मूक लोगों की आवाज। विसंगतियों के विरुद्ध कुछ न कर पाने वाला बेबस समाज उनकी रचनाओं के माध्यम से कुछ कह पाने का सुकून पा लेता था। अपने इस गुण के कारण वह सबके लिए प्रिय लेखक बन गए थे। उनकी व्यंग्य रचनाएं टूटते हुए जीवन- मूल्यों के प्रति उनके आक्रोश को अभिव्यक्त करती हैं। जब तक रचनाकार अपने जीवन में ईमानदार नहीं होगा, तब तक उसकी व्यंग्य रचनाओं में वह तीखापन नहीं आ सकता जैसा कि शरद जोशी की रचनाओं में था। उन्होंने अपने जीवन में प्रगतिवादी जीवन मूल्यों को अपनाया और उन्हें ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी।"1

इनकी व्यंग्य रचनाओं में आम आदमी के सरोकार हैं। इन्होंने देश के स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक परिवेश को अपने व्यंग्य का विषय बनाया। इन सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर शरद जोशी ने अपनी धारदार कलम चलाई। इनके व्यंग्य का दायरा बहुत व्यापक है।

जोशीजी ने समाज में कोढ़ रोग की तरह फैली दहेज प्रथा पर करारा व्यंग्य किया है। इनका मानना है कि इसका रूप दिन- पर- दिन इतना भयावह और विकराल होता जा रहा है, जिससे बाहर निकलना वर्तमान की मांग भी है और भविष्य की आवश्यकता भी। इस प्रथा के कारण न केवल लड़की बल्कि उसके समस्त परिवार का जीवन तबाह और बर्बाद होता जा रहा है। पहले की तुलना में आज इसका रूप कहीं अधिक भयंकर और विकृत हो गया है। लड़की का पिता लड़की के जन्म के साथ ही उसके दहेज को लेकर किस प्रकार के मानसिक तनाव से गुजरता है, उसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी अधिकांश रचनाओं में किया है। पिता शादी में लड़की का दान करता है। लेकिन यह दहेज रूपी दक्षिणा उसे न केवल आर्थिक चोट पहुंचाती है, बल्कि कभी-कभी तो इस दक्षिणा को चुकाते- चुकाते उसका पूरा जीवन ही खप जाता है। यह स्थिति अधिकांश परिवारों की है। शरद जोशी जी लिखते हैं- 'दान से दक्षिणा भारी पड़ती है। बेटी दान के साथ जो दक्षिणा देनी पड़ती है, वह भी आर्थिक गंजापन लाती है।"2

ऐसे कितने ही घर-परिवार हैं, जहां कम दहेज लाने के कारण लड़की पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं। कभी-कभी तो दहेज रूपी कोढ़ लड़की के प्राण भी निकल लेता है। शरद जोशी लिखते हैं- "पहले पति के मरने पर सती होती थी, अब दहेज न लाने पर जीते जी सती कर दी जाती है, घासलेट पर्याप्त है। घरेलू सेवा के लिए नौकरानियाँ मिल जाती हैं, सेक्स सस्ता है। फिर पूरा दहेज न लाने वाले उस लावारिस माल को वे क्यों न जला दें जिसे न बाप पूछता है न भाई।"3

शरद जोशी ने सुरसा के मुख के समान बढ़ती महंगाई पर भी अपनी लेखनी चलाई है। इनका मानना है कि स्वतंत्रता- पूर्व और आजादी के बाद की परिस्थितियों में आज तक कोई सुधार नहीं हुआ है। महंगाई के कारण निम्न वर्ग एवं मध्यमवर्ग निरंतर

अभाव और कष्टों में अपना जीवन काटने के लिए बाध्य है। इस महंगाई रूपी डायन को रोकने के लिए अनेक योजनाएं समय-समय पर सरकारों द्वारा लागू की जाती रही हैं। लेकिन वे समस्त प्रयास और उपाय असफल सिद्ध होते रहे हैं। महंगाई के बढ़ने से एक आम आदमी का जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है, इसका यथार्थ चित्रण करते हुए जोशी जी लिखते हैं- 'मामूली आदमी की चाय में शक्कर कम हो रही है, दाल में नमक कम हो रहा है, लालटेन में केरोसिन कम हो रहा है, अखबार में कागज कम हो रहे हैं, इसके किचन से वनस्पति गायब है। उसके बाथरूम से साबुन गायब है। सभी जगह समाजवाद की प्रतीक्षा में काम चलाना पड़ रहा है। देश प्रगति करेगा। देश प्रगति करेगा, तो हम साबुन से नहाएंगे। अभी तो कामना है कि नमक भर प्रगति कर ले। तीन रुपए किलो हो रहा है कमबख्त।"4

आज महंगाई के कारण आम आदमी केवल अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी की व्यवस्था कर पाता है। शिक्षा, चिकित्सा यहां तक कि धार्मिक, सांस्कृतिक कार्य को करने के लिए न उसके पास पैसे हैं और न ही संसाधन। इस बेचारगी को शरद जोशी इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं- 'आज गंगा के किनारे अपने पुरखों का तर्पण करते हुए उस व्यक्ति ने कहा... पुरखो, इस महंगाई में तुम्हारा श्राद्ध करना मेरे वश की बात नहीं है, तुम्हें मुक्ति मिले या न मिले, मुझे मुक्ति दो, मुझे मुक्ति दो।"5

आधुनिक युग में विज्ञापन का बहुत अधिक महत्व है। आज उत्पादक किसी भी वस्तु का उत्पादन करता है, तो उस वस्तु की लागत में विज्ञापन की लागत भी जोड़ देता है, जिससे उस वस्तु की कीमत बढ़ जाती है। उपभोक्ता के मन- मस्तिष्क पर वह विज्ञापन इस हद तक हावी हो जाता है कि दुकान पर जाने पर उसके मुंह से अनायास ही उस उत्पाद का नाम निकल जाता है, जिसकी गुणवत्ता की गारंटी वे लोग ले रहे हैं, जिन्होंने स्वयं उस उत्पाद का उपभोग किया भी है या नहीं यह कोई नहीं जानता। तरह-तरह के गुमराह करने वाले विज्ञापनों की आज भरमार है। इस पर तंज कसते हुए जोशी जी लिखते हैं- 'सहस्त्रों वर्ष की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परंपरा में श्रद्धा एवं विश्वास रखनेवाले व्यक्ति, यदि आज इस संकटपूर्ण स्थिति में जागरूक नहीं होंगे तो हमारी पुनीत, प्राचीन एवं नित नूतन संस्कृति हमारी मातृभूमि में सदा के लिए नष्ट हो जाएगी। राष्ट्र की अंतरात्मा एवं एकात्मता की रक्षा की आकांक्षा के समक्ष हमें जीवन के समग्र क्षेत्रों में जो पवित्र एवं श्रेष्ठ है उसे अपनाना होगा तथा राष्ट्र विरोधी एवं आसुरी शक्तियों को परास्त करना होगा। नकली साबुनों से बचकर आप इन राष्ट्र विरोधी एवं आसुरी शक्तियों को परास्त करेंगे जो आज साबुन निर्माण के पवित्र व्यवसाय को कलंकित कर रही हैं। श्रेष्ठ को अपनाइए। श्रेष्ठ है... सोप वर्क्स का... साबुन। बड़े बट्टे का मूल्य पैसे।"6

जनसंख्या-वृद्धि किसी भी देश के लिए एक चुनौतीपूर्ण स्थिति होती है। यदि देश को चलानेवाले लोग जनसंख्या को बुनियादी सुविधाएं दे पाने की स्थिति में हैं, तब वह वृद्धि आम जनता पर कुछ खास असर नहीं पैदा करती है, लेकिन यदि देश के कर्णधार जनता को उन सुविधाओं से वंचित कर देते हैं तब परिस्थिति विकट हो जाती है। भारत देश में जनसंख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। लेकिन देश में मूलभूत सुविधाओं का नितांत अभाव होने के कारण इसका भविष्य अंधकारमय है। जोशी जी ने लिखा है- 'जैसे आजादी के पहले यह बात बड़ी शान से कही जाती थी कि हम चालीस करोड़ भारतवासी हैं, मगर अब यह कहते हुए इतनी शर्म महसूस होती है कि हमारी संख्या इतनी ज्यादा है। कुछ लोग तो इस बात को बड़े अफसोस से व्यक्त करते हैं कि हमारा देश इतना लंबा चौड़ा है, फैला हुआ है। जब खाने को नहीं था, तब संख्या का अभिमान था, अब अन्न का उत्पादन बढ़ा तो समझ भी बढ़ी कि अपनी थाली के आसपास भीड़ बढ़ाना उज्ज्वल भविष्य की निशानी नहीं है। जो डूब मरने की बात है, उसके सहारे उबरने की कोशिश कर रहे थे।"7

मध्यमवर्गीय परिवार में दिखावे की प्रवृत्ति के कारण भी उनका जीवन अनेक समस्याओं और चुनौतियों से भरा रहता है। 'आमदनी अठन्नी, खर्चा रुपय्या' की मानसिकता अनेक परिवारों की मुश्किलों को बढ़ा देती है। परिवार की आर्थिक स्थिति जर्जर

हो जाने के कारण रिश्ते भी धीरे-धीरे दरकने लगते हैं। जोशी के शब्दों में-'आजादी के बाद भारतीय मध्यवर्ग खासतौर से इस प्रतियोगिता का शिकार हुआ। उसे इस पचड़े में फंसकर क्या मिला? डाइनिंग टेबुल, फ्रिज, टू- इन- वन, टी.वी., डनलपपिलो, ठंडी बीयर, फर्स्टक्लास में यात्रा, इम्पोर्टेड साड़ी और बुश्शर्ट, कान्वेंट के उच्चारण में बोलने वाली औरत, जो बाहर समाज में माधुर्य बिखेरती है और घर में छोटी बातों में तनाव उत्पन्न करती है। पार्टियां, चरित्रहीन लोगों से दोस्ती करने की मजबूरी। उसके सिर पर पड़ी दहेज की प्रथा, महंगी शादियाँ, बहुओं का जलना, बच्चों का पतन, अपने समाज से कटना, मां-बाप से दूरी और नफरत, बॉस की हद दर्जा खुशामद, मेहनत के बावजूद निरंतर सुरक्षा, बीमारी, हार्ट अटैक, नींद के लिए गोलियां, स्वाभिमान का अंत, बढ़ते अपराधों को सहन करना और उसके शिकार होना, ब्लैक और चोरी से कमाई, निरंतर बेईमानी, विशेष सामान घर पर न होने की अकुलाहट...।"8

शरद जोशी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में सफेदपोश नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है जिनकी कथनी और करनी में जमीन आसमान का अंतर होता है। ये नेतागण चुनाव के समय बड़े-बड़े वादे जनता के समक्ष रखते हैं लेकिन चुनावोपरांत ये समस्त दावे और वादे खोखले और निर्मूल सिद्ध होते हैं। ये श्वेत वस्त्रधारी नेता अपने अनैतिक कार्यों से न केवल जनता का शोषण करते हैं, बल्कि उन्हें ऐसे गर्त में धकेल देते हैं, जहां से निकलना उनके लिए संभव ही नहीं हो पाता। विकास के जिन दावों को लेकर ये चुनाव जीतते हैं, चुनावोपरांत वे समस्त दावे भुलाकर ये सिर्फ अपना ही घर भरने का प्रयास करने लगते हैं अपने स्वार्थ के लिए है अपनी ही समस्याओं में उलझे रहते हैं। यही कारण है कि जनता की समस्याएं इनकी आंखों से ओझल हो जाती हैं। जिस जनता ने अपनी समस्याओं के समाधान के लिए इन्हें विजयी बनाया था, ठगी हुई सी महसूस करती है। इस विडंबना को जोशी जी ने अपनी कई रचनाओं में दिखाया है। वे लिखते हैं –

'जितने छलछिद्र हैं, सामाजिक और आर्थिक जीवन में अनैतिकताएं हैं, श्वेत वस्त्रधारी नेता उनमें कहीं उलझा हुआ है। इस दशक की नैतिक प्रगति तो वह है कि अनैतिक कांडों का नायक या खलनायक भी प्रायः नेता ही होता है ।'9

चुनावोपरांत नेतागण किस प्रकार अपने कर्तव्यों और दायित्वों से मुंह मोड़ लेते हैं, इसके भी कई उदाहरण जोशी जी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। नेताओं के पास जनता की समस्यांओं का कमीशन रूपी समाधान होता है, जिसके सहारे ये अपनी जिम्मेदारियों से पलायन कर जाते हैं। इस तथ्य को जोशी जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

'यदि आप किसी नेता के सामने बहुत सारी समस्याएं एक साथ रख देंगे या एक ही समस्या के कई पहलू एक साथ उठा दें तो वह फौरन एक कमीशन बैठा देगा, विचार करने। ढेर सारा ज्ञान सामने रख विचार करने की बोरियत कौन पाले। नेता के पास इन झंझटों में पड़ने का समय कहां?"10

जिस प्रकार व्यापारी अपने उत्पाद का विज्ञापन द्वारा प्रचार-प्रसार करता है, उसी प्रकार नेतागण भी अपनी भाषण- कला के माध्यम से जनता को आकृष्ट करने का हर संभव प्रयास करते हैं। यह अपने भाषणों में झूठे वादे तो करते ही हैं, साथ- ही- साथ इनके दावों में तथ्यों का इतना ज्यादा अभाव रहता है कि वो चाह कर भी किसी के गले नहीं उतरते हैं। ऐसे ही एक नेता का भाषण द्रष्टव्य है- 'भाइयो और बहनो। ये जो पानी है, जिसे आप हम पीते हैं, जो नदी, कुआं, दरिया सबमें नजर आता है- यह दरअसल दो चीजों से मिलकर बना है। क्या हैं वे दो चीजें वो मैं आपको बताता हूं कि एक तो हुई ऑक्सीजन जो हम नाक से खींचते हैं। देखो जैसे मैं खींच रहा हूं। हमारे देश में ऑक्सीजन काफी है। दूसरी चीज है हाइड्रोजन। अमेरिका के पास हाइड्रोजन ज्यादा है जिसके वो बम बनाता है। भारत के पास भी हाइड्रोजन गैस है।... हम गैसों को ऐसे खोटे काम में नहीं लगाते।... तो वैज्ञानिक भाइयों, इन दोनों को मिला दो तो गंगा बह जाए। अगर आप लोग मशीन का डिजाइन तैयार करो तो गांव-गांव में फिट करवा

दें।... डिजाइन और मशीन तो देसी ही होनी चाहिए क्योंकि पुर्जे की प्रॉब्लम नहीं आती। तो अब हमें जल्दी से जल्दी पानी बनाने की मशीन बनाकर दिखाना है। हमारी नदियां सूख रही हैं। अगर हमारे पास मशीन हो, तो पानी बना- बनाकर सारी नदियां भर दें।"11

आज राजनेता इतने ज्यादा स्वार्थी और बेपरवाह हो गए हैं कि उन्हें जनता का दुःख, दर्द और कष्ट नजर नहीं आता है। राजनीतिक दल केवल अपनी स्वार्थ- सिद्धि के लिए राजनीति करते हैं, जनता के सरोकारों से उनका कोई लेना देना नहीं है। राजनेता भी यह जानते हैं कि जनता अपने कष्टों के निपटान के लिए उनका ही मुँह ताकेगी।यही कारण है बेपरवाही उनके रगों में पूरी तरह से भर गई है। समस्याओं की समाप्ति के स्थान पर ये नेता उनके बढ़ने की प्रतीक्षा में रहते हैं ताकि उन समस्याओं पर ये अपनी गंदी राजनीति कर सकें। 'नेता जानते हैं कि भ्रष्ट आर्थिक ताकतें जनता के लिए परेशानी पैदा करेंगी। मिलावट होगी, चीजें बाजार से गायब हो जाएंगी, दाम चढ़ जाएंगे, जीना मुहाल होगा। भ्रष्ट काले धंधों में लगे नव-दौलतिये जब प्रवृत्त होंगे तब नित नई समस्याएं खड़ी होंगी। वे प्रवृत्त हैं और समस्याएं खड़ी हैं। परेशानहाल जनता ऐसे में उनका मुंह ताकेगी, उनको आशाभरी निगाहों से देखेगी। बस हो गई राजनीति शुरू। नेता को यही तो चाहिए कि लोग उसके सामने मांगे रखें, गिड़गिड़ाएं और वह आश्वासन दे और उनकी भावना से खेल अपने वोट पक्के करें।"12

शरद जोशी ने तत्कालीन सत्ताधारियों पर जमकर प्रहार किया है। इन्होंने कांग्रेस की दुर्नीतियों पर जमकर प्रहार किया है। कांग्रेस के वंशवाद को बढ़ावा देने तथा उनपर सैद्धांतिक मूल्यों के हनन का आरोप लगाते हुए वे कहते हैं, 'कांग्रेस पुनर्जन्म का तमाशा है।... कांग्रेस एक हिमालय है, ऊँचे सिद्धांतों में वह जमता है, निजी स्वार्थों में पिघलता है। कांग्रेस एक फोरम है। इसमें जो माइक का किराया चुकाता है, उसे ही निरंतर भाषण देने का अधिकार है। कांग्रेस एक सक्रिय अखाड़ा है। जो जीतता है वह मुख्यमंत्री हो जाता है, मगर जो हारता है वह गवर्नर हो सकता है। कांग्रेस राष्ट्र की छाती पर एक अनिर्णित मुकदमा है। कांग्रेस एक सर्कस है, जिसमें कई करिश्में एक साथ जारी रहते हैं।"13

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यहां हर चीज की योजनाएं बनाई जाती हैं, लेकिन उन्हें पूरा करने में इतना वक्त लग जाता है कि वे योजनाएं सिर्फ कागजों में या फाइलों में धूल खाती नजर आती है। योजना के नाम पर लाखों- करोड़ों रुपए बुनियादी संरचना के लिए खर्च कर दिए जाते हैं। लेकिन जिन योजनाओं के लिए उन संसाधनों का निर्माण किया गया था वे कहीं नजर नहीं आती हैं। देश की अधिकांश परियोजनाएं इसी तरह अधूरी पड़ी रहती हैं और उसपर कितना अधिक धन-बल बर्बाद होता है, इसका कच्चा चिट्ठा शरद जोशी ने खोलकर रख दिया है,'सड़कें थी, बिजली थी, बाजार था, ऑफिस था, फोन था, जीप थी, देखकर अच्छा लगा कि बांध बनानेवालों के लिए सुखी जीवन जीने की समुचित व्यवस्था है। मैंने पूछा- बांध कितना बन गया? पता लगा कि बांध के लिए अभी मंजूरी नहीं आयी।"14

जब देश के रक्षक भक्षक बन जाएं, तब उस देश की प्रगति बाधक हो जाती है। हमारे देश के पुलिसकर्मी किस तरह अपने नैतिक मूल्यों से गिरकर भ्रष्टाचार और अनैतिक कार्यों में संलिप्त हो गए हैं, इसके अनेक उदाहरण जोशी जी की रचनाओं में जगह- जगह पर मिलते हैं। जनता, जो आंखें मूंदकर इनपर विश्वास करती है और यह सोचती है कि इनके रहते हमारे जान- माल की कोई हानि नहीं होगी, का भ्रम अब टूट रहा है। जोशी जी अपनी अनुभवजन्य टिप्पणी करते हुए लिखते हैं- 'वर्दी की महिमा है। खाकी बहार है, जो फिजाँ पर तारी रहती है। एक बाढ़ है, जिससे उम्मीद की जाती है कि वह खेत को नहीं खाएगी। सिपाही मेन रोड पर गश्त लगाता है। हम इस सुखद भ्रम में जीते हैं कि गलियों से कोई चोर जा नहीं रहा होगा। सिपाही का सबसे बड़ा लाभ मानव जाति को यह हुआ कि घटनाओं को दुर्घटना करार दिया जा सकता है, क्योंकि सिपाही के होते वह घटित नहीं होनी चाहिए थीं। रपट लिखाने को जगह है।"15

पुलिस इतनी अधिक निर्लज्ज हो चुकी है कि उसे मान- अपमान की कोई फिक्र नहीं है। वह इन सब चीजों से बहुत ऊपर उठ चुकी है। स्थिति यह है कि 'पुलिस पर गोलियां भी बेअसर होंगी। गालियां और आलोचना की तरह वे अपनी जगह से चलकर सिपाही का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगी। प्रकृति उस पर असर नहीं करती। पुलिस का सिपाही उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेगा कि न जल में मरे न थल में मरे और दोनों जगह दूसरों को मारे।"16

हमारे देश के यातायात- संसाधनों के खस्ताहाल पर भी जोशी जी ने करारा प्रहार किया है। इनपर सवारी कर व्यक्ति किस प्रकार जीवन और मृत्यु के बीच में झूलता रहता है, ऐसे कई उदाहरण हमें जोशी जी की रचनाओं में देखने को मिलते हैं। आजादी के इतने वर्षों में भी हम इस वस्तु-स्थिति को बदल नहीं पाए हैं। भारतीय रेल की दशा का चित्रण जोशी जी इन पंक्तियों में करते हैं-'भारतीय रेलें हमें जीवन और मृत्यु का दर्शन देती हैं। मैं तो सदैव हल्के रहकर यात्रा करता हूं। यहां तक कि मुझे टिकट ढोना भी भारी लगता है। मगर मजबूरी है। टिकट क्या है? देह धरे को दंड है। कई बार यात्रा में मुझे देह भारी लगने लगती है। भीड़ में दबा, कोने में सिमटा मैं सोचता हूं काश, यह शरीर न होता तो आज आत्मा कितने सुख से यात्रा करती।"17

यही अवस्था भारतीय बसों की है, जिसमें जानवरों की तरह व्यक्ति ठूँसे जाते हैं। चोर- उचक्के और जेबकतरों के लिए यह एक सुरक्षित जगह मानी जाती है। जहां यह अपनी कार्यकुशलता का परिचय देते हैं। ऐसा नहीं है कि जनता इन सब चीजों से परिचित नहीं है, बल्कि उसके पास अन्य विकल्प भी नहीं है। यही कारण है कि सच्चाई जानते हुए भी या यूं कहें परिणाम जानते हुए भी वह इन बसों में सफर करने के लिए मजबूर है। इसका भी चित्रण जोशी जी ने इस प्रकार किया है-'बसें चलने लगीं तो उसके साथ धक्का-मुक्की की एक संस्कृति पनप गई और कुछ ऐसे व्यवसाय भी, जिनकी सारी सफलता निजी प्रयत्नों पर निर्भर करती है। एक-आध पेशेवर जेबकतरा यात्रा की भंगिमा में बस स्टॉप पर खड़ा रहता है और बस आने पर होनेवाली भगदड़ में एक अच्छी भरी पूरी जेब पूर्ण नम्रता से साफ कर देता है।"18

आज साहित्य में अश्लीलता का बोलबाला हो गया है। इस साहित्य के पढ़ने वालों की कमी नहीं है इसका दायरा दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है यही कारण है कि इसके लेखक के साथ-साथ बढ़ते चले जा रहे हैं। प्रकाशक भी इस प्रकार समय के पुस्तकों का प्रकाशन कर अधिक से अधिक मुनाफा कमाते हैं। वे अपने लेखकों से ऐसी अश्लील और वाहियात लिखने के लिए बाध्य करते हैं। लेखक भी अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इस प्रकार पुस्तक का सृजन करने लगते हैं, जो समाज तथा देश के लिए अत्यंत ही हानिकारक हैं जोशी अपने व्यंग्यात्मक अंदाज में कहते हैं 'ठीक उन्हीं दिनों क्षीरसागर से महाकाल मंदिर तक जाने वाली उज्जयिनी के व्यस्त मार्ग पर एक पुस्तक विक्रेता हर शाम बैठता था, जिसके आसपास सदैव ग्राहकों की भीड़ लगी रहती। उसके पास कामशास्त्र, सती नारियों के चरित्र आदि के अतिरिक्त घुड़ीराज जासूस के कारनामों की विभिन्न पुस्तकों की मांग बढ़ चढ़कर रहती थी। दिनभर दरबार में बैठे कालिदास की कविताओं का गुणगान करने वाले दरबारी भी जब घर लौटते, तो फुटपाथ से ऐसी एक जासूसी पोथी खरीद लेते और वस्त्रों में छुपाए घर ले जाते। विक्रम की रानियां भी चुपके से वे पुस्तकें मंगवाती और तकिए के नीचे छुपाकर रखती। जब राजा आखेट को जाते, रानिवास में इन किताबों का सामूहिक पाठ होता।"19

लेखक प्रकाशकों के हाथों की कठपुतली बनकर रह गए हैं। वे आज के संदर्भ में समसामयिक समस्याओं और चुनौतियां से संबंधित पुस्तकों का सृजन न कर सिर्फ लाभ- प्राप्ति के लिए साहित्य- सृजन कर रहे हैं। वे अपने लेखन- धर्म से मुंह मोड़ समाज तथा देश का अहित कर रहे हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में तत्कालीन प्रसंगों का नितांत अभाव रहता है। उनकी रचनाएं सिर्फ पाठकों के मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह जाती हैं। कोई भी जीवनोपयोगी संदेश पाठक उस रचना से प्राप्त नहीं कर पाता है। जोशी जी लिखते हैं-'समूचा हिंदी

जगत तीन भागों में बंटा है। मेरे मित्र, मेरे शत्रु, और तीसरा वह भाग जो मुझसे अपरिचित है। सबसे बड़ा यही भाग है। यदि मित्र की पुस्तक हो तो उसके गुण गाने होते हैं। सुरक्षा करता हूं। शत्रु की पुस्तक के लिए छीछलेदार शब्दावली लेकर गिरा देता हूं। और तीसरे वर्ग की पुस्तक अक्सर बिना पढ़े निपटा देता हूं, या कभी-कभी कुछ सफै पढ़ लेता हूं। अपने प्रकाशक ने यदि किसी लेखक की पुस्तक छापी हो तो उसकी प्रशंसा करनी होती है। जिस पत्रिका में आलोचना देनी हो उसके गुट का ख्याल करना पड़ता है।"20

जोशी जी ने अपनी अनेक रचनाओं में आलोचकों को भी आड़े हाथों लिया है। कुछ तथाकथित आलोचक अपने आलोचना- धर्म का पालन न कर सिर्फ अपने परिचितों के साहित्य की वाहवाही करने तथा उसके साहित्य को ऊपर उठाने में अपनी कला का परिचय देते हैं। आलोचक को निष्पक्ष होना चाहिए। उसे पूर्वाग्रह से मुक्त होकर किसी पुस्तक की समालोचना करनी चाहिए। उसके द्वारा की गई निष्पक्ष आलोचना से न केवल उस साहित्य का महत्व बढ़ेगा, बल्कि उस साहित्य के नए आयाम भी दूसरों के लिए खुल जाएंगे। वह साहित्य पाठकों के लिए एक नई भूमि उत्पन्न करेगा। लेकिन ऐसा होता नहीं है। जोशी जी के शब्दों में-'वास्तव में साहित्य के विशाल गोदाम में घुसकर बेकार माल की छंटाई करना और अच्छे माल को शोकेस में रखवाना आलोचक का काम माना गया है, जिसे वह करता नहीं। वह इस चक्कर में रहता है कि अपने परिचितों और पंथवालों का माल रहने दे, बाकी सबका फिंकवा दे।"21

वर्तमान समय में आलोचकों और प्रकाशकों की मिलीभगत सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरी है। इनकी नीतियों ने जहाँ एक ओर अनुपयोगी रचनाओं को महत्व देकर उसे समाज में स्वीकृत कराने की चेष्टा की है, वहीं दूसरी ओर उपयोगी और सार्थक रचनाओं के साथ इन्होंने अपनी भेदभाव पूर्ण नीति अपनाकर उसे अस्वीकृत कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसी बहुत सी रचनाएँ पाठकों और समाज के समक्ष नहीं पहुँच सकीं। जोशी जी लिखते हैं- 'लेखक का साहित्य के विकास में महत्त्व है या नहीं है, यह विवादास्पद विषय हो सकता है, पर किसी साहित्यिक के विकास में किसी आलोचक का महत्व सर्वस्वीकृत है। साहित्य की वैतरणी तरना हो तो किसी आलोचक गैया की पूंछ पकड़ो, फिर सींग चलाने का काम उसका और यश बटोरने का काम कमलमुख का।"22

रजनीश ने एक बार कहा था कि 'अगर चर्चित होना चाहते हो, तो विवादित बोलो।' आलोचकों ने शायद इस उक्ति को पकड़ लिया है। यही कारण है कि अधिकांश आलोचक दूसरी रचनाओं की आलोचना के बहाने जिस तरह छीछालेदर करते हैं, यह बात किसी से छुपी नहीं है। कुछ आलोचक तो एक कदम आगे बढ़कर उस रचनाकार पर ही व्यक्तिगत आक्षेप लगाना शुरू कर देते हैं। यह सब करके उन्हें नाम और यश बहुत जल्दी ही प्राप्त हो जाते हैं। आज 'प्रसिद्धि का पथ साफ खुला है। स्वयं पुस्तक लिखकर नाम कमाइए अथवा दूसरे की पुस्तक पर विचार व्यक्त कर नाम कमाइए बल्कि कड़ी आलोचना करने से मौलिक लेखक से अधिक यश प्राप्त होता है।"23

आज के अहंवादी साहित्यकारों में यह भाव भर गया है कि उनसे अच्छा साहित्य कोई लिख नहीं सकता। अगर कोई नवांकुर लेखक उनसे कुछ सीखना चाहता है तो वे उसे सिखाने की बजाय हतोत्साहित करने से भी बाज नहीं आते हैं। उसकी रचना में नाना प्रकार की कमियों को उजागर कर एक तरह से उसे पथभ्रष्ट कर देते हैं। जोशी जी ने ऐसे अनेक साहित्यकारों को आड़े हाथों लिया है-'मैंने स्वयं ही बढ़िया- सा निबंध तैयार किया और कुछ विद्वानों के पास भेजा कि वे हस्ताक्षर भर कर दें। पर अहंवादियों को वह भी स्वीकार नहीं हुआ। एक भूमिका ऐसी भी आई जिसमें वे जनाब मुझसे ही असहमत थे... विषयवस्तु, शैली, भाषा आदि साधारण बातों में... और चाहते थे यह प्रकाशित हो जाए। बताइए लेखक से ही असहमत रहकर उसी की पुस्तक से अपनी बात कैसे कह सकते हैं। जाने क्यों मेरे प्रकाशक इस भूमिका से शतप्रतिशत सहमत नजर आते हैं।"24

धर्म के नाम पर ठगी आम बात है। भारत के जितने भी धार्मिक स्थल हैं, वहाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में धार्मिक बाह्याडंबर फैले हुए हैं। इन आडंबरों

के माध्यम से धार्मिक मठाधीशों की ठगी दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। कितने ही लोग इस ठगी का शिकार हो चुके हैं। लेकिन उनकी आवाज सुनने वाला कोई नहीं है। सरकार सब जानते हुए भी चुप है। ऐसे में इन ढोंगियों का आत्मबल भी बढ़ता जा रहा है, जो दूसरों को मोह- माया से दूर रहने की सलाह देते हैं लेकिन स्वयं इनकी पूजा-आराधना में तल्लीन दिखाई देते हैं। ऐसे पाखंडियों के रूप को जोशी जी इस प्रकार दर्शाते हैं- 'बंधुओ!... धन ही पाप का मूल है और उसे पास रखना बहुत बड़ी भूल है। रुपयों में सकल रोग और नोट में सारी खोट। सत्यनारायण के चरणों में माया डाल दो और दीप की ज्योति हृदय में बाल लो। आत्मा के प्रकाश के सम्मुख सोने चांदी का वैभव छोटा है। संत की कुटिया से कुबेर सदा निराश लौटा है। ध्यान रखिए और सम्मुख आई आरती का मान रखिए। इस लोक की अठन्नी और उस लोक का रुपया, जिसने न दिया दान पछताता रहा भैया। अहर्निश धन्यवाद बंधुओ। आरती का धन आपकी तृप्ति का, आत्म तृप्ति का परिमाण पत्र है बंधुओ। सत्यनारायण आपको सुखी और दुश्मन को दुखी रखे बंधुओ। झकाझक की थाली इधर ले आओ भैया वापस, थैंक यू वेरीगुड...। बोलो सत्यनारायण भगवान ...।"25

देश की चरमराती व्यवस्था से आम आदमी त्रस्त और बेहाल हो चुका है। जिन अधिकारियों को इन व्यवस्थाओं को संभालने की जिम्मेदारी दी जाती है, वही इसका दुरुपयोग कर अपना उल्लू सीधा करने लगते हैं। अपने अधिकारों का अनुचित लाभ उठाकर ये गरीबों और असहायों का शोषण करने लगते हैं। कई बार तो लोग समस्याओं से घिरे रहकर भी ऐसे लोगों दूर ही रहते हैं क्योंकि वे जानते हैं ये रीढ़विहीन लोग मदद के नाम पर उनकी मजबूरी का फायदा ही उठाएंगे। देश के बाबुओं की स्थिति इतनी शसक्त और प्रभावशाली है कि राजनेता भी ऐसे लोगों का बाल बांका नहीं कर पाते हैं। इसका कारण यह भी है कि ये स्वयं जनता का खून चूसने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं, तो अधिकारियों पर लगाम कैसे लगाएंगे। जोशीजी लिखते हैं- 'किसान ने हमें जाते देखकर राहत की सांस ली। जीप में काफी हरा चना ढेर पड़ा था। मैं खाने लगा,वे लोग भी खाने लगे। एकाएक मुझे लगा कि जीप पर तीन तीन इल्लियां सवार हैं जो खेतों की ओर चली जा रही हैं। तीन बड़ी बड़ी इल्लियां, सिर्फ तीन ही नहीं ऐसी हजारों इल्लियां हैं, लाखों इल्लियां सिर्फ यही चना ही नहीं खा रही,सब कुछ खाती हैं। और निश्शंक जीप पर सवार चली जा रही हैं।"26

हिन्दू जाति के अधःपतन का सबसे प्रमुख कारण उनकी धार्मिक कट्टरता है। वर्णाश्रम व्यवस्था ने इस कट्टरता को हवा दी है, जिससे इसका दुष्प्रभाव पूरे समाज पर पड़ा है। हिंदू आपस में ही एक दूसरे से लड़ने लगे हैं। एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं। यही कारण है कि धार्मिक तनाव समय-समय पर इनका अधिक बढ़ जाता है कि कई लोगों की जान चली जाती है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी इसमें गिरावट नहीं आयी है बल्कि इसका स्वरूप विकसित हो गया है। 'हिंदुओं की असल फिक्र यह नहीं है कि भंगी की श्रद्धा क्या है? उनकी असल फिक्र यह है कि वह अपने गंदे हाथों से कहीं हमारे पवित्र स्थल या देवता को न छू ले। हिंदुओं में शूद्रों के लिए केवल एक ही आचार संहिता बनाई गई है कि वे दूर रहें, हटकर बैठें, सामने न आएं, अपनी छाया न पड़ने दें, जूठन खाएं तथा बासी भोजन, फालतू सामान और कटे-कतरे कपड़ों को स्वीकार कर सेवा में डटे रहें। इसके अलावा हरिजनों के मामले में हजारों वर्षों के इस हिंदू चिंतन में कुछ और नहीं सोचा गया।"27

जोशी जी देश की आर्थिक- नीति पर भी जगह- जगह सवाल उठाते देखे जाते हैं। देश का विकास आर्थिक- उन्नति पर निर्भर करता है। लेकिन हमारा देश आर्थिक निर्भरता से कोसों दूर है। भारत में समय-समय पर इस निर्भरता की बात की जाती है, किंतु हमारी भ्रष्ट व्यवस्था उस निर्भरता के सामने रोड़ा बनकर खड़ी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि हम जिस लक्ष्य को पाने की कोशिश कर रहे थे, वह पीछे छूट जाता है। हम नैतिक रूप से इतने दिवालिये हो चुके हैं कि हमें अन्य देशों के सामने हाथ फैलाने में भी शर्म नहीं आती। हमारा देश पूरी तरह से भिखारी बना दिया गया है। 'वह

उसी उत्साह और कर्तव्यनिष्ठा से एक नयी आयी बस के सामने भीख मांग रहा था, जिस उत्साह से आजादी के इतने वर्ष बीतने के बाद हमारा देश आर्थिक सहायता मांगा करता है।आर्थिक सहायता मांगने, लेने, उस संबंध में कोशिश करने, मंसूबे बाँधने, तिकड़म जमाने की खबरें रोज ही पढ़ने को मिलती हैं। लगा रहता है भारत चौबीस घंटे किसी पराये देश की जेबें कटवाने में।हमें दो।पहले दिया था, फिर थोड़ा और दो।ज्यादा दो,कम दो, मगर दो। दान दो।दान न हो सके, तो कर्ज दो।बिन ब्याज का दो या ब्याज का दो,पर हमें दो। दो इसलिए कि हम भारत हैं।"28

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शरद जोशी की रचनाओं में जहां एक ओर समाज में व्याप्त विसंगतियों का पर्दाफाश देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर उन परिस्थितियों का सामना करती जनता की चीख- पुकार भी सुनाई देती है। आज हमारा देश और समाज अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है। कई बार हम उन्हें देखकर भी अनदेखा कर देते हैं लेकिन जोशी जी ऐसी ही चुनौतियों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। निश्चय ही ऐसे कलमकार युगद्रष्टा कहलाते हैं, जिनके योगदान को सदियों तक याद किया जाता है।

संदर्भ-ग्रंथः-

1. शरद जोशी, प्रतिदिन-एकःशरद जोशी प्रतिदिन एक के आवरण से। 2. शरद जोशी, परिक्रमा आदि मार्ग, पृष्ठ संख्या -126 3. शरद जोशी, प्रतिदिन, पृ.- 149 4. शरद जोशी, यथा संभव महंगाई और समाजवाद पृष्ठ संख्या-398 5. शरद जोशी, जादू की सरकार, महंगाई, पृ. 28 6. शरद जोशी, यथासंभव, पृ.128 7. शरद जोशी, यथासंभव, खूब गुजरे ये वर्ष, पृ. 71 8. शरद जोशी, यथासंभव, डिब्बे में बैठे लोग, पृ. 63 9. शरद जोशी, यथासंभव,पृ.17 10. शरद जोशी, यथासंभव, पृ.88 11. वही,पृ.91 12. शरद जोशी,यथासंभव, पृ. 18 13. शरद जोशी, प्रतिदिन, पृ. 25 14. शरद जोशी, प्रतिदिन, पृष्ठ संख्या 132 15. शरद जोशी, नावक के तीर, पृष्ठ संख्या 176 16. वही, पृ. संख्या 177 17. शरद जोशी, यथासंभव, पृ. सं. 176 18. शरद जोशी, मुद्रिका रहस्य, पृष्ठ संख्या 103 19. शरद जोशी, मुद्रिका रहस्य, 65 20. शरद जोशी, मैं, मैं और केवल मैं, पृष्ठ संख्या 78 21. शरद जोशी मैं, मैं और केवल मैं, पृष्ठ संख्या 69 22. वही, पृ. सं. 68 23. वही, पृष्ठ संख्या 71 24. शरद जोशी, मैं मैं और केवल मैं, पृ. 14 25. शरद जोशी, मुद्रिका रहस्य, पृ.125 26. शरद जोशी, जीप पर सवार इल्लियां, पृ. 32-33 27. शरद जोशी, यथासंभव, पृ.40-41 28. शरद जोशी,यथासंभव, पृ. 33

संपर्क : प्राध्यापक, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर-721305, **प. बं, मो.** 9932937094

खोर्खे लुई बोर्खेस : जादुई यथार्थवाद के पुरोधा

-विनय कुमार मिश्र

न्यूयार्क के एक अध्यापक एंजेल प्लोर्स ने 1955 में 'मैजिकल रियलिज्म इन स्पेनिश अमेरिकन फिक्शन' नामक लेख लिखा।इस लेख में उन्होंने बोर्खेस को वास्तविक जादुईयथार्थवादी कथाकार माना। उनका आग्रह है कि बोर्खेस का 1935 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'अ यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ इनफेम' (A Universal History of Infame) लैटिन अमेरीकी जादुईयथार्थवाद का पहला उदाहरण है।1 फ्लोर्स का मानना है कि जादुई यथार्थवाद यूरोपीय साहित्य से प्रभावित है। जादुई यथार्थवाद के पहले प्रयोक्ता जर्मन कला समीक्षक 'फ्रांज रोह' के प्रभाव को बोर्खेस ने प्रत्यक्ष रूप से कहीं नहीं स्वीकार किया है। लेकिन ऐस लगता है कि फ्रांज रोह के विचारों का प्रभाव 1932 ई. में प्रकाशित बोर्खेस के प्रभावशाली लेख 'नैरेटिव आर्ट ऐण्ड मैजिक' (Narrative Art and Magic) में स्पष्ट रूप से मौजूद है। यूरोपीय और लैटिन अमेरिकी सांस्कृतिक आंदोलनों से सकारात्मक तत्त्व ग्रहण करनेवाले बोर्खेस को जादुई यथार्थवादी कथाकारों के अग्रणी के रूप में देखा जाता है। सांस्कृतिक प्रभावों का मिश्रण जादुई का एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है।2

बोर्खेस पर यूरोपीय प्रभाव को कथाकार निर्मल वर्मा ने भी स्वीकार करते हुए लिखा है "बोर्खेस उन इने गिने लातिन अमेरिकी लेखकों में हैं जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति से बहुत कुछ ग्रहण किया है, जिन्हें सही अर्थों में 'एंग्लोफिल' लेखक कहा जा सकता है। अपने में यह दिलचस्प है 'और हल्की सी व्यंग्यात्मक भी कि जो अंग्रेजी लेखक खुद आज अपने देश में पुराने और अपठनीय हो चुके हैं' स्टीवेंस और चेस्टर्टन- बोर्खेस जैसे आधुनिक लेखक समय-समय पर उनके प्रति अपना आभार प्रकट करना नहीं भूलते।"3 बोर्खेस के लेखन की गुणवत्ता स्टीवेंस और चेस्टर्टन जैसे लेखकों के प्रभाव से ही बनी है।

बोर्खेस की 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ इनफेम' की कहानियों में एक उभरती हुई प्रतिभा नजर आती है। एक प्रशिक्षु नये क्षेत्र में अपने लिए राह तलाशता हुआ दिख रहा है। ये कहानियां गद्य के प्रति विरल चमक और मैलिकता को इंगित करती हैं, लेकिन इनमें कोई संगत विजन नहीं है।4 इन कहानियों में तथ्य, शिल्प या विचार के संगत या असंगत होने पर मतभेद भले हो लेकिन बोर्खेस के गद्य की पारदर्शिता और सघनता को प्रायः को स्वीकार किया जाता है। कीथ बास्टफोर्ड के शब्दों में कहा जाय तो 'बोर्खेस का गद्य कथनों और परिभाषाओं का गद्य है, यह विवरण और अनेकार्थता का गद्य नहीं-संक्षिप्त, स्पष्ट और सघन- यह अपने उद्देश्य में न्यायोचित लगता है।'5

बोर्खेस साहित्य में मौलिकता की बात को नकारते हैं। वे अपने फिक्शन (Fictions) कहानी संग्रह पर लिखते हुए कहते हैं कि 'मैं आश्चर्यचकित हूं कि इस पुस्तक में एक भी मैलिक पंक्ति नहीं है। मैं मानता हूं कि मैंने जो भी पंक्ति लिखा है उसका स्रोत पाया जा सकता है- मुझे ऐसा नहीं लगता है कि हम सृजन में उसी तरह सक्षम हैं, जिस तरह ईश्वर ने संसार का सृजन किया है।'6 बोर्खेस लेखन में वास्तविक और शुद्ध सृजन जैसी बातों को नहीं मानते।

बोर्खेस के लेखन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है 'स्मृति' को पुनः प्राप्त कैसे किया जाय। निर्मल वर्मा लिखते हैं, 'जो चीज बोर्खेस को परेशान करती है; वह 'आइडेंटिटी' का फैशन परस्त संकट नहीं है, आधुनिक बुद्धिजीवियों के 'संकट' बोर्खेस को त्रस्त नहीं करते। उनकी (बोर्खेस की) समस्या यह है कि किस तरह 'स्मृति' को दुबारा पाया जा सके, जिसे आदमी अपने अतीत के अंधेरे कोनों में छोड़कर हमेशा भूल जाता है। किन्तु जहां एक तरफ 'स्मृति' दुर्लभ हो जाती है, वहां दूसरी तरफ ऐसा भी होता है कि हमें जो 'भूल' जाना चाहिए वह भूलता नहीं, जब आदमी 'भूलना' भी भूल जाता है और स्मृतियां कुछ

इस तरह जमा होने लगती हैं मानों बहते हुए समय की धारा कहीं बीच में अटक गई हो। यह भयानक दुःस्वप्न की स्थिति है।'[7]

स्मृति जादुई यथार्थवाद का एक प्रमुख तत्व है। जादुई यथार्थवादी लेखकों ने अपने जीवन संसार के अनुभवों और स्मृतियों को अपने लेखन में शिद्दत से पिरोया है। आधुनिकतावादी 'आइडेंटिटी' के फेरे में स्मृति को 'सायास या अनायास- विस्मृत कर देते हैं, नष्ट कर देते हैं। बोर्खेस के रचना संसार के पात्र ऐसे हैं जिनकी स्मृतियों का भंडार विपुल है, लेकिन जिन्हें दबाया या छिपाया नहीं जा सकता। चिरस्मरणीय फुनेस (Funes, His Memory) कहानी में इरेनेमो फुनेस की स्मृति असाधारण है। वह कहता है, 'सृष्टि के आरंभ से आज तक सारी मानवजाति के पास जितनी स्मृतियाँ हों उनसे ज्यादा मेरे पास हैं।...मेरे स्वप्न आप लोगों के जगे वक्त की तरह हैं।...मेरी स्मृति जनाब किसी कूड़े के ढेर की तरह है।'[8] फुनेस के साथ वह समय बिताने के बाद कथावाचक को एहसास होता है कि 'वह (फुनेस) मुझे कांसे की किसी भव्य मूर्ति से अधिक विशाल, मिरर से अधिक प्राचीन, प्राफेटों और पिरामिडों से भी ज्यादा पुराना लगा। सोचा मेरा पुराना शब्द (प्रत्येक गतिविधि) उसकी कभी दबाई न जा सकती स्मृति में व्याप्त रहेगी।'[9] स्मृति को पाना और बचाना अपने अतीत और परंपरा को पुनः हासिल करना है। उपनिवेशवादी ताकतें गुलाम देशों के वर्तमान के साथ ही उसकी स्मृति को भी नष्ट करती हैं। जादुई यथार्थवाद में स्मृति, अतीत और परंपरा की अभिव्यक्ति प्रकारांतर से उपनिवेशवाद से मुक्ति का ही प्रयास है। इसलिए जादुई यथार्थवाद को उत्तर-औपनिवेशिक लेखन माना जाता है।

स्मृति की समस्या का संबंध समय से है। 'बोर्खेस की लगभग सब कहानियों में समय रेगिस्तान की तरह फैला है – अपनी समस्त मृगतृष्णाओं और मरीचिकाओं के साथ यथार्थ से अलग नहीं, लेकिन यथार्थ का हिस्सा भी नहीं।'[10]

बोर्खेस समय, स्मृति और ब्रह्माण्ड के सीमित और यथार्थवादी थीम का विरोध करते हुए अपरिमित थीम को अभिव्यक्त करते हैं। वे समय को खण्डों में नहीं बांटते हैं। A new refulation of Time लेख में वे लिखते हैं, 'कोई आदमी अब तक अतीत में नहीं जिया, कोई भविष्य में भी नहीं जियेगा, अकेला वर्तमान ही सभी जीवन का रूप है।'11 बोर्खेस की कहानी 'दो दो शाखाओं में बंटती राहों का बागीचा' की पंक्तिया हैं 'किसी आदमी के साथ जो कुछ होना हो ठीक उसी क्षण ही होता है। सदियां ही सदियां बीतें लेकिन बातें वर्तमान में ही घटती हैं, हवा में, धरती पर और समुद्र पर असंख्य आदमी लेकिन जो सबकुछ दरअसल हो रहा मेरे ही साथ हो रहा है।'12 बोर्खेस के समय के इस अवबोध को निर्मल वर्मा स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'बोर्खेस की दृष्टि में स्मरण करना अपने को धोखा देना है-क्योंकि ऐसी कोई चीज नहीं, जिसे हम अतीत कह सकें- या दूसरे शब्दों में अतीत केवल शाश्वत वर्तमान का ही अंश है, जहां उसका अलग अस्तित्व अर्थहीन हो जाता है।'13 बोर्खेस चूंकि समय को खंडों में विभाजित नहीं करते इसलिए क्षण की समानताओं को भी स्वीकार नहीं करते। 'एक क्षण दूसरे क्षण के समान नहीं है-वह हूबहू वही है जो पहला क्षण था।' जब दो क्षण बिल्कुल एक जैसे हों, तब समानता का प्रश्न ही नहीं उठता-जब आनेवाला क्षण एकदम वही हो, जो बीतने वाला क्षण था तब समय का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है।[14]

बोर्खेस के लेखन की महत्वपूर्ण थीम है-मानव अस्तित्व का भ्रामक चरित्र, भौतिक जगत की मायावी प्रकृति, तार्किक वैचारिकता के प्रति अनिवार्य स्वेच्छाचारिता, अपरिमित और अनंत संभावनाएं। बोर्खेस के कथा-लेखन की विशिष्ट युक्तियां हैं–जैसे मायावी (Illusionary) किताब के भीतर दूसरी किताब होती है और एक स्वप्निल (Fantasy) संसार जो जमीनी यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है।

बोर्खेस की कहानी 'बेवल की लाइब्रेरी' में 'लाईब्रेरी सीमाहीन और चक्रीय है।' लाईब्रेरी की एक-एक पुस्तकों में भिन्नता के बावजूद समानता है। लाईब्रेरी की 'सारी पुस्तकें चाहें कितनी ही भिन्न क्यों न हों, एक से तत्त्वों : स्पेस, काल, अल्पविराम, वर्णमाला के बाईस अक्षरों से ही बनीं हैं। उसने (विचारक ने) एक ऐसी बात और जोड़ दी जिसकी

मुसाफिरों ने ताइंद की : विशाल लाईब्रेरी में कोई-सी भी दो पुस्तकें एक सी नहीं हैं।'[15] बोर्खेस के रचना जगत में स्वप्न एक महत्वपूर्ण थीम है। बोर्खेस की सर्वप्रसिद्ध स्वप्न कथा 'गोल खंडहर' (The Circular Ruins) में नायक एक खंडहर मंदिर में जाता है, धीरे-धीरे एक आदमी को सपने में देखता है। उसके पश्चात सपना देखनेवाला कथा-नायक को एहसास होता है कि वह स्वयं भी किसी के सपने में देखा जा रहा है। खंडहर की चक्रीयता महत्वपूर्ण है। यह खंडहर अनंतता का प्रतिनिधि है। सपने के भीतर सपना, उसके भीतर फिर सपना...अनंत तक। यथार्थ पर निर्भर रहनेवाले साहित्य की तुलना में स्वप्न पर निर्भर करने वाले साहित्य में अनंत संभावनाएं हैं। और शायद इसीलिए इसकी संभावनाएं असीमित हैं। यह आशय एक तरह से बोर्खेस के सपनों की थीम की आधारभूत प्रस्तावना है, जहां सपना, संसार, समय और साहित्य एक ही इन्टिटी में विलीन होते हैं। जादुई यथार्थवाद की वैचारिकता के सूत्र बोर्खेस के लेखन में मौजूद हैं। एक जगह (समय के बारे में) बोर्खेस कहते हैं-समय वह पदार्थ है, जिससे मैं बना हूं। समय एक दरिया है जो मुझे बहाए ले चलता-लेकिन मैं दरिया हूं। वह चीता है जो मुझे चाड़ता-फाड़ता है-लेकिन मैं चीता हूं। वह आग है जो मुझे निगतली है-लेकिन मैं आग हूं। दुनिया दुर्भाग्यवश असली है-मैं दुर्भाग्यवश बोर्खेस हूं। इस पर निर्मल वर्मा की टिप्पणी है 'यह ठूंठा रहस्यवाद नहीं है। वास्तविकता को इतिहास के जालों से मुक्त करके अपनी शर्तों पर स्वीकार करना है। यह अपनी नियति को भी स्वीकार करना है, आकस्मिक तौर पर नहीं बल्कि एक उद्घाटित रहस्य की तरह।'[16]

जादुई यथार्थवाद लेखन शैली कहें तो एक तरह से 'भूलभूलैया' है, जो एक साथ बहुत सहज और जटिल हो जाती है। इस लेखन शैली का सृजन हर स्थिति में दुर्बोध होता है जो संवेदनशील, गहन और गंभीर सृजन शक्ति से ही संभव है। यह आकस्मिक नहीं है कि बोर्केस की प्रिय 'इमेज' भूलभूलैया है। 'दो दो शाखाओं में बंटती राहों का बागीचा' (The Garden of Forking Paths) में 'त्सुई पेन ने शायद एक बार कहा था : मैंने पुस्तक लिखने का इरादा छोड़ दिया है और दूसरी बार कहा : मेंने भूलभूलैया के निर्माण का इरादा छोड़ दिया है। हर किसी ने सोचा यह दो अलग-अलग काम होंगे; किसी के दिमाग में नहीं आया पुस्तक और भूलभूलैया दोनों एक ही चीज हैं।...त्सुई पेन का देहांत हो गया। चारों ओर उसके विशाल राज्य के किसी आदमी ने किसी भूलभूलैया का कभी कोई जिक्र नहीं किया : उपन्यास के ही भ्रांतिपूर्ण होने से मुझे संकेत मिला वही भूलभूलैया होगा। दो बातों से त्सुई पेन ने ऐसे भूलभूलैया के निर्माण की योजना बनाई जो वाकई अपरिमेय हो ऐसी किसी विचित्र दंत कथा से और जिसे मैंने खोजा उस खत के टुकड़े से समस्या का सही हल सूझ पड़ा।'[17]

बोर्खेस की वैचारिकता का प्रभाव लैटिन अमेरिकी लेखन पर स्पष्ट दिखता है। बोर्खेस साहित्य के सर्वप्रमुख अध्येता 'जैम अलजराकी' (Jaime Alazaraki) कहते हैं, 'बोर्खेस का प्रभाव मार्केस के उपन्यास 'एकांत के सौ वर्ष' में स्पष्ट ध्वनित होता है, जिस कहानी में काल्पनिक परिवार-'बुएनदीया', कल्पित समुदाय 'मकांडो' के बारे में इतनी कुशलता के बारे में बताया गया है कि यह समूचे लैटिन अमेरिका का संसार बन गया है-पौराणिकता मिथक, इतिहास और पूरे महादेश के जादू को साथ लेते हुए।"[18]

वास्तविकता और कल्पना की अदला-बदली – बोर्खेस की कथा-युक्ति का एक स्थाई लक्षण माना जा सकता है। बोर्खेस की कहानी Theme of the Traitor and the Hero में रयाना, फरगुस का परनाती उस हत्यारे की जीवनी लिख रहा होता है। कथा के अंत में उसे आभास होता है कि उसने ही हत्या का प्लाट बुना है। मार्केस के उपन्यास 'एकांत के सौ वर्ष' के औरेलियानो सेगुंदो की तरह, जो पांडुलिपि के अंतिम पृष्ठों का आशय निकालते हुए समझता है कि वह स्वयं भी उस कहानी का हिस्सा है। उसी तरह रयान को पता लगता है कि हत्या की योजना में वह भी एक प्रमुख किरदार है।

मार्केस के उपन्यास में औरेलियानो को लगता है कि पांडुलिपि में 'मेल्कीभादेस ने घटनाओं को मनुष्य के परम्परागत समय के क्रम में नहीं डाला था,

बल्कि एक सौ साल के दैनिक वृतांतों को इस तरह से सांद्रित कर दिया था कि वे सब एक ही क्षण में सहवर्ती हों।'[19] समय की इस अवधारणा को बोर्खेस के संबंध में याद करना कठिन नहीं है। The Aleph में वे लिखते हैं 'एक विशाल तात्कालिक समय में मैंने देखा कि लाखों-हर्षदायक और भयानक दोनों तरह की घटनाएं देखीं। इसमें कोई भी मुझे अचंभित नहीं की, सिवाय इसके कि वे सभी पूरे ब्रह्माण्ड में एक बिंदु पर हो रही हैं, बिना एक दूसरे को overlap किए।'[20]

बोर्खेस की लेखन शैली, शिल्प, टेकनीक का जादुई यथार्थवादी लेखन पर साफ प्रभाव देखा जाता है। समय, स्मृति, अतीत, स्वप्न से संबंधित विचारों को बोर्खेस के परवर्ती लेखन में कई जगह सीधे-सीधे अपनाया गया है। यह अनायास नहीं है कि बोर्खेस को जादुई यधार्थवादी लेखन के पुरोधा या प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

संदर्भ सूची :

1. Bower, Maggie Ann : Magic(al) Realism, Routledge, London : 2004, page-16 2. वही, पृ.18 3. वर्मा, निर्मल : सर्जना पथ के सहयात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करणः 2006, पृ. 108 4. Gene. H. Belle-Villada : Barges and his fiction, The University of North Carolina Press: 1981, page-62 5. Alazaraki, Jaime : Barges and the Kabbalah, Cambridge University Press : 1998, page-82 6. Stark, John O. : The literature of Exhaustion, Duke University Press : 1974, page-12 7. वर्मा, निर्मल : सर्जना पथ के सहयात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करणः 2006, पृ. 108 8. बोर्खेस, खोर्खे लुई : चाकू, आईने और भूलभूलैया, अनुवाद : इंद्रप्रकाश कानूनगो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2001, पृ. 105-106 9. वही, पृ.108 10. वर्मा, निर्मल : सर्जना पथ के सहयात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करणः 2006, पृ. 110 11. Stark, John O. : The literature of Exhaustion , Duke University Press : 1974, page-32 12. बोर्खेस, खोर्खे लुई : चाकू, आईने और भूलभूलैया, अनुवाद : इंद्रप्रकाश कानूनगो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2001, पृ. 86 13. वर्मा, निर्मल : सर्जना पथ के सहयात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करणः 2006, पृ. 110 14. वही, पृ. 111 15. बोर्खेस, खोर्खे लुई : चाकू, आईने और भूलभूलैया, अनुवाद : इंद्रप्रकाश कानूनगो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2001, पृ. 97 16. वर्मा, निर्मल : सर्जना पथ के सहयात्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करणः 2006, पृ. 113 17. बोर्खेस, खोर्खे लुई : चाकू, आईने और भूलभूलैया, अनुवाद : इंद्रप्रकाश कानूनगो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2001, पृ. 91 18. Alazaraki, Jaime : Barges and the Kabbalah, Cambridge University Press : 1998, page-153 19. मार्केज, गाब्रिएल गार्सिया : एकांत के सौ वर्ष, अनुवाद : सोन्या सुरभि गुप्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2003, पृ. 375 20. Alazaraki, Jaime : Barges and the Kabbalah, Cambridge University Press : 1998, page-154

संपर्क : क्षेत्रा चटर्जी लेन, बंधाघाट, सलकिया, हावड़ा-711106, **मो.**+919748085097

चुनौतियों के दौर से गुजरता बाल साहित्य

-शिखर चंद जैन

सूचनाओं की अनावश्यक बौछार और इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स (स्मार्टफोन,लैपटॉप,आई पॉड)के इस तकनीकी युग में क्या पुरुष ,क्या महिलाएं ,क्या बुजुर्ग, अधेड़ या युवा और क्या बच्चे ...हर कोई दिन-रात व्यस्त रहने लगा है । 24 घंटे चलते टीवी चैनलों के फूहड़ व अर्थहीन कार्यक्रमों ,घिसेपिटे समाचारों का दोहराव, व्हाट्सएप, फेसबुक या इंस्टाग्राम जैसे सोशलमीडिया प्लेटफॉर्म पर पल पल मिलते नोटिफिकेशन, अनाप-शनाप वीडियो क्लिप्स और फोटोशॉप किये चित्रों की ओवरडोज से हम दब से गए हैं। ज्यादातर अनावश्यक व अर्थहीन और तर्कहीन संदेशों को पढ़ने और उन्हें फॉरवर्ड करके झूठी वाहवाही लूटने में हर कोई उलझ कर रह गया है । ऐसे में स्वस्थ मनोरंजन की क्या कहें, लोग अपने जरूरी काम भी कई बार पूरे नहीं कर पाते। लोगों की कार्य-क्षमता और कार्य-कुशलता पर तो इसका प्रतिकूल असर पड़ा ही है, उनकी आदतों में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है।

यही हाल बच्चों का भी है। पहले बच्चे या उनके माता-पिता अपने दैनिक कामकाज या पढ़ाई लिखाई से फारिग होकर अपने आराम के पलों में टीवी पर एकाध सोप ओपेरा या कुछ देर समाचार देखते थे और फिर अखबार, सुरुचिपूर्ण साहित्य, साहित्यिक-पारिवारिक पत्रिकाएं, बाल पत्रिकाएं, कॉमिक्स, उपन्यास या बाल उपन्यास पढ़ते थे। लेकिन अब स्थिति पूरी तरह बदल चुकी है। तमाम माध्यमों से हर पल आने वाले समाचारों व वीडियोज ने समाचार पत्रों को अप्रासंगिक बना दिया है ।बच्चों पर पढ़ाई का दबाव बढ़ा है ।मार्क्स और रैंक हासिल करने की प्रतिद्वंदिता इतनी कठोर हो चुकी है कि 98 फीसदी नंबर पाकर भी बच्चों में संतुष्टि का भाव नहीं दीखता ।

ऐसे में बच्चों को एक तो अपने पाठ्यक्रम से इतर पुस्तकें या पाठ पत्रिकाएं पढ़ने का समय नहीं मिलता और थोड़ा बहुत समय मिलता भी है और वे रुचि लेने की कोशिश करते हैं तो उन्हें मनपसंद पठन सामग्री नहीं मिल पाती। अखबारों में बाल पृष्ठ या तो हैं ही नहीं या कुछ गिने-चुने अखबारों में आधा या चौथाई पेज दिया भी जाता है, तो उसमें रोचक, मौलिक, सार्थक, मनोरंजक और उपयोगी कुछ पढ़ने को नहीं मिलता। कुछ अखबार पजल्स से स्पेस भरते हैं, तो कुछ हर महीने दो महीने बाद एक जैसी कहानियां या प्रेरक प्रसंग इंटरनेट से उठा कर चेपते रहते हैं। संपादक बच्चों की सामग्री को गंभीरता से लेता ही नहीं, इसलिए उसे याद भी नहीं रहता कि यही सामग्री वह दो महीने पहले छाप चुका है। इस प्रकार बच्चों और बड़ों की रूचि उनमें खत्म हो गई है।

पाठक वर्ग को हम दोष तो देते हैं कि लोग साहित्य न खुद पढ़ते हैं, न अपने बच्चों को देते हैं। लेकिन इसके लिए प्रकाशक और लेखक भी कम दोषी नहीं। वे समय के साथ न ढर्रा बदलना चाहते हैं और न ही अपनी सोच। आजकल साहित्य के नाम पर अपनी बौद्धिकता बच्चों पर थोपी जाती है। आजकल के बच्चों का बौद्धिक स्तर, उनकी जरूरतें, उनकी सोच और उनका बाह्य वातावरण पूरी तरह बदल चुका है। वे 30- 35 साल पहले के बच्चों जैसे अबोध, नासमझ और सामान्य नहीं रहे। न ही उनके पास उस कालखंड के बच्चों जितना अतिरिक्त समय है। अब बाल पॉकेट बुक्स (बाल उपन्यास) की बात छोड़िए, उनके पास लंबी-लंबी कहानियां पढ़ने का भी न समय है, न धैर्य और न ही शौक।

ऐसी परिस्थिति में बच्चों को कैसा साहित्य और सामग्री देनी चाहिए यह चिंतन का विषय है। इस विषय पर पत्र पत्रिकाओं के संपादकों व लेखकों को गहराई से मंथन और शोध करने की जरूरत है। जहां तक मेरा विचार है ,बच्चों को परोसे जाने वाली सामग्री के लिए इन बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए।

कहानी, कविता, नाटक, एकांकी, गीत, पहेलियां, पत्र लेखन या आत्मकथाएं आदि ऐसे हों जो बच्चों को भरपूर मनोरंजन के साथ-साथ कोई सार्थक या उपयोगी संदेश भी प्रेषित करते हैं ।

पुस्तक या पत्रिका की सामग्री से बच्चों को क्रिएटिव बनने की प्रेरणा मिलती हो। इनमें थ्योरी की बजाय कुछ प्रैक्टिकल करने का आईडिया मिले। आईडिया ऐसा हो जो सहजता पूर्वक आजमाया जा सके न कि माता-पिता के लिए सिरदर्द पैदा करने वाला हो ।

बाल पत्रिकाओं की सामग्री में विविधता हो, नयापन हो ,हमारी सांस्कृतिक विरासत, नैतिक मूल्यों की जानकारी के साथ आधुनिक युग में प्रचलित उपकरणों, उनके उपयोग, नए आविष्कार, नई तकनीक आदि की विवेचना, अद्यतन जानकारी आदि भी साहित्य के माध्यम से मिले। कुछ ऐसी पत्रिकाएँ हैं भी,जो उम्मीद जगाने वाली हैं। जैसे संचय जैन जी व प्रकाश तातेड़ जी के संपादन में राजस्थान से बालपत्रिका 'बच्चों का देश' निकल रही है। मध्य प्रदेश से दैनिक भास्कर की बाल पत्रिका 'बाल भास्कर' इंदिरा त्रिवेदी जी के संपादन में निकल रही है। बिहार भवन की पत्रिका 'बाल किलकारी' जो शिवदयाल जी के संपादन में आ रही है, कभी सबसे ज्यादा प्रसार संख्या का दर्जा हासिल कर चुकी, इंदौर से निकलने वाली गोपाल माहेश्वरी जी द्वारा संपादित 'देवपुत्र' और उत्तरप्रदेश से 'बाल वाणी' जिसकी संपादक अमिता दुबे जी हैं। इन पत्रिकाओं के संपादक सामग्री के चयन में बहुत खुले दिल से काम लेते हैं। सामग्री देखकर सहज ही समझा जा सकता है कि ये संपादक बच्चों के लिए सार्थक, उपयोगी और मनोरंजन सामग्री भले ही किसी भी लेखक की हो, लेने में गुरेज नहीं करते। संभवतः यही कारण है कि इनमें आप नए लेखकों की,रचनाएँ भी अक्सर पढ़ सकते हैं। इनमें कॉमिक्स भी हैं, पशु-पक्षियों, नई तकनीक, नई घटनाओं की जानकारी देने वाले लेख और समाचार भी होते हैं। प्रेरक बच्चों की विस्तृत जानकारी भी होती है, तो कहानी किस्से भी खूब होते हैं ।

बच्चों के लिए रचनाएं ऐसी होनी चाहिए जो उनके मन में नए विचार उत्पन्न करने में सक्षम हों। दिमाग को स्टीमुलेट करती हों, कोई नया आईडिया देती हों। उनमें तरक्की के सपने संजोती हों।

बाल साहित्यकारों को जिम्मेदारी पूर्वक कुछ ऐसा सृजन करना चाहिए जो बच्चों की कल्पना शक्ति को जगाए। उन्हें कल्पना की उड़ान का विशाल आसमान दे। बाल साहित्य की रचना करते समय भाषाशैली अपना पांडित्य प्रदर्शित करने वाली नहीं बल्कि बच्चों के दिल से जुड़ने वाली हो। उनकी बोलचाल की शैली में हो। प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने में ज्यादा हिचक नहीं होनी चाहिए।

सफल उद्यमियों, महापुरुषों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों, बाल प्रतिभाओं से जुड़ी सामग्री, प्रेरक प्रसंग, उनकी आत्मकथा, जीवनी के उपयोगी अंश आदि बच्चों को पढ़ाने चाहिए।

रचनाओं का ताना-बाना बुनते समय कोशिश करनी चाहिए। रचनाओं से बच्चा कोई न कोई नई जानकारी, शिष्टाचार, पढ़ाई से जुड़ी उपयोगी बात जरूर सीखें।

पहेलियां, प्रश्नोत्तरी, वर्ग पहेली व अन्य मनोरंजक पजल्स ऐसी हों जिनसे बच्चे की प्रॉब्लम सॉल्विंग स्किल और निर्णय क्षमता बढ़ने में मदद मिले।

किसी भी संकलन, पत्रिका या बाल पृष्ठ की कुछ रचनाएं खालिस मनोरंजन के लिए भी होनी चाहिए। लेखों,कहानियों का आकार हमेशा छोटा या मध्यम ही हो। बहुत बड़ी-बड़ी कहानियां, कविताएं, लेख आदि बच्चों को पठन से विमुख करते हैं।

सारे नाम लेना संभव नहीं लेकिन, मौजूदा दौर में बाल साहित्य के क्षेत्र में जो नाम मुझे आकर्षित करते हैं उनमें से कुछ हैं, राजकुमार जैन 'राजन', गोविंद शर्मा, डॉ देशबंधु, डॉ मंजरी शुक्ला ,समीर गांगुली, शिवचरण चौहान, विमला भंडारी, अरविंद साहू आदि।

संपर्क : 67/49, स्ट्रांड रोड, तीसरा तल, कोलकाता-7, **मो.** 9836067535

आत्मिक स्पन्दन की गूँजों से भरी गगन गिल की कविता: 'यह आकांक्षा समय नहीं' का सन्दर्भ!

–पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

गगन गिल की कविता-पुस्तक 'यह आकांक्षा समय नहीं' को पढ़ते हुए मुझे अनायास ही पन्त की ये पंक्तियाँ याद आ गयी हैं- "प्राणों में क्यों व्यथा बाँध दी?/क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने/वृथा प्रणय की अमर साध दी?/ पर्वत को जल, दारु को अनल/ वारिद को दी विद्युत चंचल/फूल को सुरभि, सुरभि को विकल/उड़ने की इच्छा अबाघ दी?" आकांक्षा को अंकुरित-विकसित करने वाले के प्रति इस उपालम्भ के बावजूद आकांक्षा गगन गिल के यहाँ भी है और उनके इस कविता-संग्रह में संकलित कविताओं का मानों छत्रपद (Umbrella Term) बन कर आया है यह।

इस पुस्तक को खोलते ही इसके समर्पण-पृष्ठ- श्लोलांग के लिए' के नीचे एक आकांक्षा मिलती है- 'तुम्हारे स्वप्न की बरसात में चुपचाप मैं विरमित' हो जाऊँगा" - (I will stop, quiet/in the rain of your dream) । ये अनूदित पंक्तियाँ ज्याँ जेलमैन की हैं। यहाँ सपनों की बरसात है। कहना न होगा कि स्वप्न के मूल में इच्छा ही, आकांक्षा ही सक्रिय होती है। ऐसी दमित आकांक्षाएँ, जो मनुष्य के अचेतन में चली जाती हैं। फिर उसकी एक बरसाती निरन्तरता मिलती है। आखिर यहाँ कवयित्री इसमें क्यों विरमित होना चाहती है? निश्चय ही इसमें भीगने के लिए। इन पंक्तियों से भी, हम कवयित्री का आकांक्षा के प्रति जो तादात्म्यीकरण है, उसका अहसास कर पाते हैं। इस पुस्तक में कविताओं के आरम्भ होने से पहले "दिव्य यदि वह है" वाले पृष्ठ पर कवयित्री ने महादेवी की एक अधूरी कविता-पंक्ति दी है- 'इच्छा के होने में शर'...। पाठक के रूप में इस संकलन की कविताओं को पढ़ने के पहले गगन गिल ने अन्तर्पाठीय (Inter-textually) रूप में जिन लघु-लघु अधूरी काव्याभि-व्यक्तियों से मेरा साक्षात्कार कराया है और मुझे उनको अन्तर्मन से सुनने और गुनने के लिए आमंत्रित किया है, वहीं से मुझे उनके कवित्व की मानसिकता का बोध होने लग गया है।

गगन गिल हिन्दी की शिविर-मुक्त समकालीन कवयित्री हैं। उनकी कविता के नाभिकेन्द्र में न तो 'शब्द' हैं और न 'कथन' या प्रोक्ति (Discourse) ही। पर उनकी कविता इन दोनों से ही बुनी गयी है। अज्ञेय ने आरंभ में जिस 'कथन' 'बात' या 'भाषा' का निषेध करते हुए यह स्थापना की थी कि कविता शब्द' में होती है और उन्होंने इसे ही कविता का 'आदि' और 'अन्त' मान लिया था। पर उन्होंने उसे स्वयं बाद में सुधारते हुए अपनी एक कविता में ही यह स्वीकार कर लिया था कि 'कविता बात में (भी) होती है। ऐसे में गगन गिल की जो कविता है वह 'बात' में ही है और 'बात' के ही कारण है। पर उनके यहाँ हर कहीं पूरी बात है ही कहाँ?, क्योंकि बात पूरी होने के बाद भी उनकी बात खुलती कहाँ है? यहाँ एक गुत्थी बनती है, जो सुलझती नहीं है। लगता है, वह मित कथन की कवयित्री हैं। पर यह मितकथन भी बन्द पंखुड़ियों वाला है। उनके अभिधेयात्मक कथन को समझने के लिए व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है। वह भामह की उस मान्यता से टकराती हैं कि 'कथन' तो 'वार्ता' है, उसमें भला काव्यत्व कहाँ? "किं काव्यत्वंम वार्तामेणां प्रचक्षति?" गगन अपनी कविता के माध्यम से इस शास्त्रकार को

चुनौती देती हैं और 'वार्ता' काव्य है, 'कथन' भी काव्य है- इस मान्यता को अपनी कविता से स्थापित करती हैं। पर कथन भी कैसा? अर्थवान कथन, जिसे साहित्यिक क्षमता (Literary Competence) से भरा-पूरा पाठक या योग्य पाठक ही समझ सकता है।

कार्लाइल ने कहीं पढ़ने और सोचने से जुड़ी एक बात कही है कि बिना पढ़े सोचना और सोचते रहना ख़तरनाक है और पढ़ना, लगातार पढ़ते जाना बिना सोचे-समझे समय की बर्बादी है। इस बात को मैं सन्दर्भगत सटीकता देते हुए कविता से जोड़ना चाहता हूँ। कविता और सोचना परस्पर एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। कविता अगर सोचने को विवश करती है, तो कविता निश्चय ही ऊँची है, उसका कवित्व श्रेष्ठ है। गगन की कविताओं के विषय में मैं ऐसा मानता हूँ उसकी कविताएँ हमें सोचने पर विवश करती हैं। बिना चिन्तन की शरण में गये हमें वहाँ कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। बड़ी बात यह है कि चिन्तन का यह मार्ग-दर्शन स्वतः उनकी कविता ही करती है। उनकी कविता चिन्तन से उन्मथित होते ही अपना सार-द्रव तरलावित कर देती है। उनकी कविताएँ दर्शन बन जाती हैं। अपनी स्वतः उद्भूतता और सारभूतता में! हाँ, इन कविताओं में दर्शन कहीं भी आरोपित नहीं है, अपितु वह स्वयं यहाँ जन्म लेता है। समकालीन हिन्दी में ऐसी कविताएँ और नहीं हैं। इस दृष्टि से गगन हिन्दी की मौलिक और श्रेष्ठ कवयित्री हैं। विमसेट ने लिखा है कि कविता जब अपनी ऊँचाई पर पहुँचती है, नव दर्शन हो जाती है। गगन की ये सहज-सरल बात जैसी प्रतीत होने वाली कविताएँ वस्तुतः इस ऊँचाई को छूने वाली हैं। कवयित्री ने 'भिक्षु' पर केन्द्रित कई कविताएँ लिखी हैं। ये सभी कविताएँ मेरी इस स्थापना के प्रमाण हैं। भिक्षु का परित्याग हो या भिक्षु का एकान्त, दुख का त्याग हो और उसका प्रभाव, भिक्षु की अस्मिता हो या भिक्षु की तन्द्रा–इस दृष्टि से ये कविताएँ पाठकों को दृष्टिवान बनाती हैं। यहाँ एक कविता है- 'एक वह नहीं!' इसमें एक ओर महनीय गुणात्मक अध्यात्म है, तो दूसरी ओर रूपात्मक सुकुमार त्वचा! एक ओर महान का चरणस्पर्श है, तो दूसरी ओर सुकुमार त्वचा को निहारती दर्शिका की आँखें- "देखती रहती है/सुकुमार त्वचा उनकी/टक-टक।" क्या गुणात्मकता भी रूप में रूपान्तरित होती है या दर्शिका के लिए गुणग्राहिता से रूप का प्रभावी दृश्यबोध ही श्रेष्ठ है? कवयित्री की कुछ कविताएँ सत्य-कथन भी हैं। जैसे- 'दिव्य कभी छूने भर से मैला नहीं हो सकता।' यहाँ तथ्य और सत्य को उसने बड़े सलीके से प्रश्नरूप में अपनी काव्यात्मकता में साधा है। यहाँ एक प्रश्न ही अनेक प्रश्नों को जन्म दे जाता है और अन्ततः अपनेआप में उसका सटीक उत्तर भी बन जाता है।

गगन गिल एक सूक्ष्म-गहन मनोभाव की कवयित्री (Micro Poetess) है। वह पाठकों को भाव और चिन्तन की गहराई में ले जाने वाली कवयित्री हैं। वह रूहानी सफर तक ले जाने वाली शायरा हैं।

आज जहाँ हमारे समकालीन कवि तथाकथित विश्व-दर्शन (मार्क्सवाद) को अपना कर कविता लिखते हैं या पश्चिमी थीमों और प्रयोगों का अनुकरणअनुसरण कर कविताएँ रचती हैं, वहाँ गगन शुद्ध भारतीयता की कवयित्री सिद्ध होती हैं। उनके यहाँ भारतीय भावभूमि पर परम्परा और संस्कृति के शब्दविशेष को धरोहर की तरह ग्रहण कर उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की गयी हैं। वह उसमें नये अर्थ का उन्मेष भी कर जाती हैं। वह जो स्वयं और जहाँ भी अन्तर-पाठ (Inter-Text) बनाती हैं, उसमें वह सर्जनात्मक रूप में नया अर्थोन्मेष कर देती हैं। इससे उनकी रचना सार्थक और सप्राण हो उठती है।

गगन के यहाँ आकांक्षा के कई स्तर हैं। कहीं वह खुली-खिली इच्छा के रूप में सामने आती है- 'थोड़ी-सी उम्मीद चाहिए और 'उसी संग हम।' इस दूसरी कविता की आकांक्षा देखिए- "तुम्हारे सीने

की/दीवार पर/कभी तुमसे छिप कर/कभी तुम्हें दिख कर/अधूरा एक नाम/वहीं हम लिखेंगे.../अपनी देह' के एकान्त में/जो तुम हो/नहीं हो/उसी संग हम रहेंगे।'' यहाँ कवयित्री का इच्छात्मक संकल्प बहुत स्पष्ट है। इससे अलग कवयित्री की आकांक्षा कहीं-कहीं गहरी-गंभीर हो उठती है। उसकी 'आकांक्षा' नाचती है'- एक ऐसी ही कविता है। वस्तुतः आकांक्षा इस सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में ही सक्रिय रही है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार जब परमात्मा अपने-आप अकेले में रमण नहीं कर सका तब उसने दूसरे की कामना की। उसने चाहा-मैं अकेला अब अनेक हो जाऊँ- "स वै नेव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमेच्छत एकोऽहं बहुस्याम।" यहाँ गगन की गंभीर अभिव्यक्ति देखिए- "आकांक्षा नाच रही है..../अकेली उसने उगा दिये हैं। देव/तीन लोकों के/आकांक्षा नाच रही है/नृत्य/सृष्टि में सबसे एकाकी"। कवयित्री की एक और आकांक्षापरक कविता है- 'उसकी आकांक्षा। यहाँ उसकी आकांक्षा में कल्पना के पर लगे हैं- "बीच हिचकी के 'रोना अटका' हुआ हो/उसकी आकांक्षा।" ऐसी स्थिति की इच्छात्मक अभिव्यक्ति से एकात्म होते हुए सहसा कवि रत्नाकर याद आ जाते हैं- "नेकु कही वैननि, अनेकु कही नैननि सों/रही-सही दोऊ कहि दीन्हीं हिचकीन्हि सों।" पर यहाँ हिचकी के बीच रोने के अटकने की स्थिति नितान्त मौलिक है। उत्तर-संरचनावादी मनोविश्लेषक लेकाँ (LEKAN) ने फ्रायड के चेतन-अचेतन के सिद्धांत को पीछे छोड़कर 'इच्छा के सिद्धांत (Theory of Desire) की स्थापना की है।

अब थोड़ा रूक कर कवयित्री के द्वारा दिये गये इस काव्य-संकलन के शीर्षक पर विचार कर लें- 'यह आकांक्षा समय नहीं।' 'आकांक्षा' और 'समय' ये दोनों ही अमूर्त शब्द हैं। सामान्य दृष्टि से मानवीय आकांक्षा उत्पन्न होती रहती है, आपूरित-परिपूरित सफल-विफल होती रहती है और पुनः उभरती और मिट भी जाती है और जब कभी वह पूरी हो पाती है तो स्वतः अस्तित्वमयी हो उठती है। पर समय अनन्त है। वह रेखीय हो या चाक्रिक, पर अपने स्वरूप में वह विराट् है और अत्यन्त शक्तिवान भी है। पर जब आकांक्षा अनन्त के हृदय से उपजी हो तब आकांक्षा अधिक श्रेयस्कर और महत्त्वपूर्ण हो उठती है, क्योंकि आकांक्षा से ही सृष्टि उपजती है और सृष्टि है, तभी समय भी है। इस दृष्टि से आकांक्षा समय की जननी सिद्ध होने लगती है। सांख्य दर्शन की प्रकृति परमात्मा की आकांक्षा का तो मूर्त रूप ही है, जो स्वयं नाचती है और इसके इंगित पर समय-चक्र परिवर्तित होता रहता है- प्रातः से रात्रि और पुनः रात्रि से प्रातः तक और समस्त ऋतु-चक्र तक। 'आकांक्षा नाचती है' में यह व्यंजना निहित है। यहाँ कवयित्री ने उसे अखिल ब्रह्माण्ड तक में उपस्थित किया है। गगन गिल की कविता की दो पंक्तियाँ याद आती हैं- "थम जाएगी समय की चाल/सिर्फ अपने ही कंठ के/और मिलित हो। सिर्फ जाएँगे/आकांक्षा के सात ऋषि।...दिन स्मृविहीना होने से/सिर्फ एक दिन/आकांक्षा का नृत्य रोक देने से।"

"कवयित्री इस सन्दर्भ में एक हज़ार एक यानी अनन्त डिबियों में हृदय के बन्द होने की बात करती है और फिर एक हज़ार एक बोतलों से यानी असंख्य बोतलों से, निष्कासन-द्वारों से आकांक्षा के बाहर आने की बात भी बताती है- "एक हज़ार एक/डिबियों में बन्द/तुम्हारा हृदय/एक हज़ार एक/बोतलों से आयी बाहर/उसकी/आकांक्षा।" यहाँ 'तुम्हारा' और 'उसका' सर्वनाम सप्रयोजन है। "गगन गिल के यहाँ एक कदम आकांक्षा का है, तो दूसरा कदम विद्रोह का। पर क्या आकांक्षा विद्रोह के पहले प्रीति के लिए या दोनो के द्विध्रुवी सुमेल के लिए नहीं है? और फिर "सातवाँ कदम है, यह सातवाँ/सातवीं आकांक्षा।"

प्रायः "कवियों के लिए 'प्रेम' सदा से एक सार्वकालिक और सार्वभौम विषय रहा है। प्रेम सनातन है, जैसे जीवन में वैसे ही कविता में। गगन को भी प्रेम का स्वरूप पता है। उसे उसने हृदय से जाना है, स्वानुभव से पहचाना है। पर इसे वह स्वरूपित करती हैं, नितान्त आत्मविरहित होकर- "हर प्रेम सबसे पहले यही पूछता है, तुम्हारी चौखट तक आकर- (पन्त ने 'ग्रन्थि' में इसके बारे में कहा था- "वारि पीकर पूछता है, धर सदा", पर गगन इसके विपरीत उसकी इच्छा को ही यहाँ प्रश्न के रूप में बाँधती-साधती हैं- "क्या तुम मेरे लिए कूद सकते हो खिड़की से नीचे?" कोई वादा नहीं, कोई कसम नहीं। इसके पहले ही सीधा सवाल है- "कूद सकते हो क्या तुम छलनी कर सकते हो अपना सीना? हर प्रेम पूछता है यही। उड़ सकते हो क्या तुम मेरे साथ ठूँठ अपने कमरे से?" "प्रेम जब आता है, तुम्हारी चौखट तक, तो जल्दी चले जाने के लिए नहीं।..... वह बिना किसी पूर्व योजना के आ निकलता है तुम्हारे घर की तरफ और जानना चाहता है, तुम उसके साथ डूबने चल रहे हो या नहीं?"..... "प्रेम तुम्हे भली-भाँति मरने की पूरी मोहलत देता है।" कबीर याद आ जाते हैं- 'सीस उतारे भुइँ धरै/ तब पैठे घर माँहि।" गिल के हर प्रेम की कितनी सारगर्भित पहचान और उसका सटीक अभिव्यंजन है!

'प्रेम की गहरी अन्तर्व्याप्ति है गगन के पास! प्रेम के समय-कुसमय आने की पहचान है उसे। पर क्या यह पहचान है या ज्ञान भर है? हृदय के घर में देने के भाव का अन्त नहीं है यह? "जब भर चुके होंगे तुम्हारे जीवन के सारे पन्ने, कोई भी खाली पन्ना नहीं होगा तब वह आएगा।" कवयित्री कहती है- "एक दिन प्रेम आएगा तुम्हारे घर और घर में अन्न न होगा। एक दिन प्रेम आएगा तुम्हारे पास और तुम्हें मालूम न होगा प्रेम है यह।" कवयित्री कहती है, "उसका चेहरा बदल चुका होगा, उसका सिर थक गया होगा। उसकी आँखों में उम्र भर की नींद भर आती होगी।' प्रेम, अनपहचाना प्रेम लौट जाता है- "जाते हुए प्रेम देखेगा तुम्हे अजीब काली आँखों में। मृत्यु के करीब सपनीली हो जाएगी उसकी आँखें। और गीली।" टैगोर की गीतांजलि में भी परमात्मा प्रभु आता है, स्वर्ण-रथ पर चढ़ कर। उसके दरवाजे से निकल जाता है वह स्वर्ण रथ। पर वह जग नहीं पाता है। प्रेम-रूप प्रभु वह चला जाता है। पर इस लौटते हुए प्रेम का स्वरूप वैसा नहीं है। वह कुछ और है और इसी कुछ और में भावानुप्रवेश और उसका निरूपण कवयित्री की मौलिकता और महत्ता है।

कवयित्री तूफानी रात में भी प्रेम का हृदय के दरवाजे का खटखटकाना-भड़भड़ाना महसूस करती है। ऐसी रात में प्रेम पुकारता है द्वार के पार। फिर बढ़ जाता है खिड़की से बाहर। कवयित्री की एक कविता है- "उसका घर"। वह देख रही है नींद में देखती है। दरवाजे के बाहर। यह रहा उसका दरवाजा जिसे उसने बंद किया है आकांक्षा के मुँह पर। यह कविता कई अनुभागों में लिखी गयी है एक से दस तक। यहाँ समस्त जन्मों का चक्कर लगाती है आकांक्षा! यही, नहीं, उसके यहाँ भटकती आकांक्षा भी है।

गगन की कविता को पढ़ते-पढ़ते मैं एक जगह अटक गया हूँ। पंक्तियाँ थीं- "मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी/ मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी।" मुझे रवीन्द्रनाथ याद आ गये- 'जेते नाहिं दिबू/तबू चले जाय।" पर रवीन्द्र के यहाँ यह इस संकल्पात्मक आकांक्षा, विवश आकांक्षा है 'तबू चले जाए' की निराशा है, यहाँ। पर गगन के यहाँ उसकी संकल्पात्मक आकांक्षा का कथन भर है। उस पर नियति (क्मेजपदल) की निर्मम आकांक्षा का प्रहार नहीं है।

गगन की एक कविता मुझे बहुत पसन्द है- 'हम जो आये तुम्हारे शहर/ कैसे पहुँचेंगे तुम्हारे घर तक?'/ रास्ते में दुनिया होगी/डर होगा/कभी दुनिया नहीं/मन अपना ही दुश्मन होगा। आँख उससे जो

चुरा आ भी गये कैसे पहुँचेंगे तुम्हारे पास मगर/ ....तुम्हारे द्वार तक तो आ जाएंगे/कैसे पहुँचेंगे मगर भीतर तक?" कहना न होगा कि बाहरी यात्रा की यह कविता हमें आन्तरिकता की पहचान कराती आंतरिक यात्रा की ओर उन्मुख कर देती है।

गगन (आकाश) गिल (मिट्टी) के नाम में जिस तरह आकाश और मिट्टी- दोनों हैं, उसी तरह उसकी कविता में आकांक्षा मिट्टी से आसमान तक व्याप्त है। फिर भी कवयित्री कहना चाहती है कि यह आकांक्षा-रूपी समय नहीं है या कि यह वह आकांक्षा नहीं है, जो 'Seduce' करते रहने वाली है। यह उत्तर-आधुनिक आकांक्षा समय नहीं है न ही यह चाक्रिक समय है और न ही रेखीय समय। समय विधेयात्मक और निषेधात्मक दोनों ही होता है। पर गगन के यहाँ आकांक्षा केवल विधेयात्मक है और है सर्जनात्मक। वह निषेधात्मक नहीं है। परात्पर प्रभु के यहाँ भी और इस कवयित्री के यहाँ भी।

'यह आकांक्षा समय नहीं' की कवयित्री समकालीन रचनाकारों के विश्वदर्शन और उसके वादग्रस्त परिभाषिकों के मुहावरे को नकारती है। वह अपनी रचना-सर्जना में नितान्त मौलिक है, कथ्य से लेकर अभिव्यक्ति तक। उसका हर तेवर उसकी निजता की अंगुष्ठु-छाप छोड़ने का प्रमाण; (Finger Print) है। लेसली फिडलर ने इसी को स्वहस्ताक्षरता; (Signature) कहा है।

"गगन की कविता के दो मुख्य प्रतिपाद्य शब्द है- 1. आकांक्षा और 2. एकान्त। इनके अतिरिक्त उनके यहाँ भिक्षु प्रेम दिव्या, देवदूत, आत्मा, देवता, ईश्वर, बेताल, यक्ष, बोधिसत्त्व अकेला, अँधेरा जैसे शब्द भी प्रतिपाद्य; (Theme words) शब्द बन जाते है। एक-दो शब्द बीज शब्द (Keyword) की भूमिका में भी आये हैं। यद्यपि 'अँधेर' का प्रयोग भी उनके यहाँ है, पर वह अपनी थीम में मूलतः प्रकाश की कवयित्री है।

गगन गिल एक भारतीय कवयित्री हैं। आज के समय में भारतीय संस्कृति की धरोहर को संभाल रखना किसी भी रचनाकार के लिए बहुत कठिन हो चुका है। पर भारतीयता गगन की संवेदना में व्याप्त है, उनके कथ्य, कवि-कर्म और उसकी अभिव्यक्ति तक में विद्यमान है। गगन भारतीय मूल की आकांक्षाभरी अपनी कविता के माध्यम से अपने पाठकों को भी भारतीय पहचान से एकात्म करती है।

गगन गिल की लेखिमिक पद्धति (Graphermic) कभी श्रीकान्त वर्मा की, तो कभी अशोक वाजपेयी की लेखिमिक पद्धति की याद दिलाती है। बायें से दायें की जगह ऊपर से नीचे लिखे जाते 'होरिजेंटल' से 'वर्टिकल' में लिखे जाने और कविता को गद्यमिक पद्धति; (Prosoic Pattern) में लिखे जाने का प्रत्यक्ष कराती हैं।

आज शब्दों ने अपनी चरितार्थता को, अपने अर्थों के घटित होने, उसके अवतरित-आचरित होने को खो दिया है। कवयित्री अपनी संकल्पात्मक इच्छा से इसे पुनः घटित करती है- "तुम कहोगे रात/और रात हो जाएगी/तुम कहोगे दिन/और खुल जाएगा दिन।" और फिर तुम सोचोगे प्रेम/और दिगन्त घोल देगा/एक इन्द्रधनुष गुप्त।" अंततः "तुम कहोगे रात/ और झरती चली जाएगी स्मृति/तुम कहोगे दिन/और रिक्त हो जाएगी पृथ्वी।" आकाश में, धरती पर और आकाश से धरती के बीच ऐसा बहुत कुछ सारभूत है, जिसे कविता व्यक्त कर सकती है। गगन (आकाश) गिल (मिट्टी) ने इन्हीं कुछ सारभूत सत्य को अपनी कविता में बिम्बित-प्रतिबिम्बित किया है।

संपर्क : 'साईकृपा' 58, लाल ऐविन्यू, **पो.** छेहर्टा, अमृतसर,
पि. 143105 (पंजाब), **मो.** 09878647468

राजनारायण बोहरे का उपन्यास अस्थान

- सुषमा मुनीन्द्र

धर्म और राजनीति ऐसे संवेदनशील मसले हैं जिनमें लोगों की रुचि और जिज्ञासा प्रायः बनी रहती है। सर्वाधिक संवेदनशील मसला बनता जा रहा धर्म, अब शांति और शुद्धता के कम, अशांति और विवाद के अधिक नजदीक, होता जा रहा है। धर्म पर निंदा पुराण या प्रशस्ति गाथा की तरह कई पुस्तकें लिखी गई हैं, लेकिन राजनारायण बोहरे के उपन्यास अस्थान ने किसी किस्म के पूर्वाग्रह, अतिरंजना, अतिवाद से मुक्त रहते हुए पंथ, अखाड़े, अस्थान, सम्प्रदाय, संत-संसार के ऐसे सत्य उद्घाटित किये हैं, जिनसे मुझ सहित तमाम पाठक भिज्ञ नहीं हैं। सुपरिचित रचनाकार राजनारायण बोहरे की कहानी, उपन्यास, समीक्षा, व्यंग्य आदि गद्य विधा में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इधर मुझे उनके दो उपन्यास–आड़ा वक्त व अस्थान पढ़ने का अवसर मिला। अस्थापन ने विशेष रूप से प्रभावित किया।

हम जानते हैं धर्म की स्थापना वैज्ञानिक आधार पर की गई है कि मानव मात्र में नियम, नियमितता, नैतिकता का भाव जागृत होगा, लेकिन कतिपय स्वार्थी तत्वों ने धर्म को अंधविश्वास, भ्रम, आडंब, पाखण्ड, भेदभाव, छल-बल, चढ़ौती, चंदा उगाही से जोड़कर नकारात्मक दिशा की ओर मोड़ दिया है। रमता जोगी कहे जाने वाले संत, करोड़ों के अस्थाान, आश्रम के स्वामी बन विलास कर रहे हैं, इसलिए "संत वह है जिसकी संगति से पात्रता का विकास होता है ... संत का सानिध्य विचार की पवित्रता देता है।" जैसी स्थापित धारणा क्षीण पड़ने लगी है।

दो सौ चौबीस पृष्ठ के उपन्यास अस्थान में तेईस भाग हैं। केन्द्रीय पात्र धरनीधर 'मानस अधीर' फिर श्री श्री एक सौ आठ प्रचंडानंद बन करोड़ों की लागत का आश्रम तैयार कर लेता है। धरनीधर के शून्य से शीर्ष फिर शून्य तक पहुँचने की यात्रा में उपन्यासकार संत संसार की बाह्य और आंतरिक प्रणाली, प्रयोजन, प्राप्य बताते चलते हैं।

उपन्यास का आरम्भ धरनीधर की रेल यात्रा से होता है। धरनीधर के जीवन वृत्त से तमाम साधुओं, बाबा, रामायणी, कथावाचकों, प्रवचनकर्ताओं की दैनन्दिनी को समझते हुये आश्रम, अस्थान, अखाड़े, मंदिर, देवस्थान के भीतर के सच तक पहुँचा जा सकता है।

अर्थाभाव से जूझते मामूली कृषक परिवार के ग्रामीण युवक धरनीधर के ज्ञान आश्रम का अधिष्ठाता बनने तक के क्रम-उपक्रम में गजब की पठनीयता है। धरनीधर को प्राकृतिक रूप से मिला मधुर कंठ, बोलने और रामलीला का एक पात्र बनने के कारण अभिनय की क्षमता, जैसे उसकी नियति निर्धारित कर देती है। वह बी.ए. कर रहा है कि गांव के पंचायती चुनाव के समय हुई कल्लून साहू की हत्या को चुनावी रंग देते हुये धरनीधर और उसके दो-तीन साथियों पर हत्या आरोप लगा दिया जाता है। सभी आरोपी अदालत में निर्दोष साबित होते हैं लेकिन पुलिस रिकार्ड में नाम आ जाने से सरकारी नौकरी मिलने में संदेह है। धरनीधर अनायास धर्म का ध्वजावाहक बन बैठता है। प्रवचन ऐसा क्षेत्र है जहां किसी परीक्षा या डिग्री की नहीं, ज्वलंत विषयों के चयन, उपयुक्त शब्दावली, आत्मविश्वास, तर्कशक्ति, हाव-भाव की जरूरत होती है। गाँव-कस्बों में आज भी वाल्मीकि रामायण, भागवत कथा, प्रवचन जैसे अनुष्ठान आस्था के साथ मनोरंजन का भी आधार हैं। धरनीधर कभी स्थानीय मंदिर में प्रवचन कभी अपने घर में पुरुषोत्तम मास में एक माह कथा कहता है। लोग प्रभावित होते हैं लेकिन वह जानता है इस तरह जीविका नहीं चल सकती। घर छोड़ कर चला जाता है। नियमानुसार प्रशिक्षण नहीं लेता, न ही किसी का शिष्य बनता है लेकिन उसमें वह क्षमता थी कि मंच में लम्बे समय तक बैठ कर जन समूह को सम्बोधित करने लगा। अयोध्या से लेकर भिन्न प्रांतों में आते-जाते, साधु-संतों, रामायणी, कथा वाचकों,

प्रवचनकर्ताओं को देखते-सुनते, अस्थान, आश्रम, अखाड़ों को समझते-परखते हुए जान लेता है गुरुमुखी साधु (ये वास्तयविक साधु माने जाते हैं, इनके अखाड़े, पंथ, सम्प्रदाय होते हैं), टकसाली साधु (सम्प्रदाय द्वारा दीक्षित साधू, इन्हें सिद्धांत पटल व ठाकुर टहल रटे होते हैं), मनमुखी साधु (इनके अखाड़े, सम्प्रदाय नहीं होते), निगूडे और खड़िया साधु (ये साधुशाही की टकसाली परम्परा के बाहर वाले, बिना गुरू वाले साधु होते हैं), क्याऔ होते हैं। वह देखता है आश्रम, अखाड़े, मठ, मंदिर, मस्जिद, चर्च में अकूत सम्पदा होती है। नशा, वासना, स्त्री समागम होता है। समझता है पीठाधीश्वर की तंदुरुस्तर देह और चमकता मुख तपने से नहीं पौष्टिक खाने और रेशम पहनने के कारण है। कार्पोरेट कल्चंर को पसंद करने वाले ये साधु थ्री स्टार होटेल जैसी सुविधा वाले आश्रम के मालिक होते हैं। प्रवचन का ठेका लेते हैं। कई गाड़ियों में स्टाफ सहित बैठ कर, ट्रकों में पंडाल, बिजली का सामान लेकर लाव-लश्कर बना कर प्रवचन स्थल पर पहुँचते हैं। प्रवचन के लिये मंच पर जाने से पहले पंचकेश में सुगंधित तेल, बदन के ग्यारह स्थानों पर तिलक मुद्राओं के छापे लगा, खड़ाऊँ और उजले वस्त्र पहन कर सजते हैं। जो पीठाधीश्वर अच्छे गायक हैं स्वयं गाते हैं अन्यथा साजिंदे रखते हैं। जो प्रवचनकर्ता प्रसिद्ध धार्मिक नगरी का है उसका प्रभाव और महत्व अधिक होता है। धरनीधर काम की खोज में भ्रमण करता रहता है, इसलिए अयोध्या के एक महंत को सहमत कर उनके अड्डे को अपना पोस्टल एड्रेस बनाकर खुद को अयोध्या का होना जाहिर करता है। धर्म और धन परस्पर पूरक बन कर उसे लगभग दो करोड़ की चल-अचल सम्पत्ति का स्वामी बना देते हैं। एक विधायक की पहल से वह अस्थान बनवाता है, जिसका नाम 'ज्ञान आश्रम' रखता है । धर्म और राजनीति के बीच अव्यक्त संबंध हुआ करते हैं। राजनीतिज्ञ चुनाव जीतने के लिये यज्ञ, छवि सुधारने के लिये सहस्त्रों शिवलिंग का निर्माण जैसे अनुष्ठान कराते हैं। आशीर्वाद लेने आश्रम में पहुँचते हैं। आश्रम को शासन-प्रशासन का परोक्ष-अपरोक्ष सहयोग मिलने से वहाँ होने वाले फर्जी वादे की अक्सर न शिकायत दर्ज होती है, न पूछ-ताछ की जाती है। विधायक तिकड़म से माफी की जमीन को धरनीधर के नामजद करा देते हैं जिसके भव्य भूभाग में सर्वसुविधायुक्ती आश्रम निर्मित होता है।

उपन्यानसकार धरनीधर के जीवन वृत्त के साथ-साथ जरूरी जानकारियां देते चलते हैं। जैसे –मूर्ति को जलाधिवास, अन्नाधिवास, शैय्याधिवास की प्रक्रिया से गुजार कर पांचवें दिन मूर्ति की आंख, नाक, कान में मोम भर प्राणों का आह्वान कर मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। जैसे – राज व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता है उसी तरह धर्म व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी शंकराचार्य होते हैं। द्वारिकापुरी में शारदा मठ, बद्रिकाधाम में ज्योतिर्मठ, जगन्नाथपुरी में गोवर्धन मठ, रामेश्वरम में श्रृंगेरी मठ आश्रमों में जगद्गुरु के चयन की जटिल प्रक्रिया होती है। जैसे – 'सत्रहवां पिण्ड खुद के लिए तर्पण यानि अब स्वयम् को मृतक मान कर अपना पिंड दान कर गृहस्थ दुनिया का त्याग ।

अपने प्रताप को बढ़ाने के लिये धरनीधर द्वारिका के कुम्भ में पेशवाई करता है, पेशवाई कुम्भ में संन्यासियों का जलवा जुलूस है जहां सन्यासियों का प्रदर्शन किया जाता है। कुम्भा में शिविर के लिए आवेदन देते हुए अपने नाम के आगे जगद्गुरु लिखता है। उसे अन्य जगद्गुरुओं के लिये आवंटित पंक्ति में शिविर लगाने की सरकारी अनुमति मिल जाती है। वस्तुतः धर्म को लेकर भय व्याप्ति है। बाबाओं को सवाल और संदेह के घेरे में अटकाना सरल नहीं है। इसीलिए अश्लील साहित्य, नीली फिल्मों की सी.डी. रखने वाले, गोरख धंधे चलाने वाले कलिकाल के बाबाओं के आश्रम की जांच – पड़ताल करने में हिचक होती है। सब जानते हैं धर्म अब आध्यात्मिक नहीं रह गया है, बाजार बनता जा रहा है। कुछ संतों की संस्था का अपना टी.वी. चैनल होता है जिसमें चौबीसों घंटे प्रवचन माला चलती है, विज्ञापन चलते हैं। संत लाखों के पैकेज पर विदेश जाते हैं। अंग्रेजी में प्रवचन करते हैं, क्योंकि कार्पोरेट भाषा का अधिक पैसा मिलता है। धरनीधर एक टी.वी. कम्पनी से जुड़े स्टूडियो में अपने प्रवचनों की एक सौ एक सी.डी. बनवाकर धार्मिक चैनल पर प्रसारण टाइम खरीद कर सी.डी. का अपने पते और मोबाइल नम्बर

सहित प्रसारण कराता है कि प्रवचन के कार्यक्रम मिलेंगे।

अकेले चले धरनीधर के साथ जब अमला जुड़ता जाता है तब भाग्य के सितारे अस्त होने लगते हैं। उपन्यास में एक मात्र स्त्री पात्र केशरी है जो परोक्ष-अपरोक्ष रूप से धरनीधर के पतन का कारण है।

"इस धंधे (प्रवचन) में धीरज और यश ही आपकी पूँजी हैं। एक बार आप अपनी जगह से स्खलित हुए तो आपको कोई नहीं पूछेगा।" जैसे तथ्य को धरनीधर जानता है लेकिन 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' की तरह व्यवहार करते हुए एक प्रवचन में मिली चमकदार मुख और स्वस्थ देह वाली तीस वर्षीया प्रवचनकर्ता माँ केशरमयी से इस सीमा तक लगाव बना लेता है कि उसे ज्ञान आश्रम ले आता है। दुर्योग से आश्रम कैम्पस में रात में फेंका गया किसी महिला का शव मिलता है, जिसकी सूचना धरनीधर स्वयं निकटवर्ती थाने में देता है। पुलिस हत्या प्रकरण को आश्रम से जोड़ कर देखती है क्योंकि आश्रमों में गोरखधंधे होते हैं। केशरी सहित कुछ आश्रम वालों के बयान लिये जाते हैं। कस्बों, के कुछ पत्रकार, वे छोटे-मोटे नेता जो उन दोनों विधायकों के शत्रु थे जिनकी श्रद्धा ज्ञान आश्रम से जुड़ी थी आश्रम में नारे लगाते हैं। नित्य नई खबर बनती है ... मठ गैर कानूनी है, सरकार हस्तगत कर ले, आश्रम के लोगों को जेल हो...। दोनों विधायक निस्सहाय धरनीधर के बचाव में आगे न आकर स्वार्थजनित राजनीति की चाल, चरित्र, चेहरे के संवाहक बनते हैं। जिस आश्रम से अपयश जुड़ जाये उसे पुनः अमल – धवल सिद्ध करना दुष्कर होता है। ज्ञान आश्रम तब पूर्णत-रौनक और इत्मीनान खो देता है जब ट्रकों में कुम्भ की ओर जा रहे नागा साधु ज्ञान आश्रम को पड़ाव बनाने पहुँचते हैं। नागा समुदाय दिन में यात्रा नहीं करते अतः ज्ञान आश्रम में विश्राम करना चाहते हैं। यहां साधु समाज के आंतरिक ईर्ष्या-द्वेष – कलह की जानकारी मिलती है कि महंताई को लेकर पुजारियों में किस तरह लट्ठमार लड़ाई हो जाया करती है। दान में मिले कम्बल को लेकर मामूली स्तर वाले गुरु – चेलों में किस तरह झगड़ा होता है। साधु संतों के मानस में अन्यत्र के ठाट-बाट को लेकर किस तरह क्रोध, क्षोभ, ईर्ष्या, द्वेष भरा होता है। उसे हथिया लेने के उद्देश्ये से ये हिंसक हो जाते हैं। नागा साधु आश्रम में स्त्री (केशरी) की उपस्थिति को धर्म के विरुद्ध बताते हुये धरनीधर को अपदस्थ कर आश्रम में कब्जा चाहते हैं। ऐसे पाखण्डक को देखकर अस्थान के प्रति धरनीधर के भीतर विरक्ति का भाव आ जाता है। वह आश्रम से विरत हो ऐसे एक गंतव्य पर पहुँचने के लिए रेल यात्रा कर रहा है जहां सामान्य मनुष्य का सामान्य जीवन जी सके।

उपन्यास चूँकि धर्म पर है बोहरे जी ने संस्कृतनिष्ठ प्रांजल भाषा का विशेष ध्यान रखा है। महंत किरपादास के आस्थान में पहुँचकर ओमदास अपना परिचय इस तरह देता है "संसार परब्रह्म परमात्मा का, सम्प्रदाय, गद्दी धारी महाराज का, आशीर्वाद गुरू महाराज का, साधु समाज और आप सबका दिया हुआ मेरा नाम ओमदास है।"

उपन्यास में वस्तुनतः शोधार्थी की तरह श्रम हुआ है। इतना विस्तार, रेंज, प्रसंग, प्रश्न, तर्क, चुनौती, गहराई है कि समीक्षा में नहीं समेटा जा सकता। साररूप में जरूर कहूँगी यहां पाठकों को वह विवेक और सलीका मिल जाता है कि वे आस्था और पाखण्ड में फर्क कर सकते हैं।

पुस्तक का नाम : अस्थान (उपन्यास)
लेखक : राजनारायण बोहरे (**मो.** 9826689939)

समीक्षक : सुषमा मुनीद्र

संपर्क : 305, प्रियदर्शिनी अपार्टमेन्ट , जीवन विहार अपार्टमेन्ट्स, द्वितीय तल, फ्लैट नं. 7, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे, रीवा रोड, सतना **(म.प्र.), पि.** 485001, **मो.** – 8269895950

साधारण से असाधारण की यात्रा - रामनगीना मौर्य की कहानियां

-डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी

लखनऊ निवासी प्रतिष्ठित लेखक रामनगीना मौर्य ने पिछले कुछ वर्षों में 'आखिरी गेंद', 'आप कैमरे की निगाह में हैं', 'सॉफ्ट कॉर्नर' व 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें', 'मन बोहेमियन', 'आगे से फटा जूता' एवं 'खूबसूरत मोड़' जैसे बेहतरीन कहानी-संग्रह पाठकों के सुपुर्द किया है। कहानीकार शिवमूर्ति के विचारानुसार- "रामनगीना मौर्य आम जिन्दगी की कहानियां कहते हैं। जहां से ये अपनी कहानियों के पात्र लाते हैं, वहां तक सामान्यतः अन्य कथाकारों की निगाह नहीं पहुँचती या फिर वे उधर निगाह डालना जरूरी नहीं समझते।...इसीलिए मैं रामनगीना मौर्य को उपेक्षित और अलक्षित जिन्दगी का विशिष्ट कथाकार कहूंगा।" -(खूबसूरत मोड़, दूसरी आवृत्ति, पृ-7)

रामनगीना जी की कहानियां आम जीवन की छोटी-से-छोटी घटना, भाव, वस्तु तथा स्थिति को पकड़ लेती हैं तथा उनके माध्यम से जीवन के उन अनछुए पहलुओं को प्रकाशित करती हैं जिसे जिन्दगी को सरसरी नजर से जीने वाले साधारण लोग नजरअंदाज कर जाते हैं। इस मामले में आपके विषय चयन की बारीकी व अंदाज-ए-बयान की महीनता पाठक को बांधकर रख लेती है। घर-कार्यालय के साधारण क्रिया-कलाप तथा मामूली वस्तुओं को चुनते हुए आपने उस सत्य को टटोला है, जो पाठक को प्रभावित करता है, बाजारीकरण, मूल्य-वृद्धि, मध्यमवर्गीय जीवन के आर्थिक दबाव व नई पीढ़ी के साथ पुरानी पीढ़ी के विचारों के असामंजस्य को उभारने की भरसक कोशिश करता है।

अत्यन्त रोचक और मजेदार वार्तालाप के माध्यम से आपने 'रोटेशन सिस्टम से' कहानी में मध्यमवर्गीय आम पारिवारिक रिश्तों को खंगाला है। ये बातचीत निविड़ मध्य रात्रि को लेखक के घर में रखी डॉयनिंग-टेबल की छः कुर्सियों के बीच हो रही है। ये कुर्सियां आपस में इस परिवार के सदस्यों की बुराई भी करती हैं और मानव प्रवृत्ति की आलोचना भी। वर्तमान बाजारीकरण के जमाने में बढ़ती कीमतों से समझौता करते हुए भारतीय अपने रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने की जद्दोजहद में पिस रहा है। कहानी में दिखाया गया है कि एक डॉयनिंग-टेबल खरीदने के लिए हम कितनी दुकानों के चक्कर काटते हैं, जिससे हमारे बजट की सीमा भी बनी रहे व वाजिब दाम में बेहतरीन चीज हाथ लग जाए। दूसरी ओर उपभोक्तावादी संस्कृति पर चोट करते हुए मौर्य जी लिखते हैं कि मध्यमवर्गीय परिवार अपनी शान बघारने के लिए डॉयनिंग-टेबल का दिखावा करने से नहीं चूकता। कहानीकार के भाषाई जादू ने डॉयनिंग-चेयर्स की बातचीत को बड़ा दिलचस्प बना दिया है- "मालिक भी अपने दोस्तों संग साहित्य जगत में सशक्त हस्ताक्षरों की कमी, या दिनों-दिन पाठकों की कमी होते जाने का मसला हो, या साहित्य-जगत की तीखी-चटपटी, लाग-लपेट बातें हों, सब कुछ इसी डॉयनिंग-टेबल पर ही निबटाते हैं। अभी पिछले सण्डे ही देखा होगा, इनके पड़ोसी सक्सेना जी अपने खाली प्लॉट में काम शुरू कराने आए थे। उन्हें भी जाने क्या सूझी...गिट्टी, मौरंग, सरिया, कॉरपेण्टर, प्लम्बर, इलेक्ट्रीशियन आदि के बारे में उन्होंने इनसे औपचारिक पूछताछ क्या कर लिया, ये उन्हें यहीं डॉयनिंग-टेबल तक खींच लाये। मालकिन से दो चाय बना लाने के लिए बोलते, पूरे शहर में कहां-कहां ठीक-ठाक बिल्डिंग-मैटेरियल्स और ठेकेदारों में कौन ईमानदार या ठग है, के बारे में विस्तारपूर्वक बताते, चर्चा करते, कई उदाहरण देते, बीच-बीच में दिलचस्प सुझाव भी दे दे रहे थे।"-(कहानी संग्रह-यात्रीगण कृपया ध्यान दें, पृ-32) अतः मौर्य जी ने आम भारतीयों की फितरत की नब्ज पकड़ी है। साधारण परिवारों में बातचीत के ढ़र्रे को टटोला है। मेल-मिलाप, विचारों के आदान-प्रदान तथा पास-पड़ोस में अब भी बची हुई मिलनसार जीवटता को सहेजा है। कहानी में एक लेखक के स्वभाव व परिवारजनों में उसके लेखन के प्रति दृष्टिकोण को भी दर्शाया गया है। यह भाव आपकी एक और कहानी 'नई रैक' में पाठकों को अभिभूत कर देता है,

जहां एक आम लेखक की जरूरी वस्तुओं नोट्स, कागज की कतरनों, किताबों, पुराने अखबारों, कापियों, पत्रिकाओं को रखने के लिए उसे अपने ही परिवार में खरी-खोटी सुननी पड़ती है। पर लेखक तो प्रतिबद्ध होता है, अपनी दृष्टि में भी और अपने लेखन के प्रति भी। इसीलिए उक्त कहानी का लेखक पत्नी की उलाहनाओं से परेशान होकर अपने लेखन व साहित्य से सम्बन्धित आवश्यक कागज-पत्रों को सहेजकर-समेटकर रखने के लिए पड़ोस के कॉरपेण्टर के पास एक नई रैक बनवाता है। इस लकड़ी की रैक को बनाने में उसकी कॉरपेण्टर और सामान बेचने वाले दुकानदार से हुई बातचीत बढ़ती हुई महंगाई की मार, मिस्त्रियों के नखरे, मध्यमवर्गीय भारतीयों के हिसाब-किताब से भरी जिन्दगी का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। यही कहानी-कहन की सहज कला व लेखन का अंदाज मौर्य जी की कहानियों को अलग वजूद देते हैं। एक रैक को बनवाने के लिए वह लेखक कितनी बार आगे-पीछे सोचता है, बाजारों की भाषा के चलताऊपन और ग्राहक को फंसाने-फुसलाने की तरकीब को व्यक्त करने में आपने कमाल दिखाया है। किस्सागोई के लहजे में कही गई आपकी कहानियां हमारे आस-पास मौजूद माहौल को और अधिक लेखन के दायरे में समेटती चलती हैं।

मानवीय संवेदनाओं के सूखते धरातल पर अब भी साहित्यकार की आशा जीवित है। 'लोहे की जालियां' कहानी में मौर्य जी ने पुराने रिश्तों, दोस्ती के मसृण तन्तुओं, परदुखकातरता तथा सहृदयता के महीन धागों को लोहे की जालियों से अधिक मजबूत दिखाया है। पुराने किराये के मकान में पांच हजार रूपये खर्च कर लगाए गए लोहे की जालियों का पैसा वसूलने के इरादे से गए लेखक को जब वहां अपने हॉस्टल जीवन का पुराना जूनियर किरायेदार के रूप में मिलता है तो उसके इरादे पुरानी दोस्ती की यादों में धूमिल पड़ जाते हैं। एक साथ हॉस्टल में बिताए गए दिनों की खुशनुमा यादें व एक-दूसरे की मदद में तत्पर उन दिनों की भावनाएं लेखक को कहीं भीतर तक तर-बतर कर देती हैं और वे जालियों से होने वाले उस जूनियर और उसके परिवार के लाभ को देखकर ही संतुष्ट हो जाता है। तभी तो कहानी के अंत में मौर्य जी लिखते हैंः-

"जाहिर है, वो लोहे की जालियां, इंसानी रिश्तों की जंजीर से कमजोर साबित हुईं। फिर...जीवन में किसका एहसान हमें किस रूप में चुकाना पड़ जाय, कौन जानता है?"

"हां...हवा-प्रकाश के रूप में।"

"बेशक...कोट और जूतों के रूप में।"

"जाहिर है...लोहे की जालियों के रूप में भी...?"- (कहानी संग्रह- सॉफ्ट कॉर्नर, पृ- 50) उल्लेखनीय है कि लेखक ने अपने जूनियर को यह नहीं बताया कि ये लोहे की जालियां उन्होंने लगवाईं थीं, बल्कि जब उन्होंने देखा कि उन जालियों से उसे काफी आराम मिल रहा है तो वे गद्गद हो गए। मौर्य जी मानते हैं कि आज भी व्यावसायिक मनोवृत्ति, रूपये-पैसे के लिए भागने वाली जिन्दगी में मानवीय मूल्यों, परोपकार व निःस्वार्थ मित्रता के लिए कहीं जगह बची है।

आपकी कहानियों जैसे, 'आप कैमरे की निगाह में हैं', 'पत्ता टूटा डाल से', 'आखिरी गेंद', 'फुटपाथ पर जिन्दगी' आदि में भी आम जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं के जरिये छीजते हुए संवेदनात्मक मूल्यों एवं अंतर्विरोधों को स्वर दिया गया है। आपकी 'ग्लोब' कहानी में वर्तमान समय में इंटरनेट, मोबाइल, लैपटॉप में सिमटे हुए जीवन में दो पीढ़ियों के वैचारिक अंतर को दर्शाया गया है। पिछली पीढ़ी के लिए ग्लोब के माध्यम से दुनिया को देखने-बूझने का दृष्टिकोण निर्मित होता था। तब बड़ों के आदेशों के समक्ष मुंहजोरी करने का दुस्साहस जुटाना शायद भारी पड़ता था। वहीं वर्तमान पीढ़ी की हथेली में रखे मोबाइल व इंटरनेट ने उसकी हर जिज्ञासा को बड़ी आसानी से संतुष्ट कर दिया है। उसे उच्चाकांक्षी, अति आत्मविश्वासी व उत्साही बनाया है, तथा पुरानी पीढ़ी को फेसबुक, व्हाट्सएप, सोशल-मीडिया तथा बैंक के कामकाज, गैस की बुकिंग से लेकर रेलवे व अन्य रोजमर्रा के जीवन में मोबाइल की तकनीक को समझने के लिए नई पीढ़ी के समक्ष हथियार डालने पड़ते हैं। ये घर-घर की कहानी है। साथ ही लेखक दिखाते हैं कि वर्तमान पीढ़ी की परवरिश ने भी कहीं-न-कहीं उसकी सोच को प्रभावित किया है- "कहां हमारी लौकी, बैगन, भिंडी, तरोई, कुंदरू, टिण्डा, देशी घी खाने वाली पीढ़ी और कहां ये

पिज्जा-बर्गर, प्रोसेस्ड-फूड, नूडल्स और रिफाइण्ड तेलों से बने पदार्थ आदि खाने वाली पीढ़ी? भला क्या मुकाबला हमारा-इनका?"-(कहानी संग्रह- सॉफ्ट कॉर्नर, पृ- 91)

कार्यालयीय जीवन की बारीकियों व मनोवृत्तियों को दर्शाते हुए आपने 'बेकार कुछ भी नहीं होता' कहानी बुनी है। इसमें ऑफिस के गेट पर पड़े दो पेंचों व बिना ढ़क्कन के पेन को उठाकर लाने वास्ते बाबू ने उनका सदुपयोग किया है। वास्तव में कहीं-न-कहीं लेखक द्वारा भारतीय जीवन में हर छोटी-सी-छोटी वस्तु की उपयोगिता तथा बेकार समझी जाने वाली अति-साधारण वस्तुओं को सहेजकर चलने की मनोवृत्ति के लाभ को दिखाया है। मौर्य जी की कहानियों के विषय में साहित्यकार सुषमा मुनीन्द्र का कहना है कि "कहानियों में वे छोटे-छोटे विषय, उपादान, घटनाएं, हाशिये, दिनचर्या, परिवेश, चारीत्रिक बोध, धरातल, स्थानीयता, मनोविज्ञान, जरूरतें हैं, जहां आमतौर पर रचनाकारों की दृष्टि नहीं जाती या वे इन स्थितियों को कहानी के काबिल नहीं मानते।...रामनगीना मौर्य की कहानियों का स्वरूप अलग होता है, क्योंकि नामालूम-सी चीजों को कल्पना और सम्प्रेषण से अच्छा कथ्य बना देते हैं।...रामनगीना मौर्य कहानियों के अन्त में जो ट्विस्ट लाते हैं, वह कहानी के उद्देश्य को भली प्रकार स्पष्ट कर देता है।" -(यात्रीगण कृपया ध्यान दें-दूसरी आवृत्ति, पृ-140) मौर्य जी के पाठक दैनन्दिन जीवन से चुने गए कहानियों के चरित्र से आसानी से रिलेट कर लेते हैं।

'खूबसूरत मोड़' कहानी संग्रह में परमानंद दास, नरोत्तम दास, सुरेन्द्र, सरन, सहाय, गुमानमल, राजन बाबू हमारे-आपके शहर, मुहल्ले, ऑफिस से निकलकर उनकी कहानियों के हिस्से बन गए हैं। उनकी कहानियां मानव-मनोविज्ञान की परतों को उघाड़ने में दक्ष हैं, और इसका श्रेष्ठ उदाहरण 'खूबसूरत मोड़' की रेवती खन्ना का चरित्र है। बीमार मां, अपनी तलाकशुदा जिन्दगी और पारिवारिक-आर्थिक दीनता को झेलती हुई रेवती क्यों अपने बचपन के मित्र सत्यजीत से मिलने से कतराती है, इसका खुलासा कहानी के अंत तक पहुंचते हुए पाठक के समक्ष होता है। बाल-मनोविज्ञान में अपनी पैठ बनाते हुए आपने 'शास्त्रीय संगीत' शीर्षक कहानी में दर्शाया है कि कई बार बच्चों को संगीत के माध्यम से चैन-सुकून मिलता है। यह कहानी संगीत-थेरेपी से रोग-निदान की संकल्पना की ओर भी इशारा करती है। इसके साथ ही मुफ्त में बढ़-चढ़कर सुझाव देने की आदत पर भी आपने भरसक व्यंग्य किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कहानीकार रामनगीना मौर्य जी की कहानियां आम भारतीय जीवन को आद्योपान्त निखारती हुई उसके भीतर तक पहुंचने का रचनात्मक प्रयास है। कहानियां बस, ट्रेन, ठेले, रिक्शा की यात्रा करती हैं। अखबार, पत्र-पत्रिकाओं, पेपर, पेंसिल, कम्प्यूटर, मोबाइल, लैपटॉप, सब्जी-बाजार, सिनेमाघरों की उपयोगिता पर नजर दौड़ाती हैं। बैंकों, ऑफिसों, दुकानों, गलियों के जीवन से इत्तफाक रखती हैं। कई निर्जीव वस्तुओं के वार्तालाप से आपने जीवन के सजीव अंश को और अधिक सतर्क और सजग बनाया है। अक्सर मानव मन के हलचल, उहापोह, आशा-आकांक्षा को व्यक्त करने के लिए आपने निर्जीव वस्तुओं को कहानी में अहम भूमिका प्रदान की है। पीढ़ियों का संघर्ष दिखाने के लिए ग्लोब व कम्प्यूटर, रिश्तों की मसृणता को लोहे की जालियों, पति-पत्नी के नोंक-झोंक को डॉयनिंग-चेयर्स व व्यावसायिक मोल-भाव को रैक के माध्यम से आपने बखूबी प्रकाशित किया है। अतः आपकी कहानियां मानवीय संवेदनाओं के साथ निर्जीव वस्तुओं की सक्रियता को भी साथ लेकर चलती हैं। आम चीजों के जरिये जिन्दगी के खास जज्बातों को बयान करने की आपकी कला पाठकों को आह्लादित करती है। डॉ. नीलोत्पल रमेश ने लिखा है कि "कथाकार रामनगीना मौर्य ने पाठकों को यह ध्यान दिलाने की कोशिश की है कि कहानी के लिए किसी विषयवस्तु का होना जरूरी नहीं है, बल्कि दैनिक क्रिया-कलापों के बीच में आए प्रसंगों पर भी कहानी लिखी जा सकती है। कथाकार ने निर्जीव वस्तुओं में संवाद करवाकर एक नई राह की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।"- (यात्रीगण कृपया ध्यान दें- दूसरी आवृत्ति, पृ-144)

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर, गोखले मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता,
2-ए, उत्तर पल्ली, सोदपुर, कोलकाता- 700110, मो. 9433675761

हिन्दी के यूरोपीय वैयाकरण

-डॉ.अमरनाथ

आम धारणा है कि हिन्दी का पहला व्याकरण जॉन जोशुआ केटलार (Johann Joshua Ketelaar, 1659-1718) ने लिखा था लेकिन सचाई यह है कि केटलार ने हिन्दी का नहीं, 'हिन्दुस्तानी' का व्याकरण लिखा था और इसके बाद लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक जितने भी व्याकरणग्रंथ लिखे गये, सब के सब हिन्दुस्तानी के ही थे।

फिलहाल, हिन्दी के आधुनिक विद्वानों की तरह मैं भी इन्हें हिन्दी का ही व्याकरण कह रहा हूँ क्योंकि हिन्दी आज हमारी राजभाषा है और संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषा भी। किन्तु आरंभिक वैयाकरणों ने हिन्दुस्तानी शब्द का जिस भाषा-रूप के लिए इस्तेमाल किया है क्या उस भाषा-रूप से अब हमारा कोई संबंध नहीं है? क्या वह एक ऐतिहासिक भूल थी जिसे डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय तक इस देश की जनता ने अपनाया था? या यह हमारी भूल है कि हमने हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी अपना लिया? अथवा हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई भेद है ही नहीं? फिर गाँधी जी ने आजाद भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दुस्तानी का प्रस्ताव क्यों रखा था? और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन और उनके साथियों ने गाँधी जी के उक्त प्रस्ताव का विरोध क्यों किया था? संविधान सभा में भी सर्वाधिक विवादास्पद विषयों में यही विषय क्यों रहा? संविधान सभा द्वारा हिन्दी के पक्ष में लिये गये निर्णय का भारत की परवर्ती भाषायी राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ? प्रभाव भी सकारात्मक पड़ा या नकारात्मक? आज इसका आकलन हमें किस रूप में करना चाहिए? आज भारत की भाषा समस्या सुलझाने में इस आकलन से कोई सहूलियत मिल सकती है क्या ?

दरअसल जहाँगीर के शासनकाल में ही डच, पुर्तगीज, फ्रेंच तथा अंग्रेज भी बड़ी संख्या में व्यापार के उद्देश्य से भारत आने लगे थे। भारत उन दिनों समृद्धि के शिखर पर था। व्यापारियों के आने के साथ ही धर्म का प्रचार करने वाले पादरी भी आने लगे थे। ऐसी दशा में व्यापार, धर्म- प्रचार और शासन कार्य के सुचारु संचालन के लिए इस क्षेत्र की भाषा का ज्ञान अनिवार्य था और वह भाषा थी हिन्दुस्तानी। इस भाषा का कोई व्याकरण उपलब्ध नहीं था इसलिए जिन्हें इस क्षेत्र में व्यापार के उद्देश्य से लगातार आना- जाना पड़ता था, शासन के उद्देश्य से जनता के बीच संपर्क करना था या धर्म का प्रचार करना था उन सबका माध्यम भाषा थी हिन्दुस्तानी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है कि 'अकबर और जहाँगीर के समय में खड़ी बोली भिन्न- भिन्न प्रदेशों में शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा बन चुकी थी।' (हि. सा. इ., पृष्ठ -410) ऐसी दशा में विवश होकर यहाँ की भाषा का व्याकरण लिखने का कार्य भी विदेशियों को ही करना पड़ा। उनका उद्देश्य भी विदेशियों को ही यहाँ की संपर्क भाषा का सामान्य ज्ञान प्रदान करना था। इसीलिए इन व्याकरण-ग्रंथों के लेखक भी यूरोपीय ही हैं। वे या तो पादरी हैं या व्यापारी हैं या कंपनी के मुलाजिम। डॉ. अनंत चौधरी के शब्दों में, 'उनकी पद्धति तथा आदर्श दोनों ही विदेशी थे। उन लोगों ने यूरोपीय भाषाओं के व्याकरण के ढाँचे को ही, स्वल्प परिवर्तन के साथ, हिन्दी के लिए ग्रहण कर लिया था। उनमें से किसी का भी हिन्दी ज्ञान व्याकरण -लेखन के लिए पर्याप्त नहीं था। इस कारण उनके द्वारा निर्धारित अधिकांश नियम तथा उदाहरण दूषित थे। उनका ध्यान भाषा के शिष्ट रूप पर उतना नहीं था जितना बाजारू बोलचाल के रूप पर। उक्त कारणों से हिन्दी भाषी भारतीयों के लिए इस काल के व्याकरणों की कोई उपयोगिता नहीं थी..... इस युग के कई व्याकरण अंगरेजी- हिन्दी कोश की भूमिका या परिशिष्ट के रूप में लिखे गये थे।' (हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ-160) इसी कारण मैं भी इनका यहाँ सामान्य परिचय ही दे रहा हूँ।'

जॉर्ज ग्रियर्सन (Sir George Abraham Grierson, 1851-1941) ने हिन्दुस्तानी के प्रथम वैयाकरण के रूप में जॉन जोशुआ केटलार का उल्लेख

किया है और 1715 ई. इसका रचना काल माना है। (द्रष्टव्य, हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ-173) सुनीति कुमार चटर्जी ने भी ग्रियर्सन का ही समर्थन किया है और उसके व्याकरण को 'द ओल्डेस्ट ग्रामर ऑफ हिन्दुस्तानी' कहते हुए उसकी समीक्षा भी की है। उन्हें इसके लैटिन अनुवाद की एक प्रति इंग्लैंड में मिली थी। वे लिखते हैं, 'एक यूरोपियन की लिखी हुई हिन्दुस्तानी खड़ी बोली के व्याकरण की एक पुस्तक हमारे समक्ष है, जो हिन्दुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण है। ऐसी पुस्तक का विवेचन हिन्दी संसार के लिए कौतूहल से भरा होगा। सन 1895 ई. के जनवरी महीने में इटली के रोमनगर की 'रिअल एकेडिमिआ डी लिन्सी' (Reale Accademia deiLincei) सभा में इटली के देशीय पंडित सिग्नोर एमिल्यो तेत्सा (Signor Emilio Teza) ने इस व्याकरण की ओर आधुनिक विद्वत् मंडली का ध्यान आकृष्ट किया था। भारतीय भाषातत्व के आलोचकों के अग्रणी सर जार्ज ग्रियर्सन ने तदनंतर भारतवर्ष में इस पुस्तक की बात सुनायी। अपने विराट ग्रंथ 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के हिन्दी विषयक खंड में ग्रियर्सन साहब ने इस व्याकरण का एक छोटा सा वर्णन और इसके लेखक का कुछ परिचय भी दिया है।" (द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का लेख, पृष्ठ-195)

डॉ. चटर्जी का अनुमान है कि एमिल्यो तेत्सा तथा डॉ. ग्रियर्सन में से किसी ने भी मूल पुस्तक का स्वयं अवलोकन नहीं किया था। पुस्तक का परिचय देते हुए डॉ. चटर्जी ने लिखा है, "यह व्याकरण की वास्तव में एक छोटी सी पुस्तक है। हिन्दुस्तानी पदसाधन के कुछ सूत्र मात्र उदाहरण के साथ इसमें दिये गये हैं। पृष्ठ 455 से पृष्ठ 488 तक इन 32 पृष्ठों में ही कुल व्याकरण आ गया है। पुस्तक आद्यंत रोमन लिपि में छपी है। हिन्दुस्तानी शब्द रोमन में ही दिये गये हैं। केटलर की मातृभाषा जर्मन थी, पर उन्होंने यह पुस्तक डच भाषा में, विशेषतया डच लोगों के लिये ही लिखी थी। इसलिए रोमन वर्णों के मुख्यतया डच उच्चारण ही इसमें व्यवहृत हुए हैं।" (उद्धृत हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ- 176)

इस पुस्तक का विस्तृत परिचय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में संकलित डॉ. चटर्जी के लेख (पृष्ठ-194-203) में है। लेख का शीर्षक है, 'हिन्दुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण'।

डॉ. जे. फ. फोगल, कर्न इंस्टीच्यूट, लीडन के अनुसार डच भाषा में लिखित केटलार के व्याकरण की मूल प्रति हेग के स्टेट रिकार्ड ऑफिस में सुरक्षित है। यह प्रति लखनऊ में 1698 ई. में केटलार के सहायक इसाक वान दूर वूफे ने तैयार की थी। फोगल ने मूल डच से इस पुस्तक के नाम का अनुवाद इस तरह किया है,

"Instruction or Tuition in the Hindustani and Persian Language besides their declension and conjugation, together with a comparison of the Hindustani, with the Dutch weights and measures, likewise the significance of Sundry Moorish names etc by John Joshua Ketelaar, Elbingaem. And copied by Isac Van der Hoeve of Utrecht at Lucknow." A.D.1698

केटलार का जन्म कहाँ हुआ था, उसका बचपन कहाँ बीता और कैसे वह भारत आया यह एक रोचक प्रकरण है। मैं इसके विस्तार में नहीं जा रहा हूँ। उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार केटलार का जन्म 25 दिसंबर 1659 को पूर्वी प्रसा (Prussia) में बाल्टिक सागर के तट पर स्थित एलबिंगन में हुआ था। वे अपने जिल्दसाज पिता के इकलौते बेटे थे। काम सीखने के दौरान अपने मालिक को लूटने और बाद में विष देकर मारने की कोशिश के कारण उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा और वहाँ से भागना भी। वे स्टॉकहोम और फिर दो वर्ष बाद एम्सटरडम आये। बाद में उन्होंने डच ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी कर ली। कंपनी के कर्मचारी के रूप में ही वे भारत आये और कार्य की दक्षता तथा अपनी प्रतिभा के बलपर प्रोन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ते गये। लगभग दो दशक तक भारत में रहने के पश्चात 1716 ई. में वे फारस चले गये थे और वहीं 12 मई 1718 ई. को उनका निधन हुआ।

भारत में केटलार को हमेशा कंपनी के काम से सूरत से दिल्ली, आगरा, लाहौर आदि शहरों में आना-जाना पड़ता था। इन्हीं यात्राओं में उन्होंने

हिन्दुस्तानी का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया और डच लोगों को हिन्दुस्तानी का सामान्य ज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से हिन्दुस्तानी का व्याकरण लिखने की ओर प्रेरित हुए।

हिन्दुस्तानी के दूसरे वैयाकरण हैं–पादरी बेनजामिन शुल्जे (Benjamin Schulze, 1689-1760) और उनकी पुस्तक का नाम है 'ग्रामेटिका हिन्दोस्तानिका'। सोनेनवर्ग में जन्में शुल्जे 1719 ई. में भारत आये और यहीं पादरी की दीक्षा लेने के बाद मद्रास में मिशन स्थापित किया। वे वर्षों तक दक्षिण में ईसाई धर्म का प्रचार करते रहे। इसी दौरान उन्होंने लैटिन में हिन्दुस्तानी का व्याकरण लिखा। उन्होंने इसमें हिन्दी शब्दों के लिए फारसी लिपि का प्रयोग किया है। ग्रंथ में देवनागरी वर्णमाला का परिचय भी दिया गया है। डॉ. मुरलीधर श्रीवास्तव के अनुसार, 'इनकी पुस्तक से ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने दक्खिन में रहते हुए वहाँ बोलचाल में प्रचलित हिन्दुस्तानी सीखी और उसी के आधार पर अपना व्याकरण लिखा।' (हिन्दी के यूरोपियन विद्वान : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ-197)उन्होंने आगे भी लिखा है, 'जिस हिन्दुस्तानी के उदाहरण उनमें मिलते हैं वे दिल्ली के पास -पड़ोस के शिष्ट जनों की हिन्दी या हिन्दवी नहीं थी, वह दक्खिन के ऐसे सामान्य मुसलमानों की, जो फारसी नहीं जानते थे, बोलचाल की जबान थी। इसमें सरल तद्भव शब्द भी ग्रहीत थे। इस भाषा को कभी- कभी 'गूजरी' भी कहते थे। इसका सही नाम दक्खिनी ही होना चाहिए।' (उपर्युक्त, पृष्ठ- 204)

सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' (वाल्यूम-9 भाग-1) में जार्ज हाड्ले (George Hadley) के व्याकरण- ग्रंथ का उल्लेख किया है। 1772 ई.में लंदन से प्रकाशित इस पुस्तक का नाम है, 'ग्रामेटिकल रिमार्क्स ऑफ द प्रेक्टिकल ऐंड वल्गर डाइलेक्ट ऑफ द इन्दोस्तान लैंग्वेज, कॉमनली कॉल्ड मूर्स, विथ ए वोकेबुलरी, इंग्लिश एंड मूर्स...द प्रेक्टिस इन बंगाल।'

उल्लेखनीय है कि अट्ठारहवीं सदी तक अनेक विदेशी विद्वानों में हिन्दुस्तानी भाषा को 'मूर्स' अर्थात असभ्य लोगों की अशिष्ट और गँवारू बोली कहने का चलन था। वे यह भी मानते थे कि इस गँवारू बोली का व्यवस्थित व्याकरण लिखा जाना संभव नहीं है। किन्तु हाड्ले ने अपने इस ग्रंथ में उक्त धारणा का खंडन करते हुए हिन्दुस्तानी के लोक-प्रचलित रूप के सामान्य व्याकरणिक गठन को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उसने हिन्दी शब्दों तथा वाक्यों के लिए रोमन तथा फारसी लिपियों का उपयोग किया है।

हाड्ले की उक्त पुस्तक का पाचवाँ संस्करण 1801 ई. में संशोधित रूप में प्रकाशित हुआ जिसका संशोधन लखनऊ के मिर्जा मोहम्मद फितरत ने किया था। उन्होंने इस पुस्तक का नाम भी बदल दिया था और उसका नया नाम था, 'ए कम्पेणिडयस ग्रामर ऑफ द करेण्ट करप्ट डाइलेक्ट ऑफ द जार्गन ऑफ हिन्दुस्तान कॉमनली काल्ड मूस।'

1773 ई. में लंदन से प्रकाशित जॉन फारगूसन (John Fergusson) का व्याकरण भी खास महत्व का है। पुस्तक का नाम है 'ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दुस्तान लैंग्वेज।' इस पुस्तक के प्रारंभिक 58 पृष्ठों में "ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तान लैंग्वेज" संकलित है। जॉन फारगूसन ने 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग हिन्दुस्तानी के अर्थ में ही किया है। फारगूसन ने अपनी इस कृति को ब्रिटिश सम्राट के नाम समर्पित किया है। अंग्रेजी में लिखी गयी इस पुस्तक में हिन्दुस्तानी के उदाहरण भी रोमन में दिये गये है।

फारगूसन ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन कैप्टन थे। भारत में रहते हुए उन्हें देश के विभिन्न हिस्सों में जाना पड़ा था जिसके कारण वे यहाँ की अनेक भाषाओं से परिचित हुए। उन्होंने अपनी इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है, 'संस्कृत इस देश के ब्रह्मणों की भाषा है, जिसे वे अपने धर्म के नितान्त गोपनीय रहस्यों के समान विदेशियों से छिपाकर गुप्त रखते हैं। फारसी का प्रयोंग अदालती कामों और शिक्षित लोगों के पारस्परिक सम्भाषण तक सीमित है। केवल हिन्दुस्तान ही देश के सर्वसामान्य की भाषा है, जिसे देश के सभी पेशे और स्तरों के लोग चाहे वे शिक्षित होंया अशिक्षित, दरबारी हों या किसान तथा हिन्दू हों या मुसलमान, समान रूप से समझते हैं और व्यवहार में लाते हैं. इसीलिये वह विदेशियों के वास्ते

सर्वाधिक उपयोगी भाषा है।' (उद्धृत, हिन्दी व्याकरण का इतिहास, अनंत चौधरी, पृष्ठ 187) उन्होंने आगे लिखा है, 'हिन्दुस्तान इस साम्राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक समझी और बोली जाती है।' (उपर्युक्त, पृष्ठ- 187)

फारगूसन के इस व्याकरण ग्रंथ के बारे में डॉ. अनंत चौधरी ने लिखा है, 'फारगूसन के पूर्व यद्यपि केटलर एवं शुल्जे हिन्दी व्याकरण की रचना कर चुके थे, किन्तु उनमें से किसी के मूल ग्रंथ की प्रति भारतवर्ष में उपलब्ध नहीं है। अतः उनके संबंध में हमारी जानकारी अन्य विद्वानों के लेख पर आश्रित है। किन्तु फारगूसन के ग्रंथ की यथादर्श प्रति (फोटो स्टेट कॉपी) सौभाग्य से कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में सुरक्षित है जहाँ से देखने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। फारगूसन ने अपने ग्रंथ की भूमिका में हिन्दी के संबंध में जो महत्वपूर्ण सूचनाएं दी हैं, वे हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी व्याकरण, तीनों के अध्येताओं के लिये अतिशय महत्वपूर्ण हैं।' (उपर्युक्त, पृष्ठ-187)

फारगूसन ने अपनी इस पुस्तक का प्रणयन कंपनी के बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स की अनुमति लेकर किया था और उसका उद्देश्य भी ऐसे अंग्रेजों को हिन्दुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में सहयोग करना था जो इस देश में रहते थे अथवा इंग्लैंड में रहते हुये भी हिन्दुस्तानी के विषय में जानने के इच्छुक थे। हिन्दुस्तानी की लिपि के बारे में फारगूसन ने लिखा है, 'हिन्दुस्तान- भाषा की वास्तविक लिपि नागरी है, जो यूरोपीय लिपि के समान बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती है। किन्तु अधिकाँश लोग इस भाषा के लिए सामान्य रूप से फारसी लिपि का ही प्रयोग करते हैं। भारत में चूँकि फारसी बोलना और लिखना अभिमान की बात समझा जाता है, इसलिये जो लोग हिन्दुस्तानी- भाषा में लिखते हैं वे भी फारसी लिपि का ही प्रयोग करते हैं।' (उपर्युक्त, पृष्ठ-192)

सन 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई जिसमें हिन्दी नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी विभाग खुला और इसके प्रथम विभागाध्यक्ष थे डॉ. जॉन बोर्थविक गिलक्रिस्ट (John Borthwick Gilchrist,1759-1841)। गिलक्रिस्टकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें 1796 ई. में प्रकाशित 'ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' नामक पुस्तक भी है. 1802 में प्रकाशित उनकी एक अन्य पुस्तक 'द स्ट्रैंजर्स ईस्टगाइड दु हिन्दुस्तानी' में भी आरंभ का बड़ा हिस्सा व्याकरण ही है।

जॉन गिलक्रिस्ट ने पहली बार हिन्दुस्तानी की तीन शैलियों का जिक्र किया है, फारसी या दरबारी शैली, हिन्दुस्तानी शैली और हिन्दवी शैली। दरबारी शैली कचहरियों की भाषा थी, हिन्दुस्तानी शैली को ही उन्होंने 'द ग्रैंड पापुलर स्पीच ऑफ हिन्दुस्तान' कहा है और हिन्दवी शैली को 'गँवारू' या 'वल्गर'। इसी हिन्दवी शैली को उन्होंने हिन्दुओं से जोड़ा था। गिलक्रिस्ट ने इस भेद को रेखांकित करते हुए सदल मिश्र जैसे पंडित को 'प्रेमसागर', 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' जैसी कृतियों के प्रणयन की ओर प्रेरित किया। उन्होंने 'द हिन्दी स्टोरी टेलर' और 'हिन्दी मैनुअल जैसी कृतियों का सृजन भी किया। गिलक्रिस्ट ने हिन्दुस्तानी को 'मूर्स' तथा 'जार्गन' अर्थात बर्बर एवं अशिष्ट बोली मानने वालों का विरोध किया है और उसे शिष्ट एवं समृद्ध भाषा माना है। उनके अनुसार यों तो हिन्दुस्तान के विभिन्न जिलों तथा प्रान्तों में अलग-अलग बोलियों का प्रचार है किन्तु हिन्दुस्तानी उन सबसे अधिक उपयोगी और जरूरी है। उनके अनुसार व्यापारी हों या पर्यटक, नागरिक अधिकारी हों या सैनिक अफसर, वकील हों या धर्मोपदेशक तथा दार्शनिक हों या चिकित्सक, संक्षेप में कोई भी ऐसा व्यक्ति, जिसका भारत के साथ किसी प्रकारका भी संबंध है, उसके लिए हिन्दुस्तानी अन्य सबकी अपेक्षा सामान्यतः अधिक लाभप्रद एवं आवश्यक है। (द्रष्टव्य, हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ-219)

गिलक्रिस्ट की नजर में हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी का वही स्थान है जो यूनाइटेड किंगडम के लिए अंगरेजी तथा टर्की के लिए तुर्की का। इसीलिए उनका भी मुख्य उद्देश्य हिन्दुस्तानी का व्यवस्थित व्याकरण लिखना नहीं अपितु अंगरेजों को हिन्दुस्तानी का सामान्य ज्ञान कराना था। यही कारण है कि उनके व्याकरण में भी एक सर्वांगपूर्ण व्याकरण के गुणों का अभाव है।

संगीत में रुचि रखने वाले और पयर्टन के उद्देश्य से भारत की यात्रा करने वाले हेरसैम लेबडेफ (Hersam Lebdeff) नाम के एक अंग्रेज ने भी 'ग्रामर ऑफ द प्योर ऐंड मिक्स्ड ईस्ट इंडियन डाइलेक्ट्स' नामक व्याकरण ग्रंथ की रचना की है जिसका प्रकाशन 1801 ई. में लंदन से हुआ। इस पुस्तक को भी लेखक ने ईस्ट इंडिया कंपनी को ही समर्पित किया है। लेबडेफ 1785 ई. में मद्रास आया और इसके दो वर्ष बाद कलकत्ता। अपनी संगीत कला के कारण शीघ्र ही वह अंग्रेजों के बीच अपनी पहचान बनाने में सफल रहा। 1797 ई. में वह इंग्लैंड चला गया और वहीं रहकर उसने अपने व्याकरण की रचना की। मिक्स्ड भाषा से उसका अभिप्राय बोलचाल की हिन्दुस्तानी अथवा बाजारू हिन्दुस्तानी से था। कलकत्ता के बाजार में उन दिनों ऐसी ही मिली- जुली हिन्दुस्तानी अधिक चलती थी जिससे परिचय कराया था उसके बंगाली स्कूल मास्टर गोलोकनाथ दास ने। हिन्दी क्षेत्र में उसकी यात्रा का उल्लेख नहीं मिलता है। ऐसी दशा मे ंहिन्दी क्षेत्र में लोक-प्रचलित हिन्दुस्तानी से उसका परिचय शायद नहीं था। ग्रियर्सन ने इसकी रोमन लिप्यंतरण प्रणाली और व्याकरणिक विवरण को भी दोषपूर्ण माना है। (द्रष्टव्य, हिन्दी के यूरोपियन विद्वानः व्यक्तित्व और कृतित्व, मुरलीधर श्रीवास्तव, पृष्ठ- 208) इस व्याकरण ग्रंथ को डॉ. महादेव साहा ने फिरसे संपादित करके प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के आधार पर उस समय की 'कलकतिया हिन्दी' के बारे में जानकारी हासिल की जा सकती है।

आरंभिक वैयाकरणों मे रोयबक (Thomas Roebuck, 1781-1819) का नाम भी महत्वपूर्ण है। 1811 में कलकत्ता से प्रकाशित रोयबक की पुस्तक 'एन इंग्लिश एंड हिन्दुस्तानी नवल डिक्शनरी ऑफ टेक्निकल टर्म्स एंड सी फ्रेजेज, ऐज आलसो द वैरियस वर्ड्स ऑफ कमान्ड गिवेन इन वर्किंग शिप विथ ए ग्रामर प्रिफिक्स्ड।' इस पुस्तक का व्याकरण भाग फोर्ट विलियम कॉलेज के पाठ्यक्रम में निर्धारित था। कैप्टन टेलर के अनुसार यह अपने समय का सर्वोत्तम व्याकरण था। आगे चलकर इसके कई संशोधित संस्करण प्रकाशित हुए और संशोधन करने वाले थे विलियम कारमाइकल स्मिथ।

हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर रहे जॉन शेक्सपियर (John Shakespeare,1774-1858) का व्याकरण भी अपने समय का लोकप्रिय व्याकरण ग्रंथ था। 1813 ई. में प्रकाशित इस पुस्तक का नाम है 'ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज'। इस व्याकरण ग्रंथ के अनेक संस्करण हुए थे। परवर्ती वैयाकरणों ने भी बड़े आदर के साथ इस व्याकरण का उल्लेख किया है। उन्ही की एक अन्य पुस्तक 'एन इंट्रूडक्शन टु द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' के आरंभिक 87 पृष्ठों में हिन्दुस्तानी का व्याकरण ही है। शेक्सपियर का भी मुख्य उद्देश्य अंग्रेज विद्यार्थियों को हिन्दुस्तानी का सामान्य ज्ञान प्रदान करना था। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी व्याकरण के आधार पर ही अपने ग्रंथ के व्याकरण भाग की रचना की है. हिन्दुस्तानी के लिए उन्होंने फारसी तथा देवनागरी दोनों ही लिपियों का प्रयोग किया है और इसका कारण बताते हुए लिखा है कि हिन्दू लोग हिन्दुस्तानी को देवनागरी में और मुसलमान लोग फारसी में लिखा करते हैं.

फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष रहे विलियम प्राइस (William Price, 1780-1830) की भी व्याकरण की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। पुस्तक का नाम है, 'ए न्यू ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज, विथ सेलेक्सन फ्राम द बेस्ट ऑथर्स टू ह्विच आर एडेड फेमिलियर फ्रेजेज एंड डाइलॉग्स इन द प्रापर कैरेक्टर।' 1828 ई. में प्रकाशित इस पुस्तक की कोई खास नोटिस नहीं ली गयी।

'इन्ट्रूडक्शन टू द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' शीर्षक से विलियम येट्स (W.Yates) की एक पुस्तक 1827 ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। तीन खंडों में विभाजित इस पुस्तक का पहला खंड व्याकरण का था। इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए थे जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है।

हिन्दी भाषा में हिन्दी का व्याकरण लिखने वाले विलियम एम.टी. आदम एक पादरी थे. उनकी पुस्तक 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' 1827 ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। विदेशी वैयाकरणों में

आदम साहब ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी, हिन्दुई आदि के बदले हिन्दी शब्द का प्रयोग किया था। आदम साहब का व्याकरण प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया था। कामता प्रसाद गुरु ने लिखा है, 'लल्लूलाल के व्याकरण के लगभग 25 वर्ष पश्चात् कलकत्ता के पादरी आदम साहब ने हिन्दी व्याकरण की एक छोटी सी पुस्तक लिखी, जो कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रही। इस पुस्तक में अंगरेजी व्याकरण के ढंग पर हिन्दी व्याकरण के कुछ साधारण नियम लिखे गये हैं। पुस्तक की भाषा पुरानी, पंडिताऊ और विदेशी लेखक की स्वाभाविक भूलों से भरी हुई है। इसमें पारिभाषिक शब्द बंगला व्याकरण से लिये गये जान पड़ते हैं और हिन्दी में समझाते समय विषय की कई भूलें भी हो गयी हैं।' (हिन्दी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, भूमिका, पृष्ठ-6)

विलियम एण्ड्रिउ का 'ए कम्प्रिहेन्सिव सिनॉप्सिस ऑफ द एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दुस्तानी ग्रामर' शीर्षक ग्रंथ 1830 ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ था। डॉ. अनंत चौधरी के अनुसार, 'यह अत्यंत सामान्य कोटि का ग्रंथ था। इस कारण न तो इसकी ख्याति ही हो सकी और न कोई अन्य संस्करण ही प्रकाशित हुआ।' (हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ- 227)

1831 ई. में सैंडफोर्ड ऑर्नोट (Sandford Arnot,1797-1834) का 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' लंदन से प्रकाशित हुआ था. इसी का संशोधित संस्करण 1844 ई. में लंदन से पुनः प्रकाशित हुआ जो पहले की तुलना में बहुत अलग था. आर्नोट यहाँ भाषा का अध्यापन कर चुके थे किन्तु अपने ग्रामर की रचना उन्होंने यहाँ से इंग्लैंड लौटने के बाद की। अपने ग्रंथ की भूमिका में उन्होंने हिन्दुस्तानी के बारे में लिखा है, 'हिन्दुस्तानी ब्रिटिश साम्राज्य की दस करोड़ भारतीय प्रजा की सामान्य बोलचाल की भाषा है तथा वह शीघ्र ही भारत के न्याय, व्यापार, सेना तथा राजनीति संबंधी कार्यों के उपयोग की भाषा बनने वाली है. ऐसी महत्वपूर्ण भाषा की ओर इंग्लैंड के लोगों का ध्यान जिस मात्रा में आकृष्ट होना चाहिए, अभी तक नहीं हुआ।' (उद्धृत, हिन्दी व्याकरण का इतिहास, पृष्ठ- 228)

जेम्स आर. बैलन्टाइन (James R. Ballantyne) ने हिन्दी व्याकरण संबंधी तीन पुस्तकें लिखी है, 'ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज विथ ग्रामैटिकल एक्सरसाइजेज', 'एलिमेंट्स ऑफ हिन्दी एंड ब्रजभाषा ग्रामर' तथा 'ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज विथ नोटिसेज ऑफ द ब्रज एंड दक्खिनी डायलेक्ट्स'।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है बैलन्टाइन ने पहली कृति में हिन्दुस्तानी, दूसरी में हिन्दी एवं ब्रजभाषा तथा अपनी तीसरी कृति में हिन्दुस्तानी, ब्रज और दक्खिनी, तीनों रूपों के व्याकरण का विवेचन किया था। दूसरी कृति में भी हिन्दी से उनका तात्पर्य हिन्दुस्तानी से ही था। उनके द्वारा हिन्दी शब्द के इस्तेमाल से समझा जा सकता है कि उन दिनों 'हिन्दुस्तानी' के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भी होने लगा था।

हिन्दी साहित्य के पहले इतिहासकार के रूप में ख्यात गार्सां द तासी (Joseph Heliodore Garcin de Tassy,1794-1878) ने भी 'स्त्रडिमेन्ट्स डि ला लैंगुए हिन्दोस्तानी' (1829) तथा 'स्त्रडिमेन्ट्स डि ला लैंगुए हिन्दुई' (1847) जैसी कृतियों की रचना फ्रेंच में की और वे पेरिस में छपीं भी। जाहिर है, उनका उद्देश्य पेरिस के अपने विद्यार्थियों को हिन्दुस्तानी की शिक्षा देना रहा होगा। फ्रेंच में होने के कारण उनके ग्रंथ भारत में सुलभ नहीं थे।

डंकन फोर्ब्स (Duncan Forbes,1798-1868) का 'हिन्दुस्तानी मैनुअल' शीर्षक व्याकरण ग्रंथ 1845 ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ था। दो भागों में बँटी इस पुस्तक के पहले भाग में व्याकरण और दूसरे में कोश था। इसके कई संस्करण हुए थे जिससे इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है। उनका एक दूसरा ग्रंथ भी 'ए ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' सन 1846 ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक भी काफी लोकप्रिय हुई थी।

रेवरेन्ड विलियम एथारिंगटन (Rev. William Etherington) ने हिन्दी भाषा का एक व्याकरण 'द स्टूडेन्ट्स ग्रामर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेज' लिखा है जिसका प्रकाशन 1870 ई. में बनारस के ई.जे.लजारस कं. से हुआ था। यह छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गयी पुस्तक थी। इसके आमुख में

लेखक ने स्वीकार किया है कि हिन्दी का जो रूप बनारस में चलता है उसे सिक्खों, गुजराती, मराठे और नेपाली और दूसरी जाति के लोग भी आसानी से समझ लेते हैं, जिनकी अपनी -अपनी भिन्न- भिन्न बोलियाँ हैं। (उद्धृत, हिन्दी के यूरोपियन विद्वान : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ- 227)

ई.बी. इस्टविक (Edward Backhouse Eastwick, 1814-1883) का 'ए कन्साइज ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज' 1847 ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ था। (Linguistic survey of India, vol. 9, Part.1, Page-21) इसका दूसरा संस्करण भी 1858 ई. में छपा। यह भी एक साधारण स्तर का व्याकरण था।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने (Linguistic survey of India, vol.9, Part.1, Page-21) जर्मन भाषा के विद्वान जे. डेटलो प्रोखनों के जर्मन भाषा में लिखे गये हिन्दी व्याकरण का उल्लेख किया है जिसका प्रकाशन 1852 ई. में बर्लिन से हुआ था.

फॉकनर (Alexander Faulkner) की भी एक व्याकरण की पुस्तक 1853 ई. में बंबई के अमेरिकन मिशन प्रेस से छपी थी। पुस्तक का नाम है, 'द ओरिएण्टलिस्ट्स ग्रामेटिकल वादे-मेकम।' इसमें हिन्दुस्तानी, फारसी तथा गुजराती, तीनो भाषाओं का अलग-अलग संक्षिप्त व्याकरण दिया गया है.

रेवरेन्ड एस.एच.केलॉग (Reverend Samuel Henry Kellogg, 1836-1899) ऐसे पहले वैयाकरण थे जिन्होंने 'ग्रामर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेज' शीर्षक से हिन्दी का स्तरीय व्याकरण लिखा। उनका व्याकरण 1875 ई. में प्रकाशित हुआ। लॉग के अमेरिका प्रेस्विटीरियन चर्च के पादरी थे। वे अमेरिका ओरियन्टल सोसायटी के सम्मानित सदस्य भी थे। उनका मिशनरी रूप में कार्यक्षेत्र हिन्दी प्रदेश ही था जिसके कारण वे हिन्दी प्रदेश से भली- भाँति परिचित हो गये। इसीलिए केलॉग के व्याकरण में हिन्दी की बोलियों को भी प्रर्याप्त महत्व दिया गया है।

केलॉग का कहना है कि "प्योर हिन्दी' के नाम पर कुछ विदेशी भी हिन्दी में से अरबी- फारसी शब्दों का बहिष्कार करना आवश्यक समझते हैं और उसका समर्थन भी करते हैं.. गिलक्रिस्ट ने भी इसी भाषा नीति के कारण खड़ी बोली से यामिनी भाषा निकाल कर प्रेमसागर की भाषा लिखवाई थी। .. पर सच्ची स्थिति यह है कि जिस रूप में लोग बोलते हैं, उस लोक प्रचलित रूप में अरबी - फारसी का सर्वथा वर्जन नहीं होता। (उद्धृत, हिन्दी के यूरोपीय विद्वानः व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ-241)

इन सारे व्याकरण ग्रंथों के अनुशीलन से पता चलता है कि यूरोप के वैयाकरणों ने इनकी रचना हमारे देश की भाषा से प्रेम के नाते या व्याकरणिक दृष्टि से हमारी हिन्दी परिमार्जित करने के उद्देश्य नहीं की है अपितु उन्होंने इस देश में शासन करने के उद्देश्य से आने वाली कंपनी के अंग्रेज अधिकारियों को हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए या ईसाई धर्म के प्रचार के उद्देश्य से आने वाले मिशनरियों के कर्मचारियों को यहाँ की भाषा और संस्कृति से परिचित कराने के लिए की है।

वक्त बदलने के साथ इन व्याकरण ग्रंथों की उपयोगिता घटती गयी और उनकी उपलब्धता भी। इनमें से ज्यादातर व्याकरण ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। बहुत थोड़े से हैं जिनकी प्रतियाँ कोलकाता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में मिल सकती हैं।

संपर्क : 164/402, सेक्टर-2, साल्टलेक, कोलकाता-700091, **मो.** 9433009898

स्त्री साहित्य - बदलते परिप्रेक्ष्य

-पूनम सिंह

अस्मिता संघर्ष की चुनौती को स्वीकार करने वाला साहित्य ही 'स्त्री साहित्य' है। नारीवाद और स्त्री मुक्ति की अवधारणा भले ही पश्चिम की देन कही जाती हो लेकिन भारत का स्त्री साहित्य वेद की ऋचाओं से निःसृत होकर 21वीं सदी तक अपने लेखन में स्त्री को एक व्यक्ति सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करने की अन्तहीन लड़ाई लड़ रहा है।

वैदिककाल में वेद की सूक्तियाँ रचने वाली ब्रह्मवादी स्त्रियों ने पितृसत्ता से प्रश्न किये थे और कठिन शास्त्रार्थ किया था। मैत्रयी ने याज्ञवलक्य से अमर होने का जो रहस्य जानना चाहा था, उसका समुचित उत्तर ज्ञानी ऋषि के पास नहीं था। गार्गी ने भी याज्ञवलक्य से दो जटिल प्रश्न पूछे थे और ऋषि को बहुत क्रोध आया था। मैत्रयी, गार्गी आदि पहली स्त्रीवादी लेखिकाएँ थीं, जिनकी सूक्तियों और संवादों में वैचारिक चेतना और अस्मिता विमर्श के अँखुआते बीज देखे जा सकते हैं।

बौद्धकाल की 'थेरीगाथा' और 'गाथा सप्तशती' की स्त्री रचनाकारों के भीतर भी 'स्व' की खोज की एक करुण छटपटाहट थी।

'अहा मैं मुक्त हुई' - सुमंगला थेरी के मुँह से हहराता यह स्वर आज के बदलते परिदृश्य में स्त्री मुक्ति की पूर्व पीठिका है। यह मुक्ति कैसी थी ?इसकी अर्थध्वनि को बदलते समय के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है।

थेरियों ने चौका चूल्हा, कुँए से पानी भरने और कुबड़ा पति तक से मुक्ति की कामना की थी, जिसे सुनकर बुद्ध भी थर्रा गये थे। उन्हें दीक्षित करने से पहले उनके मन में भीषण द्वन्द्व हुआ था। भारतीय समाज की संरचना, पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन को लेकर वे बहुत विचलित हो गये थे। उन्हें मठ के भीतर शिष्यों की साधना में भी स्त्रियों का प्रवेश एक अवरोध की तरह संशयग्रस्त कर गया था। लेकिन थेरियों ने हार नहीं मानी और स्त्री अस्मिता के मुहाने पर रखे शिलाखंड को उठाकर निर्झर नदी की तरह अपने को स्वतंत्रचेता और वर्जनामुक्त बनाया।

आज स्त्री साहित्य के बदलते परिदृश्य में 'अहा! मैं मुक्त हुई' का वह हहराता स्वर हर ओर सुनाई देता है। बौद्धकाल की थेरियाँ आज स्त्री मुक्ति का नया आख्यान रच रही हैं।

तभी तो अनामिका लिखती हैं -

"उनके ही पदचिह्न टोहती / उल्टी दिशा में मैं लौटी / उन थेरियों तक/ -----/ भूख, प्यास, नींद और कामना भी थेरियाँ ही हैं / रास्ता दिखाती हैं और साथ कभी नहीं छोड़तीं।" थेरीगाथा से उद्बुध आज का स्त्री साहित्य स्त्री मुक्ति की अवधारणा का बहुआयामी विस्तार है।

मध्यकाल में मीराबाई, सहजोबाई, मुक्ताबाई जैसी सशक्त स्त्री रचनाकारों और अनाम अनगिन निम्न समुदाय की योगिनियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया था। पितृसत्ता के दुर्गद्वार को तोड़कर मीरा अपने मनचेता पुरुष कृष्ण के पास गई थीं। पुरुष संतों की संगति की थीं और मध्यकाल में अपनी लेखनी से स्त्री अस्मिता की एक बड़ी लड़ाई लड़ी थीं। स्त्री साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य में मीरा स्त्री मुक्ति का मंगलाचरण लिखने वाली पहली स्वतंत्रचेता स्त्री लेखिका हैं। इतिहास के आईने में हम स्त्री, स्त्रीवाद और उसके साहित्य को संस्कृति और पारिस्थितिकी के कई पड़ावों से गुजरते और स्त्री चेतना से निर्मित अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों में विकसित होते देख सकते हैं।

'स्त्री साहित्य' में स्त्री के 'स्व' की खोज करने वाली पहली पुस्तक 'सीमन्ती उपदेश' 1882 में एक अनाम लेखिका ने लिखी थी। यद्यपि अब वे अनाम नहीं हैं, उनका संभावित नाम खोज लिया गया है। इस पुस्तक में लेखिका लिखती है - "स्त्रियों को यह अहसास होना चाहिए कि वे जेल में बंदी बनकर जी रही हैं और जेल को ही स्वर्ग मान बैठी हैं।" उन्होंने विवाहित औरत के भीतर यह चेतना भी जगाई कि - "अगर उनके पति दूसरी स्त्री से संबंध बनाते हैं तो उन्हें भी पुरुष मित्र बनाने का हक है।"

ध्यातव्य है कि यह सोच एक अनाम भारतीय लेखिका की उस किताब में देखी गई जो सिमोन द बुआ की 'द सेकेण्ड सेक्स' (1949) और वर्जिनिया वुल्फ की (1929) 'ए रूम ऑफ वन्स वोन' से बहुत पहले 'स्त्री अस्मिता' की पहली जमीन तैयार करती दिखती है।

आधुनिक हिन्दी कहानी के प्रस्थान बिन्दु पर ही अगर हम गौर करें तो जिन कहानियों को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी की सूची में रखकर विचार किया गया है, उसमें बंग महिला के नाम से विख्यात नवजागरण की पहली छापामार लेखिका राजेन्द्रबाला घोष की कहानी 'दुलाई वाली' का नाम भी है, जो 'सरस्वती' में 1907 में प्रकाशित हुई थी।

नारी शिक्षा और नारी स्वातंत्र्य को लेकर लिखे गये बंग महिला के लेख और कहानियाँ उस समय की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में उनकी रचनाएँ असहमति के बावजूद प्रकाशित कर रहे थे। नारी स्वातंत्र्य के पक्षधर होने के कारण विधवा बंग महिला को अनेक लांछनों का शिकार भी होना पड़ा था। यह भी कहा गया कि कोई पुरुष ही 'बंग महिला' के नाम से लिख रहा है। जैसा कि आज के समय में मैत्रयी, अलका सरावगी, महुआ मांझी को भी सुनना पड़ा है। ये सारे प्रसंग पितृसत्ता की संकीर्ण मानसिकता और आलोचना की इकहरी दृष्टि के परिचायक हैं, जिसने स्त्री साहित्य को हमेशा हाशिए पर रखा। अपने समय में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं को भी उतना महत्व नहीं दिया गया, जितना उनके समकालीन पुरुष लेखकों को मिला।

महादेवी केवल दुःखवाद की कवयित्री मान ली गईं, जबकि उनके गद्य में एक स्त्री का बहुत समर्थ, ठोस और स्वतंत्र स्वर है। भारतीय स्त्री की स्वतंत्रता और अस्मिता के लिए आज के स्त्री साहित्य में जो चिंता और बेचैनी है, वह 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के लेखों में 30 के दशक में ही व्यक्त हुई हैं।

इसी नवजागरण काल में सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ और कहानियाँ समय सजग दृष्टि का विस्तार लेकर आई थीं। एक आत्मचेता स्त्री के सर्जनात्मक व्यक्तित्व को विवाह संस्था किस तरह नष्ट करती है इसका मार्मिक आख्यान उनकी 'भग्नावशेष' कहानी है। उन्होंने हिन्दी साहित्य को कई महत्वपूर्ण कथा संग्रहों से समृद्ध किया लेकिन उनकी पहचान भी केवल राष्ट्रीय चेतना की कवयित्री के रूप में हुई।

सुभद्रा कुमारी चौहान के समय ही दूसरी कथा लेखिका सुमित्रा कुमारी सिन्हा हैं, जिन्हें डॉ. गोपाल राय ने हिन्दी की पहली नारीवादी कहानीकार कहा। उन्होंने अपनी कहानियों में विवाहित स्त्री के परकीय प्रेम की वकालत की है तथा पितृसत्ता द्वारा स्त्री के शोषण के कई पहलुओं को उजागर किया है। उन्होंने घर के आँगन से बाहर के कार्यक्षेत्र तथा स्त्री श्रम और स्त्री के यौन शोषण पर साहस पूर्वक खुलकर लिखा है।

आजादी के पहले की चर्चित महिला कथाकार हैं चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जिनका का पहला कहानी संग्रह 'आदमखोर' 1945 में प्रकाशित हुआ था। अपनी आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' में उन्होंने स्त्री के लेखक बनने और लिखने के कारणों का जो ब्योरा दिया था वह गौर तलब है - "जाको पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई" - स्त्री लेखन यही है। वे कहती हैं - "मैं देश के निम्न मध्यवर्गीय समाज की उपज हूँ। मैंने देश के बहुसंख्यक समाज को विपरीत परिस्थितियों में जूझते, कुम्हलाते और खत्म होते देखा है। स्वयं मैंने दर्द को सहा और जिया है। यही जीवन का सत्य आत्मसात होकर मेरे लेखन का आधार बना।"

पूरी दुनिया का संपूर्ण स्त्री साहित्य इसी देखे और भोगे हुए यथार्थ का ही प्रामाणिक साक्ष्य है। चूँकि पूरी दुनिया में स्त्री की गुलामी का इतिहास और उसके दोयम दर्जे की नागरिकता का दंश सदियों पुराना है इसलिए पुरुष निर्मित इस दुनिया में स्त्रियों ने पराधीनता का दर्द एक तरह से झेला है। फ्रांसीसी क्रांति के समय पश्चिम की स्त्रियों में नारीवादी चेतना का विकास हुआ था और भारत में नवजागरण काल में स्त्रियाँ जागी थीं। जिन दिनों देश परतंत्र था, स्त्री साहित्य देश की परतंत्रता और स्त्रियों की गुलामी का दस्तावेजी संस्करण तैयार कर रहा था। 19वीं सदी के अंत में पराधीन देश में अनेक महिला लेखिकाएँ मजबूत लेखनी और जागृत मनीषा के साथ समाज की जड़ताओं और विद्रूपताओं के विरुद्ध एक प्रतिपक्ष की भूमिका में सामने आई थीं। पंडिता रमाबाई, मनोरमा मजूमदार, कादम्बिनी बाई आदि समाज सुधार आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए स्त्री मुक्ति आंदोलन की एक नई जमीन तैयार कर रही थीं। विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर की बहन स्वर्ण कुमारी देवी अपने समय की महत्वपूर्ण लेखिका और उत्कृष्ट समाज सेविका थीं। 'सखी समिति' की स्थापना करके उन्होंने विधवाओं को हस्त कला में प्रशिक्षण देकर स्वावलंबी बनाया था। उनकी सुपुत्री सरला देवी घोषाल भी राष्ट्रीय मुक्ति बनाम स्त्री मुक्ति आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं।

आज स्त्री साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य में पंडिता रमाबाई पर युवा कवि आलोचक डॉ. सुजाता ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसी तरह सरला देवी पर केन्द्रित अलका सरावगी का उपन्यास भी अभी-अभी प्रकाशित हुआ है - ''गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय''। हाल के दिनों में ही राजगोपाल सिंह वर्मा का 'स्वर्णा' उपन्यास भी टैगोर की अल्पचर्चित विदुषी बहन की जीवनी है। इन पुस्तकों में स्त्रियों द्वारा समतावादी समय और समाज की खोज के लिए किया गया कठिन संघर्ष दर्ज है। उस समय अनेक प्रबुद्ध स्त्रियों ने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। 1848 में मोक्षदायिनी देवी ने पहली भारतीय महिला पत्रकार के रूप में 'बंग महिला' नामक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन किया था। हाल के दिनों में 'आधी दुनिया की पूरी पत्रकारिता' पर डॉ. मंगला अनुजा ने डिलीट किया है। इसमें उन्होंने दो हजार महिला पत्रकारों के नामों की खोज की है, जो अपने आप में एक ऐतिहासिक खोज है।

हमें स्त्री साहित्य के नये परिप्रेक्ष्य पर विचार करते हुए इतिहास के इन पन्नों को भी पलटने की जरूरत है, क्योंकि भारतीय नारीवाद इतिहास और परम्परा से जुड़ा हुआ है। आज का स्त्री साहित्य स्त्री की इतिहास दृष्टि और वृहत्तर सामाजिक सरोकार की चेतना से दीप्त है। स्त्री लेखन में स्त्री जीवन की चिंताएँ सामाजिक विमर्श के रूप में विश्लेषित हुई हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के रूप में महादेवी ने स्त्री विमर्श की पहली प्रस्तावना लिखी थी। उन्होंने अपने लेखों में स्त्री की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और अस्मिता के ढेर सारे प्रश्न उठाये हैं। अपने चिंतन और लेखन में महादेवी उस दौर में स्त्री अस्मिता की पहचान कर रही थीं जब स्त्री विमर्श जैसा कोई स्त्रीवादी आंदोलन साहित्य में नहीं था। स्त्री पुरुष के रिश्तों में वे अनुगामिनी नहीं सहयात्री की पक्षधर थीं। स्त्री की निजता और स्वतंत्रता को वे एक मूल्य के रूप में स्वीकारती थीं। उनका अकेलापन विलक्षण था। वे जब कहती हैं - ''कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।'' तो यह सोचने की जरूरत है कि यह स्त्री भाषा कैसी है ? मेरी दृष्टि में यह आधुनिक स्त्री साहित्य में पहली स्त्री विमर्श की भाषा है।

आज का स्त्री साहित्य परम्परा से जुड़कर भी अपने निर्वाह में एक नया प्रस्थान है। हिन्दी की दुनिया पिछले 30-35 वर्षों में स्त्री लेखन के मामले में उत्तरोत्तर समृद्ध होती जा रही है। हिन्दी साहित्य में आज बड़ी संख्या में कविता, कहानी और आलोचना के क्षेत्र में स्त्रियों का आगमन हुआ है। लेखिकाओं की कई पीढ़ियाँ अपनी रचनाओं में स्त्री अस्मिता और स्वायत्तता की खोज का बहुविध रास्ता प्रशस्त कर रही हैं। स्त्री लेखन, स्त्री चेतना, उसकी संवेदना का वृहत आख्यान है।

स्त्री साहित्य एक स्त्री का अन्तर्जगत भी है और बहिर्जगत भी। इस साहित्य ने पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों को बदलकर सामाजिकी का एक नया सौंदर्यशास्त्र और नैतिक मूल्यबोध गढ़ा है। स्त्री साहित्य के शब्दकोश में अस्मिता और स्वायत्तता की असंख्य अर्थ ध्वनियाँ हैं। स्त्री साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य इन्हीं अर्थ ध्वनियों का निरन्तर विस्तार है। समकालीन कविता की वरिष्ठ कवयित्री सविता सिंह की कविता ''मैं किसकी औरत हूँ'' में ध्वनित स्त्री स्वर अपने नैसर्गिक परिवेश में विकसित होती स्त्री अस्मिता की एक नयी अर्थछवि निर्मित करता है -

''मैं किसकी औरत हूँ / कौन है मेरा परमेश्वर / किसके पाँव दबाती हूँ / किसका दिया खाती हूँ / किसकी मार खाती हूँ / ... ऐसे ही सवाल थे उसके / बैठी थी जो मेरे सामने वाली सीट पर / रेलगाड़ी में मेरे साथ सफर करती ...''

''मैं किसी की औरत नहीं हूँ / मै अपनी औरत हूँ / अपना खाती हूँ / जब जी चाहता है तब खाती हूँ / मैं किसी की मार नहीं सहती और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।''

स्त्री संवाद की इस ध्वनि ने आज स्त्री साहित्य में नये विमर्शों को जन्म दिया है। आज की जागृत स्त्री ने धर्मशास्त्र की पड़ताल की है, वर्जनाओं निषेधों की जड़ें खोदी हैं, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के किले ढाहे हैं। इसी क्रम में उसने जाना है कि धार्मिक सामाजिक क्रूरता का पहला शिकार पूरी दुनिया में स्त्री ही होती है, चाहे वह किसी भी देश, धर्म, नस्ल या जाति की हो - धार्मिक क्रूरता और सामाजिक संरचना ने उसे दोयम दर्जे की नागरिकता देकर हमेशा पुरुषों के अधीन रखा है। स्त्री रचनाकारों ने विचार और चिंतन की कई खिड़कियाँ खोली हैं। उपनिवेश में स्त्री (प्रभा खेतान), हम सभ्य औरतें (मनीषा), औरत के लिए औरत (नासिरा शर्मा), स्त्री विमर्श समाज और साहित्य (क्षमा शर्मा), सुनो मालिक सुनो (मैत्रयी), स्त्रीत्व का मानचित्र (अनामिका),

स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प (रोहिणी अग्रवाल), दुर्ग द्वार पर दस्तक (कात्यायनी), सपनों की मंडी (गीताश्री) आदि ऐसी कृतियाँ है जो स्त्री के वैचारिक क्षितिज को एक बड़ा आयाम देती हैं।

आज का स्त्री साहित्य स्त्री चेतना के बहुआयामी चिंतन और सृजन का प्रामाणिक साक्ष्य है। वह केवल निजता का गायन नहीं, न ही सेक्स फ्रीडम और पुरुष विरोध का पर्याय है। उसने समाज के एकतरफा विधि निषेधों को लेकर नैतिक बहसों की शुरूआत की है, जिसमें नारी चेतना का नया उद्घोष देखा जा सकता है। शुचिता और मर्यादा के घेरे में पितृसत्ता ने स्त्रियों की कामेच्छा को हमेशा नियंत्रित रखने का उद्यम किया है। स्त्री साहित्य स्त्रियों की यौनिकता की स्वतंत्रता का पक्षधर है। कस्तूरी कुण्डल बसे, मित्रो मरजानी, बेघर, कैद बाहर जैसे उपन्यास इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। स्त्री लेखन ने पिंजरे के तोते को आज उन्मुक्त आकाश सौंप दिया है तथा स्त्री को पारम्परिक खाँचे से बाहर निकालकर पुरुष वर्चस्व के एकाधिकार को चुनौती दी है। स्त्री रचनाकारों के आत्मकथात्मक उपन्यास 'फेमिनिस्ट सेल्फ' के रूप में संस्कृति की समीक्षा हैं।

'एक कहानी यह भी' (मन्नू भंडारी), 'अन्या से अनन्या', 'छिन्नमस्ता' (प्रभा खेतान), 'हादसे' (रमणिका गुप्ता), 'राजपथ से लोकपथ पर' (मृदुला गर्ग), 'कितने शहरों में कितनी बार' (ममता कालिया), 'कागज है पैरहम' (इस्मत चुगताई), 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (मैत्रयी), 'शिकंजे का दर्द' (सुशीला टाकभौरे), 'दोहरा अभिशाप' (कौसल्या बैंसत्री), 'समरगाथा' (रजनी तिलक) - इन लेखिकाओं की आत्मकथाएँ आत्मालाप नहीं पितृसत्ता और उपनिवेशिक ताकतों के बीच सांस्कृतिक विरासत और नैतिकता मूलक वर्जनाओं की सूक्ष्म पड़ताल है। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने स्त्रियों के लिए नैतिक प्रावधानों की जो जड़ीभूत व्यवस्थाएँ कायम रखी हैं, उसे स्त्री साहित्य ने बहुत हद तक तोड़ा है।

स्त्री लेखन ने केवल महलों और मध्यवर्गीय परिवारों में कैद स्त्री को ही नहीं, आदिवासियों, दलितों, सदियों से उत्पीड़ित जनजातियों के शोषण और संघर्ष को भी अपने लेखन में आत्मसात किया है। अल्मा कबूतरी, कोरजा (मृदुला गर्ग), आँखों की दहलीज (मेहरून्निसा), सीता और मौसी (रमणिका गुप्ता), आदि भूमि (प्रतिभा राय), खुले गगन के लाल सितारे (मधु कांकरिया) आदि ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें आदिवासियों, जनजातियों का कठिन जीवन संघर्ष, स्त्री नियति की पीड़ा और उससे मुक्ति की छटपटाहट है। स्त्री रचनाकारों ने जाति, धर्म, वर्ण, नस्ल से जुड़ी हिंसाओं से लेकर विस्थापन, पर्यावरण, भूमंडलीकरण जैसे जमीनी सच्चाइयों से जुड़े मुद्दे को भी अपनी लेखनी का उपजीव्य बनाया है।

लेकिन स्त्री लेखन के सामने आज बहुत सारी ऐसी चुनौतियाँ हैं, जिनपर बहुत कम लिखा और बोला गया है। स्त्रियाँ आज पितृसत्ता से अधिक धर्मसत्ता और बाबाओं के अधीन होती जा रही हैं। धर्मसत्ता का सांस्कृतिक छद्मवेश स्त्री के विचार और बुद्धि को सबसे पहले कुंठित और जड़ बनाता है। जड़बुद्धि स्त्रियों से ही धर्म का बाजार फलता-फूलता है। शास्त्रों पुराणों में दर्ज स्त्री के धर्म-कर्म उसे इक्कीसवीं सदी में भी अनुकूलित कर रहे हैं। धर्मकांड के पाठ और बाबाओं के प्रवचन से स्त्री समाज की आंतरिक संरचना की एक नई निर्मिति हो रही है। दूसरी ओर बाजार आज पितृसत्ता का एक नायाब चेहरा बनकर स्त्रियों का शोषण और दोहन कर रहा है। बाजार औरत की आजादी को उत्पाद में बदल रहा है। औरतें ब्यूटी मिथ का शिकार बनाई जा रही हैं। मीडिया में स्त्री देह केवल ब्रांड और वस्तु में नहीं कोणार्क, खजुराहों के जीवित मुद्राओं में ढलकर बिक रही हैं। पोर्न साईट्स की बाढ़ है। नेट पर दस साल की बच्ची की नग्न देह के विकसित होते अंगों की रेटिंग की जा रही है। याद आता है कुछ दिन पहले भेड़ बकरियों की स्त्री जमात को धर्म नियन्ता बागेश्वरी बाबा ने कुमारी बच्चियों को 'खाली प्लॉट' कहा था। इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 2024 का थीम है अर्थात 'स्त्रियों में निवेश करो : प्रगति को गति दो'-धर्म, पूँजी और बाजार की यह कैसी दुरभिसंधि है - पुरुषसत्ता का यह कैसा हिंसक और खूंखार चेहरा है ? इसे स्त्री कलम को उकेरने की जरूरत है। स्त्री लेखन के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती यही है। स्त्रीवादी विमर्श के आलोक में ही हम देख पायेंगे कि इस बाजार में एक स्त्री कितना प्रतिशत व्यक्ति है और कितनी प्रतिशत वस्तु ?

बहरहाल! अभी तो दुर्घर्ष समय की उत्ताल लहरों की गर्जना सुनती मैं देख रही हूँ स्त्री सशक्तीकरण की कश्ती में सवार एक स्त्री को, जो अपनी दोनों बाँहें फैलाये उत्ताल लहरों पर उड़ान भरने को आतुर है।

संपर्क : चतुर्भूज ठाकुर मार्ग, गन्नीपूर, पो. रमन्ना, मुजफ्फरपुर, बिहार, **पिन.** 842002 **मो.** 9431281949

तो क्या साहित्य की विधाओं का अस्तित्व ख़त्म हो रहा है!

–मयंक

कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, संस्मरण, डायरी, आलोचना, यात्रा-वृतांत आदि साहित्य की विभिन्न विधाओं के अंतर्गत आते हैं।

इससे हम जान और समझ पाते हैं कि अमुक रचना 'कविता' है, यह 'कहानी' है और वह 'उपन्यास'। ठीक उसी तरह जैसे 'मनुष्य' एक पूर्ण इकाई तथा पुरुष,स्त्री,बच्चा-बच्ची आदि मनुष्य के अलग-अलग रूप, अपनी-अपनी विशेषताओं, संरचना और गुणों को लिए हुए होते है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विधाओं के लिए अलग-अलग खाँचे क्यों बनाए गए?

● हमारी सुविधा के लिए, अगर हम किसी रचना को पढ़ें तो उसे क्या कहें! अर्थात हम यदि कविता पढ़ते हैं तो उसे कविता ही कहें। कहानी पढ़ी और कोई हमसे पूछ ले कि भई, क्या पढ़ी जा रहा है? बिना किसी सशंकित भाव से कह सकें कि कहानी पढ़ी जा रही है। हमें समझने-समझाने और पहचानने में दिक़्क़त न हो कि कविता यह है, कहानी यह है और उपन्यास वह!

● दूसरा यह कि प्रत्येक विधा के कुछ मुख्य गुण और विशेषताएँ होती हैं। वही योग्यता और खूबियाँ उसे वह मुक़म्मल पहचान दिलाती हैं, जिसकी वह हक़दार है।

आज जो साहित्य का परिदृश्य है, उसमें हम यह तय नहीं पा रहे कि आख़िर अमुक रचना क्या है? कहानी है, उपन्यास है, कविता है, संस्मरण या फिर आलोचना?

विधाओं का अतिक्रमण इस क़दर हो रहा है कि हम भ्रमित हो गए हैं। निश्चय नहीं कर पा रहे कि कहानी किसे कहें! अगर अमुक रचना कविता है तो निबन्ध आख़िर क्या है फिर?

आज जिसे कविता कहा जा रहा है, उसे पढ़ने से निबन्ध की-सी अनुभूति होती है। कहानी पढ़ने से कविता का भान होने लगता है। उपन्यास पढ़ने से संस्मरण और संस्मरण पढ़ने से डायरी लेखन!

जब निराला ने कविता से छंदमुक्तता की पैरवी की थी तो उस समय यह एक बड़ा विद्रोह था। कविता के क्षेत्र में परम्परा भंजक बने निराला! किन्तु, कुछ ज़रूरी तत्त्वों पर सभी साहित्यकारों ने एकसाथ बल दिया।

कविता के ये तत्त्व उसकी पहचान और अस्तित्व के महत्त्वपूर्ण साधन हैं : ● लयात्मकता ● ध्वनि-नाद ● बिम्ब ● व्यंजनात्मक अर्थ-सौष्ठव

ये चारों कविता के अनन्य घटक माने जा सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की इतिहास-परम्परा पर नज़र फिराएँ तो प्रयोगवाद और नयी कविता के बाद अकविता का दौर आया था। साथ ही नई कहानी के बरक्स अकहानी-आंदोलन। साहित्य में जब कुछ नया प्रयोग होता है तो सकारात्मक-नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ तो आती ही हैं। आना भी चाहिए! किन्तु, वह प्रयोग कितना सार्थक, सटीक और समाजोन्मुख है, इसका ध्यान भी रखना अपरिहार्य है। जब हम किसी तरह का प्रयोग करते हैं तो उससे पैदा होने वाले तात्कालिक और भावी प्रभाव को समझना होगा। समय के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव में ये आंदोलन क्षीण पड़ते गए और मुख्य और विराट होने की लालसा में गौण और लघु हो गए।

'प्रभाव' का दबाव इतना ठोस और आंतरिक होता है कि उसके 'प्रभुत्व' होने में ज़्यादा समय नहीं लगता।

आलोचना लिखी जा रही है, तो उसमें व्यंजना और काव्य-पंक्तियों के बुझौवल की झड़ी जुड़ी रहती है। टिप्पणियों की सौगात आलोचना है क्या?

आलोचना का काम किसी भी रचना को उसी की रचनात्मक विधा में फिर से तब्दील करना नहीं होता है। आलोचना का काम रचना की जटिलताओं को अनावृत्त करना होता है। उसमें अंतर्निहित विभिन्न तत्त्वों को उजागर कर उसकी महत्ता और लघुता का निदर्शन करना होता है। इसके साथ मूल्य-स्थापन्न भी आलोचना का एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

कहानी में कथात्मकता नदारद और कविता जैसी पंक्तियों से पटा हुआ पूरा कथन! उपन्यास पढ़ें तो, वह डायरी और संस्मरण लगता है। आख़िर हम क्या पढ़ रहे हैं?

हरेक रचना में अन्य विधा के कुछ-न-कुछ अवयव रह सकते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, कोई संदेह भी नहीं! किन्तु, विधाओं में जब इन्हीं अन्यान्य अवयवों की उपस्थिति अधिकाधिक हो, तब यह समझ जाना चाहिए कि विधाओं का अतिक्रमण होने लगा है।आज के उत्तर-आधुनिक युग में जब विकेन्द्रण अपने चरम पर है तो यह अचरज की बात है कि अपनी पृथक सत्ता होने के बावजूद विधाएँ, अपनी पहचान खोती जा रही हैं।

आधुनिक विखण्डन के दायरे में हम नयी परम्परा ज़रूर बनाएँ, किन्तु किसी की पहचान मिटाकर नहीं, बल्कि संतुलन बनाकर।

आज की स्थिति देखकर यह निश्चय ही यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि भविष्य में स्वाभाविकता, जो कि साहित्य की प्रधान शर्त है, का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। अतिक्रमण की बाढ़- सी आएगी और विधाओं का औचित्य, उसका सौंदर्य इतना असंगत, विद्रूप और निर्योग्य हो जाएगा कि देखते-ही-देखते उसका स्वतंत्र अस्तित्व विलोपित हो जाएगा।

संपर्क : 101, कुसूम विला अपार्टमेंट, महेश टॉवर के पिछे, बलदेव भवन रोड, पुनाई चौक, पटना, **पिन** - 800023 **मो** – 8521858613

संस्मृति

साहित्य की संजीवनी थीं उषा किरण खान

-सुनीता गुप्ता

विवाह के बाद कलकत्ते से बिहार आना किसी विस्थापन की तरह ही था। लंबे समय तक पटना का परिवेश मेरे लिए अपरिचित ही रहा। सदी के आरंभिक वर्षों में जब पटना के साहित्यिक सांस्कृतिक माहौल से परिचित होने लगी तो एक चेहरा मंचों पर अक्सर दिखता- माथे पर गोल बड़ी सी बिंदी और चेहरे पर गहरी आस्वश्ति के साथ आत्मीयता से भरी हुई एक स्निग्ध मुस्कान। पता चला कि ये हिंदी की प्रतिष्ठित कथा लेखिका उषाकिरण खान हैं। उन्हें देखते हुए लगता कि एक विशाल वट वृक्ष अपनी शाखाएं फैलाए सम्मुख हो। उस वटवृक्ष ने कब अपनी छांव में समेट लिया और औपचारिक-सा अभिवादन आत्मीय परिचय में बदल गया, पता ही नहीं चला। कथा लेखिका से इतर उषादी के व्यक्तित्व के निजी पहलुओं से साक्षात्कार हुआ। सक्रियता, नेतृत्व क्षमता, प्रबंधन कौशल के साथ उनमें एक नटखट किशोरी शाश्वत रूप से विद्यमान रही और साथ ही उपस्थित रहा अपने में सबको समेट लेने वाला एक सार्वभौमिक मातृत्व भाव। मेरे लिए उनका साहचर्य संजीवनी के समान था। मैं अपनी वह उर्वर जमीन छोड़कर आई थी जहां अब मेरी शाखाएं फैलने को उन्मुख थीं। यहां मेरी कर्म स्थली भगवानपुर, मुख्यालय मुजफ्फरपुर और आवास पटना था-इन सबके बीच मैं बिखर गई थी। लंबे समय तक पटना का साहित्य जगत मेरे लिए अपरिचित रहा। उषा दी ने मेरे पांवों के नीचे जमीन दी। उनके पास बैठ कर पटना के पुराने दिनों के अनुभवों को सुनती हुई मैं समृद्ध होती। जब भी कोई उलझन हो तो उनके पास दौड़ी चली जाती। उनके गहन जीवन अनुभवों से निकले उनके सुझाव सार्थक दिशा देते। आयाम के पेज पर जब वे हमें सुमुखियों कहकर संबोधित करतीं तो हम सचमुच अभिमान से भर उठतीं। समय समय पर वे हमें लगातार पढ़ने के लिए प्रेरित करतीं। वे तो पूर्ण काम होकर गईं-अपने पारिवारिक सामाजिक दायित्व निभा कर-हालांकि रचनाशीलता की यात्रा कभी पूरी नहीं होती - अभी भी वे दो उपन्यासों पर काम कर रही थीं। पर जीवन में इतना कुछ हासिल करके जाना पूर्ण काम होना ही है। हम जो पीछे हैं, वंचित रह गए उनके स्नेह, सर्जन और उनके विराट अनुभव लोक से–हमारी यह क्षति तो अपूरणीय ही रहेगी। पटना के सांस्कृतिक जगत का विराट वट वृक्ष ढ़ह गया। सूना हो गया यहां का साहित्य परिसर। मेरे लिए उनका जाना मानों दुबारा मायके से बिछड़ जाने की तरह है। अश्रुपूरित नमन उन्हें।

उषा दी के व्यक्तित्व के सार को मैं सिर्फ तीन शब्दों में विश्लेषित करना चाहूंगी–जीवंतता, सहजता और आत्मीयता। यह उनकी जीवंतता ही है जो उनकी सर्जनात्मकता को धार देती रही। जीवन से भरा हुआ एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें नदी कौन सा प्रवाह था, अनवरत क्रियाशील-सक्रिय! उनके व्यक्तित्व की दूसरी बड़ी विशिष्टता थी उनकी सहजता। अपने लेखन और व्यस्त सामाजिक जीवन के बावजूद वे हर छोटे और बड़े के लिए हर समय उपलब्ध थीं। उन्हें कभी हमने अनुपलब्ध नहीं पाया। महादेवी की तरह उनका घर पटना के लिए साहित्यकार संसद की तरह था। उनके पास अनुभवों की विशाल थाती थी, अपने समय के हर साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी और यहां तक कि राजनीतिज्ञ के बारे में वे बहुत कुछ ऐसा जानती थीं जिसे जानना हमें आश्चर्यचकित कर देता। और उनकी आत्मीयता तो सबको अपने में समेट लेती थी। यूंही इतनी लोकप्रियता और सर्वप्रिय नहीं थीं!

उषाकिरण खान के साहित्यिक व्यक्तित्व में कई धाराएं समाहित थीं। गांधीवादी विचार अपने गांधीवादी पिता से उन्हें विरासत के रूप में मिला। नागार्जुन का अभिभावकत्व और स्नेह तले उनमें समाजवाद की चेतना पनपी। साहित्य की दृष्टि से वे

रेणु की शैली की अनुगामिनी थीं। रेणु उनके प्रिय और प्रेरक रचनाकार थे, ऐसा उन्होंने कई बार स्वीकार किया भी था। राजेन्द्र यादव ने उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए एक बार लिखा था कि रेणु के बाद यह उषाकिरण खान हैं जो ग्रामीण अंचल की कहानियां लेकर आईं। उषाकिरण के उपन्यास अक्सर लॉन्ग शॉट से शुरू होते हैं- खेत-खलिहान, फसल-अनाज, बोली-ठोली, नद-नाले सब पर एक नजर डालता हुआ कैमरा व्यक्ति विशेष पर आ टिकता है। इस प्रकार उनके पात्र परिवेश का हिस्सा बन जाते हैं-वे अपनी परिवेश में सांस लेते, जीते और मरते हैं। यह परिवेश-सम्पृक्ति उन्हें रेणु की परम्परा में ला खड़ी करती है। बावजूद इसके वे रेणु से भिन्न हैं तो इन अर्थों में कि रेणु की रचनाओं में परिवेश हावी है– कभी अनायास और कभी सायास। उषाकिरण खान के यहां ये दोनों अपनी पारस्परिकता में उपस्थित हैं एक दूसरे में घुले मिले हुए - इतने कि उन्हें विच्छिन्न करके देखना असंभव है।

उषाकिरण खान ने अपने साक्षात्कारों में कई बार इंगित किया है कि स्त्री विमर्श सिर्फ बीस प्रतिशत स्त्रियों की बात करता है, बाकी की अस्सी प्रतिशत स्त्रियां उससे ओझल हैं। उषा किरण खान के उपन्यास उन्हीं अस्सी प्रतिशत स्त्रियों की कथा लेकर उपस्थित होते हैं जो हिन्दी साहित्य जगत से लगभग अलक्षित ही रही हैं। ये वे स्त्रियां हैं जो खेत खलिहानों में काम करती हैं, जमींदारों के घर में टहल करती हैं, शहरों में मजदूरी या घरेलू काम करती हैं और साथ ही वे भी जो शिक्षा ग्रहण कर संघर्ष कर रही हैं और समाज में नया कुछ जोड़ रही हैं। यह वह समाज है जो मध्यवर्ग की नैतिकताओं और वर्जनाओं के घेरे से बाहर है। यहां अनावश्यक यौन शुचिता के बंधन नहीं हैं, न ही विवाह संस्था का घेरा यहां तंग है और न ही घर की दहलीज की परिधि ही इनकी सीमा है। जीवन यहां नदी की तरह कूल की सीमाओं में प्रवाहित होने को विवश नहीं है- वह तो झरने की तरह अपनी गति से प्रवहमान है। पर स्त्री होने की नियति का अभिशाप इन्हें भी कहीं न कहीं झेलना ही पड़ता है।

उषाकिरण खान का लेखन स्त्री विमर्श का लेखन नहीं है, कारण कि उनकी दृष्टि के केन्द्र में मात्र स्त्री ही नहीं है और न ही प्रतिरोध का वह मुखर स्वर है जो स्त्री विमर्श के लेखन की पहचान है। बावजूद इसके स्त्री वहां है, उसी सहज रूप में जिस तरह वह जीवन में उपस्थित है। वे लेखिका के जीवनानुभवों के प्रतिबिम्ब के रूप में हैं। यहां जो स्त्री है उसकी उपस्थिति लहरों के नीचे बहने वाली अन्तः सलिला की तरह है, बिना किसी शोर के प्रवहमान, परसतत रूप में उर्मियों को रूपाकार देती। अपनी सहज उपस्थिति में वे जीवन का हिस्सा हैं और उतनी ही अनिवार्य और जीवंत जैसे शरीर का कोई अंग। इस रूप में ये उपन्यास अपने समय और परिवेश के जीवंत दस्तावेज की तरह हैं।

उषाकिरण खान के उपन्यासों के माध्यम से मिथिलांचल की स्त्रियों की क्रमिक गाथा लिखी जा सकती है। प्रतिवर्ष बाढ़ की विभीषिका झेलती और विस्थापित होती और पानी पर लकीर खींचती स्त्रियों की कथा 'पानी पर लकीर' में अंकित है जहां जलजा, शैलजा और सोनी के माध्यम से ग्रामीण जीवन में स्त्रियों की युवा पीढ़ी के जीवन में आ रहे बदलाव और उसके संघर्ष की कथा है। 'फागुन के बाद' में ग्रामीण जीवन के बदलावों को तो 'रतनारेनयन' में पटनदेवी के माध्यम से पटना के बसने की तथा बीसवीं सदी के अंत तक पटना के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में आ रहे परिवर्तन को लेखिका ने बड़ी जीवंतता से अंकित किया है।

उनके उपन्यासों में स्त्री-पुरूष संबंधों के कई रूप सामने आत`हैं। एक संबंध पुरानी पीढ़ी के रामधानी और उसकी पत्नी का है जहां दिन में आपस में हँसी के एक-दो बोल ही बहुत बड़ा रोमांस है। उसके बाद की पीढ़ी में थोड़ा खुलापन आता है। प्रेम और साहचर्य का बहुत सुंदर रूप सुखीराम और बनारसी में देखने को मिलता है। प्रणय प्रसंगों में लेखिका ने अद्भुत तन्मयता और माधुर्य भर दिया है। स्त्री- पुरुष की प्रेम क्रीड़ा में विद्यापति की सी तन्मयता

और उनके मैत्रीपूर्ण संबंधों में कृष्ण का-सा सखत्व है

स्त्री पुरुष के सखत्व का एक रूप सुखीराम और चम्पा में देखने को मिलता है। पूरब में कमाने गये सुखीराम की मुलाकात वहां की एक मजदूर स्त्री से होती है। दोनों युवा हैं, पर दोनों का संबंध सखत्व के उस धरातल पर टिका है जहां स्त्री और पुरुष का भेद मिट जाता है। श्रम के साहचर्य में रहनेवाले स्त्री पुरुष के निश्छल संबंधों, हास-परिहास और ममत्व का जो चित्र लेखिका ने खींचा है, उसकी लम्बी समाजशास्त्रीय व्याख्या हो सकती है।

स्त्री लेखन में, बल्कि समकालीन लेखन में इतिहास को कथ्य बनाकर उपन्यास लेखन करने वाली अकेली लेखक के रूप में उषा किरण का नाम आता है। वे इतिहास की प्राध्यापक रही हैं और इसलिए उनके ऐतिहासिक उपन्यास गहन शोध पर आधारित हैं जिनमें सिर्फ कथा ही नहीं, उस समय के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का प्रामाणिक परिचय मिलता है। 'अगिनहिंडोला', 'सिरजनहार' और 'भामती' उनके ऐतिहासिक उपन्यास हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

स्त्री लेखन में उषाकिरण खान के उपन्यास एक अलग लीक खींचते हैं। यहाँ विमर्श के मुहावरे नहीं हैं पर बहुत कुछ ऐसा है जिनके बिना स्त्री पर विमर्श सम्पूर्ण हो ही नहीं सकता। उषाकिरण खान के उपन्यासों में उफनती नदी का आवेग नहीं है– सतह के नीचे बहने वाली किसी प्रबल अंतर्धारा का गांभीर्य है। यहां जीवन का यथार्थ बिल्कुल अपने अनगढ़ रूप में है-अनावृत्त, आवरण विहीन, अपने वास्तविक रूप में! यहाँ प्रकृति का उन्मुक्त परिवेश है, उसकी गोद में पल रहे लोगों का वर्जनाहीन जीवन है, आपद-विपद और समस्याएँ हैं और उनसे जूझती, उसी में जीवन का रस खोजती जिन्दगी हैं। इन सबके बीच अपनी असहाय स्थिति से ठोकर खाती स्त्री है। उषाकिरण खान की स्त्री पात्रों में विद्रोह की मुखरता नहीं है, पर संघर्ष की आंच है जिसमें धीमे-धीमे पक कर वे निखरती हैं।भले ही इनकी आवाज बुलंद नहीं है, पर अपनी जिजीविषा और कर्मठता में ये अपनी उपस्थिति का भान कराती हैं। इनकी मुक्ति चेतना अंदर से प्रस्फुटित होती हुई व्यक्तित्व को समृद्ध करती हैं और उन्हें एक सबल रूप प्रदान करती हैं। जरूरी नहीं कि मुक्ति की चेतना विस्फोट की तरह व्यक्तित्व का हिस्सा बने या दामिनी की दमक के साथ प्रकट हो। अपने जमीनी रूप में वह समय के साथ पककर उद्‌भासित होने वाली चीज है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के साथ परिवार और परिवेश भी अपनी भूमिका निभाते हैं। इस रूप में देखें तो उषा किरण खान के यहां स्त्री विमर्श आकाश से टपकने वाली चीज नहीं, वह जमीन से प्रस्फुटित होती है। उषाकिरण खान के उपन्यास स्त्री के इसी क्रमिक विकास की गाथा लेकर आते हैं। वे अपने अंचल के जीवंत दस्तावेज की तरह हैं और इस रूप में साहित्यक और ऐतिहासिक ही नहीं, समाज-शास्त्रीय महत्व के भी अधिकारी हैं।

आलोचना जगत में कथा आलोचना के मानदंड बदलते रहे हैं। कभी कथा की निर्मिति में महत्वपूर्ण निभानेवाली घटनाओं का स्थान आगे चलकर चरित्र ने ले लिया। फिर कथा लोक में लघु मानव का प्रवेश हुआ, द्वन्द्व की अभिव्यक्ति को प्रमुखता मिली। स्त्री विमर्श के समय में प्रतिरोध का स्वर कथा लोचन का एकमात्र मानदंड बन गया है। लेकिन हर वैचारिक आग्रह से परे कथा यदि समाज का जीता जागता चित्र है तो इस दृष्टि से उषा किरण के उपन्यास कथा जगत में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

संपर्क : 306, सांईं कैमेशन अपॉर्टमेंट, कंकड बाग मेन रोड़, **पो.** लोहिया नगर,
(बहादुरपूर फ्लाई ओवर के नजदीक), पटना (बिहार), **पिनः** 800020 **मो.** 8340531656

सौन्दर्यात्मक हिंदी और हिंदी का सौन्दर्यः रमेश कुंतल मेघ

– रंजना अरगड़े

14 सितंबर हिंदी दिवस। पहले केवल दिवस, फिर सप्ताह, फिर पखवाड़ा और अंत में हिंदी माह—करते-करते हम हिंदी वालों ने पूरे सितंबर माह पर कब्ज़ा जमा ही लिया है! पता नहीं यह निखालिस हिंदी प्रेम है या कार्यक्रमों की अधिकता और बहुलता में अधिक से अधिक शामिल होने की हमारी लालसा या सुविधा है। पर छोड़िए....कौन इस मुद्दे के मुँह लगे।

हमारे यहाँ हिंदीवालों की एक श्रेणी उन लोगों की है जो सरकारी कार्यालयों में हैं और हिंदी की बात और हिंदी का काम करते हैं। उनके लिए यह ज़रूरी है। एक श्रेणी उन लोगों की है जो हिंदी भाषा को माध्यम बना कर कविता, कहानी आदि ललित वाङ्मय लिखते हैं, अर्थात् कवि- लेखक हैं और उनमें से कई ऐसे भी होंगे जो मानते हैं कि वे हिंदी के प्रचार में योगदान दे रहे हैं। ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं है। उनके बूते हिंदी का कैसा और कितना विकास हुआ, यह तो प्रकाशित है ही। एक श्रेणी उनकी है जो विभिन्न शिक्षा एवं प्रचार संस्थानों से जुड़े हैं अथवा उनमें सवेतन हिंदी पढ़ाते हैं और हिंदी सेवा का भ्रम रखते हैं। इनका आप कुछ नहीं कर सकते। वैसे यह बुरा भी नहीं है और गलत भी नहीं है, क्योंकि बाजार के इस दौर में सर्विसिज़ के तो पैसे लगते ही हैं! पर मुझे उनके कथन और नीयत पर पूरा भरोसा है।

लेकिन हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें लिखने वाले बहुत कम है, इसलिए उनकी अभी कोई श्रेणी नहीं बन सकी है। किसी भी भाषा का विकास तभी होता है जब उसमें ज्ञान की पुस्तकें रची जाती हैं। आज मैं ऐसी ही दो पुस्तकों का उल्लेख करना चाहूँगी। उन किताबों पर विस्तार से कभी लिखूंगी, ऐसी मेरी इच्छा ज़रूर है। विशेष रूप से तब, जब' अभी-अभी गा कर अपना हंसगान उड़ गया है वह उज्जवल हंस- रमेश कुंतल मेघ था जिसका नाम।' (आप इसे ऐसे पढ़ें कि रमेश कुंतल मेघ है जिसका नाम।) उनके आखिरी के दो हंसगानों- 'विश्व मिथक सरितत्सागर' तथा 'मानवदेह और हमारी देह भाषाएं' हिंदी भाषा की अनुपम उपलब्धियाँ हैं, बल्कि कहा जाए कि हिंदी भाषा के दो अनमोल रतन हैं।

रमेश कुंतल मेघ ने इन पुस्तकों के अलावा भी महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं जिनका स्वागत हिंदी जगत में हुआ था। 'अथातो सौंदर्य जिज्ञासा', 'कामायनी एक योटोपिया' आदि उनकी पुस्तकें बहुत महत्वपूर्ण हैं। मध्यकाल तथा आलोचना पर उनकी पुस्तकें विशेष हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रमेश कुंतल मेघ ने जितना महत्व सौन्दर्य दृष्टि को दिया उतना ही महत्व सामाजिक दृष्टि को भी दिया। इस रूप में वे अपने समय के आलोचकों में तो विलक्षण रहे ही हैं पर इस दौर में भी ऐसी दृष्टि का आलोचक हिंदी में मुश्किल से मिलता है। अपनी आलोचना में उन्होंने आधुनिकता के साथ-साथ मध्यकाल को भी समान महत्व दिया। उनकी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं-मिथक और स्वप्न, कामायनी की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका, तुलसीः आधुनिक वातायन से, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, मध्ययुगीन रस दर्शन और समकालीन सौन्दर्यबोध, क्योंकि समय एक शब्द है, कला शास्त्र और मध्ययुगीन भाषिकी क्रांतियाँ, सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन, अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, वाग्मी हो लो, मन खंजन किनके, कामायनी पर नई किताब, खिड़कियों पर आकाशदीप आदि। उनके पुस्तकों के शीर्षक इतने सौंदर्यपरक और रचनात्मक रहे हैं कि इससे पता चलता है कि विज्ञान के इस विद्यार्थी में कला-साहित्य में निहित सौन्दर्य और रस के समझने की कितनी उत्कंठा रही होगी।

उल्लेखित दोनों पुस्तकों की भूमिकाएं पुस्तक के ढांचे और उसमें रही सामग्री, लेखक का उद्देश्य आदि समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।उन भूमिकाओं में उनके ये वक्तव्य ध्यान देने योग्य हैं-

'सो इस ग्रंथ को गूँथने में मेरा एकांतिक प्रयोजन रहा है–' न यश, न धन। केवल मिशन'– कि कथित राजभाषा हिंदी की बेचारी गोमाता के थनों में मैं भी

एक अमृतबूँद भर सकूँ।' (पृष्ठ xii, अगले पृष्ठों के बारे में, विश्व मिथक सरित्सागर फिर वे आगे यह भी लिखते हैं-)

2. अनेक भाषाओं की नाममालाओं के नाम के उच्चारण की मेरी घोर मूढता व्याप्त रही है। मैंने लिपियों के अनुसार ही रोमन के देवनागरी में उच्चारण लिखा है। (केवल देवनागरी लिपि ही है जिसमें लिपि एवं वाक्य में एकरूपता है)। (पृष्ठ xvii, स्वीकारोक्ति/ निवेदन वही)

भाषा और लिपि के पैरोकारों को इस ओर भी एक नज़र डालनी चाहिए। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर हम बहुत चर्चा करते हैं, उस पर केंद्रित एक पत्रिका भी है; आज तक असंख्य निबंध इस पर लिखे गए और बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया गया कि संसार की सबसे वैज्ञानिक लिपि यही है। बात सही भी है। पर विश्व की अनेक भाषाओं के शब्द और संदर्भ जिस भाषा में प्रयुक्त हुए हों उसमें इस लिपि ने क्या कमाल किया है उसका उदाहरण है यह पुस्तक।' अक्कादी भाषा में अप्सू मीठा पानी है और (समुद्र का खारा पानी) इनके संयोग से सृष्टि हुई व जल से धरती आकाश उत्पन्न हुए। उसी से देवता उत्पन्न हुए।' (विश्व मिथक सरित्सागर, पृष्ठ 63) हम जब अंग्रेज़ी या इतर भाषा के शब्द बोलते अथवा लिखते हैं, तब केवल देवनागरी ही वह लिपि है जिसके माध्यम से कठिन और अजनबी ध्वनियां भी लिखना संभव है।

'मुझे एक अचम्भा और आविष्कार भी हुआ कि अगर हिंदी, साहित्य-धुरि से आगे विज्ञान-समाज-विज्ञान (कला-संस्कृति) संस्कृति के क्षेत्रों में मजबूत कदम रखेगी तो वह एक सम्पूर्ण अभिव्यंजक, अत्यधिक समर्थ, लोकप्रिय तथा अनिवार्य संदर्भ भाषा भी बन सकती है। वह एक अभिन्न व आधुनिक भाषा होगी। मैंने भी इस ग्रंथ में उसी दिशा में हिन्दी की विजय यात्रा कराई है।' (पृ 11, मानवदेह और हमारी देहभाषाएं)

बिना किसी झंडाबरदारी के, प्रचार के इस लेखक ने, जिसकी पृष्ठभूमि विज्ञान है, जिसे चित्रकारी आती है – हिंदी भाषा के महत्व को रेखांकित किया है और इस बात की प्रतीति उनकी इन पुस्तकों को देख कर भली-भाँति हो जाती है। वे सघन और गहन शोध के बाद दो ऐसी किताबें लिखते हैं जो हिंदी की आधुनिक ज्ञान परंपरा में विलक्षण स्थान रखती हैं। ज्ञान का ऐसा अनुपम भंडार इन पुस्तकों का विषय है जिसमें वे मिथक भाषा और देह भाषा की व्यापक चर्चा करते हैं। भाषा से पहले मिथक आते हैं यह बात इस पुस्तक को पढ़ने से पहले मुझे पूरी तरह समझ में नहीं आई थी। अंग्रेज़ी की कई किताबें पढ़ने के बाद भी यह बात उतनी स्पष्ट नहीं हो पाई थी। वाणी और लोकभारती प्रकाशन से सुरूप छपी इन पुस्तकों को देख कर ही लगता है कि हिंदी पुस्तकों में ज्ञानोत्सव आया है। हिंदी के पाठकों को ऐसा सुचिंतित, सारगर्भित ज्ञान रचनात्मकता के साथ पहुँचाना, हिंदी के प्रतिप्रेम के अलावा और किस कारण हो सकता है? ऐसी विलक्षण पुस्तकें निरी वैज्ञानिकता के साथ लिखने के लिए उन्हें नई शब्दावली भी गढ़नी पड़ी है जो उन्होंने लोक से ग्रहण की, संस्कृत से भी की है और अपनी सर्जनात्मकता से स्वयं भी गढ़ी है। जैसे एक कथा लेखक अपने कथा लोक में डूब जाता है, एक कवि अपने भावलोक में डूब कर रचता है वैसे ही वे मिथक लोक में और देवभाषा की खोज में आदिम मानवलोक में डूब कर इन पुस्तकों को रचते हैं।

मिथकों के उद्भव के कारणों तथा मानव सभ्यता के किस बिंदु पर देह भाषाएं प्रकट हुई होंगी इसका वैज्ञानिक अतः तर्कसंगत कारण बताते हैं। बात एकदम समझ में आ जाती है। कथा साहित्य की लोकप्रियता के इस दौर में कैसी-कैसी मिथक और भाषा कथाएं रची हैं लेखक ने, कि आनंद आ जाता है। लेकिन इस आनंद को प्राप्त करने के लिए गंभीरता अपेक्षित है।

विश्वसनीय किताबों के लिए अंग्रेज़ी भाषा को मानक मानने वालों के लिए यह एक सही शुरुआत है कि वे हिंदी की तरफ देखें। मिथक और देहभाषा पर ऐसी किताब अगर अंग्रेज़ी समेत, (यह मेरा दुस्साहस हो सकता है, जो कि मैं करना चाहूंगी) किसी अन्य भाषा में हो, तो मैं नही जानती। आप बताएं?

हमारी ज्ञानपरंपरा की एक सशक्त सीढ़ी है ये पुस्तकें। और ये हिंदी में हैं!

संपर्क : 402, बिल्डिंग न. 2 विन्डसर अरेरिया, होली क्रोस स्कूल के नजदीक,
कोरल रोड़, भोपाल, पिन. 462042, मध्य प्रदेश, **मो.** 9426700943

सहजता से कविता का पाठक तक पहुँचना ही उसकी सफलता है

-ख़ुदेजा ख़ान

आमतौर पर लेखन की शुरुआत पद्य से ही होती है। मुझे याद है जब पहली बार ग़ज़ल की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी तब उसकी काव्यात्मकता ने ही अपने शब्दों से मुझे बांध लिया था। जिसका आलंबन लेकर मैं, शेरो- शायरी की दुनिया में दाख़िल हुई। ग़ज़लों के रुझान ने मुझसे ग़ज़लें, नज्में और कविताएं लिखवाईं। ग्रेजुएशन करते-करते मेरे वैवाहिक जीवन का शुभारंभ हो गया फिर बच्चे और घर गृहस्थी की व्यस्तताएं रहीं फिर भी लेखन से नाता जुड़ा रहा। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं और पुस्तकों का अध्ययन निरंतर जारी रहा।

फिर सोचा साइंस से ग्रेजुएट होने के कारण हिंदी साहित्य का उतना ज्ञान नहीं है जितना होना चाहिए इसलिए हिंदी साहित्य में एम.ए. करने से लेखकीय दृष्टिकोण संपन्न होगा, पुरोधा लेखक -लेखिकाओं के बारे में जानकारी मिलेगी यह सोचकर शादी के सोलह साल बाद स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की साथ ही संस्कृत का भी फॉर्म भर दिया।

हिंदी में ग़ज़ल लिख ही रही थी इसलिए सबसे पहला संग्रह देवनागरी में 'सपना सा लगे' पहले पहल प्रकाशन, भोपाल मध्य प्रदेश से 2001 में प्रकाशित हुआ। ग़ज़ल में मेरा कोई उस्ताद नहीं था इसलिए नज़्मों की तरफ़ ध्यान गया जिसमें मात्राओं जैसी पाबंदी नहीं होती इसलिए नस्री (गद्य) नज़्मों में मैंने ख़ुद को अधिक सहज पाया और फिर यहीं से कविता लिखने का दौर शुरू हुआ। इसी सिलसिले में 'संगत' संग्रह (2013) यह भी पहले पहल प्रकाशन, भोपाल मध्य प्रदेश से ही आया।

शुरू में पत्र-पत्रिकाओं में छपने के शौक़ में कभी लघुकथाएं लिखीं, कभी हाइकू तो कभी कहानी, साथ में समीक्षा का लिखना भी चल रहा था, क्योंकि सप्रेम, साग्रह अनेक पुस्तकें डाक से आती रहती थीं।

समीक्षा लेखन अभी गंभीरता से जारी है लेकिन शेष विधाएं किनारे लग गईं। अपनी मूल विधा कविता को ही अपनाना मुझे श्रेयस्कर लगा।

कोरोना काल में एक पुस्तक 'ज़िंदगी ज़िंदाबाद' और दूसरी 'महिला दिवस एक अभिव्यक्ति' का सम्पादन सृजन बिम्ब प्रकाशन नागपुर महाराष्ट्र से करने का अवसर मिला। इसके बाद दो और संपादित पुस्तकें बोधि प्रकाशन से आईं 'मां पर केंद्रित कविताएं' एवं 'पिता पर केंद्रित कविताओं' का संग्रह।

वर्तमान में 'सारांश साहित्य' ई पत्रिका का संपादन और 'वनप्रिया' त्रैमासिक पत्रिका के सह संपादन में योगदान दे रही हूं।

घर-गृहस्थी के बीच ही अपनी साहित्यिक यात्रा के सोपान तय किये।तकनीक के प्रादुर्भाव से हम जैसों को बहुत लाभ मिला जब सोशल मीडिया फेसबुक, व्हाट्सएप जैसे प्लेटफार्म से रचनाओं का आदान-प्रदान व प्रचार-प्रसार, सुगम-सुलभ हो गया तब लेखकीय समुदायों / साहित्यिक समूहों से जुड़ना कोई टेढ़ी खीर नहीं रह गई। ऐसे में सालों का लेखन कर्म लोगों के समक्ष आया।

नेशनल उर्दू काउंसिल न्यू दिल्ली के माध्यम से 'आबगीना' उर्दू नज़्मों का संग्रह (2018) और डिजिटल प्रिंटिंग से सचित्र 'फिक्र ओ फ़न' (2021)का प्रकाशन संभव हो सका। इस तरह समस्त पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए साहित्य साधना अनवरत चलती रही। किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए लगन, समर्पण, परिश्रम तीनों चीज़ों की ज़रूरत होती है, मैंने भी इनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

हिंदी साहित्य जगत में छंदमुक्त कविता का प्रचलन निराला के बाद से उत्तरोत्तर प्रगति पर ही रहा है। प्रतिरोध के स्वर हों या मनोजगत की भावाभिव्यक्ति, आधुनिक कविता ने लेखक के समक्ष एक विराट वितान को खोला है इसकी झांकियां हम सोशल मीडिया और पुस्तक मेलों में भरपूर मात्रा में देख रहे हैं। सवाल प्रतिबद्धता का है। कौन, कितनी सत्यता के साथ साहित्य कर्म से जुड़ा है या केवल लोकप्रियता ही उनका लक्ष्य है यह दोनों बातें अपने अर्थ में बहुत मायने रखती हैं।

साहित्य में समाज को बदलने की ताकत अब दिखाई क्यों नहीं देती, क्या तकनीक ने इसकी प्रबलता को क्षीण किया है या एक साहित्यकार में उन गुणों का क्षय हुआ है जिनकी आवश्यकता आज पहले से अधिक दिखाई पड़ती है।

कविता लिखना जितना आसान लगता है ख़ासकर छंदमुक्त/अतुकांत कविता, दरअसल यह उतना सरल कार्य है नहीं।कविता में विषय, भाव, विचार, संवेदना का एक सुसंगत संप्रेषण उसे ग्राह्य बनाता है। बाधित संप्रेषण में कविता का भाव एवं मर्म दोनों खोकर रह जाते हैं। सहजता से कविता का पाठक तक पहुंचना, कविता की सफलता है।

मेरी कविताएं इस कसौटी पर कितनी खरी उतरती हैं यह पाठक ही बताएंगे।

एक प्रजाति का रुदन

विशाल भवन के
दरवाज़े ने खिड़की से कहा-
तुम वही हो न सड़क के किनारे वाली
मुझे पहचाना?
मैं भी उसी कतार में था
इनकी बात सुनकर
टेबल-कुर्सी चिंहुके
हम सब एक ही प्रजाति के

याद है जब हाईवे बना
एक साथ ही काटे गए थे
गनीमत हम अब भी साथ हैं
बस हमारा स्वरूप बदल गया

लेकिन अपनी ज़मीन से
अलग होने का दुख
कम नहीं होता
उनका विलाप गूंजा

लेकिन उनका रुदन
भवन का
कोई मनुष्य नहीं सुन सका।

कठिन समय के लिए

पीछे मुड़कर देखने का
समय नहीं अब
पीछे जाने का मतलब
इतिहास की काली परछाइयों से घिर जाना

अतीत के दलदल से
निकलने के प्रयास में
और गहरे धंसते चले जाना

समय की रफ़्तार से
तेज़ दौड़ना भी संभव नहीं
नॉस्टेल्जिक होकर
उड़ना और खो जाना
क्षणिक आवेश व आनंद के क्षण में

अतीतजीवी लड़खड़ाते रहे
चलने के पहले

आगे बढ़ने के लिए
निरंतर चलना ही विकल्प

वर्तमान के बस्ते में संचित
भविष्य की पोथी- पत्रियों को
सीखना हैं बांचना
कठिन से कठिनतम हो रहे
समय के लिए।

एक दिन

सुबह सशंकित है
भीड़ को जुलूस में
बदलते हुए देखकर

दोपहर ख़ौफ़ से सहमी
दो समुदायों के हाथ में
लहराते झंडे देखकर
जो हथियार में बदल गए

शाम गवाह बनी
हिंसा,आगजनी और हत्या की

रात बेचारी दबी- कुचली
डरे हुए लोगों के साथ
घरों में दुबक गई
जान बचने से ज़्यादा
जान गंवा चुके लोगों के
शोक में डूबी हुई

साज़िश से अनजान
जो पहले ही किसी ने
सोच-समझकर रच डाली थी।

अपने बल पर

बचा के रखा है अस्तित्व
अस्थि मज्जा सूख गए तो क्या

शरीर में जान बाक़ी है
फिर -फिर हरहरा के
लहलहा जाऊंगा

देखते नहीं
ठूंठ हूं परन्तु
अपने बूते खड़ा हूं मैं।

इंतहा हो गई

हमने सपना देखा
एक सुंदर दुनिया का
उन्होंने इसे युद्ध में बदल दिया

तीन पूजनीय स्थलों की पवित्रभूमि
नरसंहार का केंद्र बन गई

दैनिक जीवन छिन्न-भिन्न करके
जीवन को पहना दिया
मृत्यु का जामा

अनगिनत हत्याओं के पाप
कैसे धो पाएंगे यह धार्मिक स्थल

दो विरोधी शक्तियों के टकराव में
मनुष्यों की चकनाचूर हुई दुनिया
फिर नहीं संवर पाएगी

काश! ये आहें और कराहें
मिसाइल की तरह जा लगतीं
हत्यारों के सीने पर
इंतहा हो गई
बच्चे अपने हाथों पर
अपना नाम लिख रहे हैं
ताकि मलबे में मिली लाशों में
उनकी शिनाख़्त हो सके।

जीवन की बिसात पर

कमाल ये कि -
प्यादे से लेकर राजा तक
हर मोहरे की तरह
चलना पड़ा मुझे

वक़्त - ज़रूरत
हाथी, घोड़ा,ऊंट
बनना पड़ा मुझे

जीने का फार्मूला यही
बिना शिकायत
हर ख़ाने में फ़िट बैठना
मगर रानी के तेवर अलग
उसे मंज़ूर नहीं
सुरक्षा के घेरे में रहकर
खेल के आनंद से वंचित रहना।

जीवन लीला

समानुपातिक भाव से
आयु चलती
आगे भी - पीछे भी
आगे घटाती जाती जीवन
पीछे बढ़ती आती मृत्यु

वर्तमान की हरियाली
बिखेरती है आभा
अतीत की परछाईं
डालती है पीला घेरा

हरित और पीत के बीच
उम्मीद का फूल खिलकर
दिखाता है सपने
समय एक टुक साक्षी बन
देखता रहता है जीवन लीला।

परिचय : जन्म - भोपाल, हाई स्कूल तक की पढ़ाई म.प्र.के शहरों में।, **स्नातक**- बी. एस-सी., **स्नातकोत्तर**- हिंदी व संस्कृत।, **लेखन कर्म** -1985 से जगदलपुर (छत्तीसगढ़) में निवासरत।, **4 किताबें प्रकाशित।,** हिंदी में **'सपना सा लगे'** (ग़ज़ल संग्रह), 2001, **'संगत'** (कविता संग्रह) 2014, ऊर्दू नज़्म का संग्रह 'आबगीना' 2018, हिंदी-ऊर्दू (bilingual)' फ़िक्र ओ फ़न' (2021), एक दर्ज़न से ज़्यादा साझा संग्रह। लघुकथा, कहानी, ग़ज़लें, कविताएं, हाइकु, नाटक व अनेक समीक्षाएं शामिल हैं।, 1989 से आकाशवाणी एवं 2000 से दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण।, सामाजिक संस्था' महात्मा गांधी बाल एवं महिला कल्याण संस्था' से सम्बद्ध।, **अध्यक्ष** -'कादम्बरी महिला संस्था- सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक', **उपाध्यक्ष** -प्रगतिशील लेखक संघ, **संपादन**- साहित्य सारांश' अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी त्रैमासिक **'महिला दिवस:एक अभिव्यक्ति'** कोरोना काल पर आधारित 'ज़िन्दगी-ज़िन्दाबाद', मां पर केन्द्रित कविता संग्रह, पिता पर केंद्रित कविता संग्रह, 'किस्सा कोताह' मासिक पत्रिका में संपादन सहयोग।, कविता, समीक्षा और संपादन में सक्रियता।

संपर्क : चित्रकूट रोड़, धरमपूरा 1, निकट अशोका पार्क, जगदलपुर, छत्तीसगढ़ - 494001, **मो.** 7389642591

मानिक बच्छावत का काव्य-कैनवास

-मृत्युंजय श्रीवास्तव

मानिक बच्छावत की काव्य यात्रा 1960 से आरंभ हुई। तब उनका पहला काव्य संग्रह आया था, 'नीम की छांह'। हालांकि उनकी पहली कविता 1953 में छपी थी। उस समय छंदबद्ध कविताओं और गीतों का चलन था। मानिक बच्छावत ने शुरुआत में गीत भी लिखे। वे सस्वर गाते भी थे उस जमाने में। इस सदी की शुरुआत में कला सृजन अकादमी ने मानिक बच्छावत पर केंद्रित एक कार्यक्रम किया था। उस कार्यक्रम में उपस्थित लोगों ने उन्हें अपना गीत गाते सुना था।

1953 से अब तक उनकी यह रचनात्मक यात्रा अनवरत जारी है। 1967 में दूसरा संग्रह 'एक टुकड़ा आदमी' आया। इस संग्रह का बांग्ला अनुवाद भी आया। तीसरा संग्रह 1972 में 'भीड़ का जन्म', 1987 में 'रेत की नदी', 1994 में 'पीड़ित चेहरों का मर्म', 2000 में 'तुम आओ मेरी कविता में', 2001 में 'फूल मेरे साथ हैं', 2003 में 'पत्तियां करती स्नान', 2009 में 'पेड़ों का समय', 2010 में 'इस शहर के लोग', और 2016 में 'सड़क पर जिंदगी' आया । इसके बाद और दो कविता संग्रह आए। एक है 'प्रकृति राग'। यह उनकी प्रकृति संबधी कविताओं का संचयन है। दूसरी है : प्रतिनिधि कविताएं। यह संग्रह 2023 में उनके जन्मदिन पर प्रकाशित हुआ। उनका जन्म 11 नवम्बर 1938 को हुआ था। अभी वे 85 के हैं।

उन्होंने एक पत्रिका निकाली 1965 में। नाम था, 'अक्षरा'। इस दौर में ऐसी पत्रिका की एक खास भूमिका थी। इस पत्रिका को ऐसे लेखक-कवि को प्रकाशित करने का गौरव हासिल है, जिनके उल्लेख से हिंदी साहित्य का परिदृश्य बनता है। यह पत्रिका पांच वर्षों तक निरंतर निकलती रही। आखिरी अंक निकला था 1970 में।

मानिक बच्छावत ने अपने जमाने में एक प्रेस खोला था और प्रकाशन भी आरंभ किया था । यह सब उनके साहित्यिक जुनून का परिणाम था। उनका प्रेस और उनका घर दोनों ही कलकत्ता के तत्कालीन लेखकों-कवियों और बाहर से आने वाले लेखक-कवियों का कॉफी हाउस था। उनका अड्डा यहां जमता था। मानिक बच्छावत के पास यादों का खजाना है उस जमाने का । वे बताया करते रहे हैं। अपनी याद के भरोसे यह कह सकता हूं कि प्रयाग शुक्ल की पहली किताब इनके प्रकाशन से छपी थी। उनका यह प्रकाशन 1972 तक चलता रहा। 1972 में ही शंभुनाथ की पहली किताब इसी प्रकाशन से आयी थी। वह कहानी संग्रह था, 'ऐसा होने के विरुद्ध'। प्रकाशन का नाम था अमिताभ प्रकाशन।

अमिताभ मानिक बच्छावत के बड़े बेटे का नाम है। शंभुनाथ की पुस्तक का आवरण भी अमिताभ ने बनाया था। अमिताभ को कला का यह संस्कार उनके माता-पिता से मिला था। अमिताभ की मां पन्ने कुंवर चित्रकारी क्षेत्र का मशहूर नाम रही हैं। यहां यह लिखना-बताना जरूरी है मानिक बच्छावत को पेंटिंग और पेंटिंग-परंपरा का अच्छा ज्ञान है। मानिक बच्छावत ने हिंदी में कला समीक्षा की शुरुआत की। 'दिनमान' और 'रविवार' में इन्होंने कला समीक्षा के नियमित स्तंभ लिखे। मानिक बच्छावत को इसका श्रेय जाता है कि हिंदी में कला समीक्षा की शुरुआत उनसे हुई।

मानिक बच्छावत का घर और प्रेस लेखकों-कवियों का अड्डा था। अड्डे की यह जगह बड़ा बाजार में थी बड़े पोस्ट आफिस के बाजू में । ठिकाना : 20, बाल मुकुंद मक्कर रोड। बीसवीं सदी में कोलकाता में हिंदी का चौपाल था यह। इसी ठिकाने से पत्रिका 'समकालीन सृजन' के पच्चीस अंक निकले। आठवें

- नौंवे दशक में हिंदी की नयी जमात यहीं बनी। नौवें दशक की शुरुआत में इसी ठिकाने से लघु पत्रिका का पहला सम्मेलन हुआ। लघु पत्रिका का पहला सम्मेलन 90-91 में कोलकाता में हुआ था। यह सम्मेलन सेंट्रल ऐवेन्यु की एक धर्मशाला में हुआ था । देश भर से सैकड़ों संपादकों-लेखकों ने अपने खर्चे और संसाधन से इसमें भाग लिया था। आगे चलकर यह राष्ट्रीय आंदोलन बना। जयपुर लघु पत्रिका सम्मेलन में उन्होंने शिरकत की। साथ में इन पंक्तियों का लेखक था और समकालीन सृजन की टीम थी – शंभुनाथ, अवधेश प्रसाद सिंह, प्रियकंर पालीवाल और लक्ष्मण केडिया। तीस वर्षों से चल रहे कोलकाता हिंदी मेला की अवधारणा यहीं बनी। यहीं से इसकी शुरुआत हुई। समकालीन सृजन हो या लघु पत्रिका सम्मेलन या कोलकाता हिंदी मेला सभी उपक्रम उनके संयुक्त नेतृत्व में आगे बढ़े। मानिक बच्छावत और शंभुनाथ की दोस्ती हिंदी जगत में इन अभियानों की वजह से याद की जाएगी।

मानिक बच्छावत चित के सरल हैं। उनके मन की यही सरलता उनकी कविता की विशेषता बनी है। जिन्हें यह अवसर मिला है कि वे उनके सान्निध्य में आ सके हैं और जिन्होंने उनकी कविताएं पढ़ी हैं वे इसे सहज ही लक्षित कर सकते हैं। मानिक बच्छावत अपने निजी व्यक्तित्व को छुपा कर अपनी कविताओं से अपना काव्य व्यक्तित्व नहीं बनाते हैं। उनका व्यक्तित्व उनकी कविताओं में ऐसे घुला मिला है जैसे जैसे पानी में पानी या फिर दूध में दूध।

मानिक बच्छावत अक्सर यह कहते रहे हैं कि जो देखा नहीं उसे लिखा नहीं। उनका काव्य उनका अनुभव जगत है। उनके अनुभव से साक्षात्कार करने के लिए और अपने अनुभव को देखने की उनकी दृष्टि को जानने के लिए न किसी को अतिरिक्त कोशिश करने की जरूरत है और न ही काव्य-पंडित होने की। उनकी कविताएं सहज ही अपने को कनेक्ट करती हैं।

उनकी पुस्तक 'सड़क पर जिंदगी' (2016) की चर्चा करते हुए सुनील जैन राही ने लिखा,' मानिक जी की कविता सड़क पर जिंदगी की बात करते हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से उस समाज की बात करते हैं जिसे आसानी से कोलकाता की सड़कों पर देखा जा सकता है और महसूस किया जा सकता है। ... बच्छावत की कविताओं से ऐसा महसूस होता है कि इन सड़क वालों को उन्होंने काफी करीब से देखा है, काफी कुछ ऐसा महसूस किया है जो आम आदमी नहीं कर सकता। छोटी-छोटी बातों को जानना और उन्हें प्रस्तुत करना दोनों ही मुश्किल काम है।...मानिक बच्छावत ने अपनी बात को सहज तरीके से प्रस्तुत किया है।... स्थान और भावनाओं के माध्यम से कवि चित्र खींचने में सक्षम है और पाठक महसूस करता है चित्र को और उसमें घटित होने वाली घटनाओं को।' यह उद्धरण मानिक बच्छावत की कविताओं की ताकत और उनकी क्षमता को रेखांकित करता है। मानिक बच्छावत की कविताओं में उपस्थित चित्र और भाषा सहज ही पाठक को अपना हमसफर बना लेता है। इसी संग्रह पर ओम प्रकाश मिश्र ने सन्मार्ग में लिखा,' मानिक बच्छावत ने अपनी इन कविताओं में कोलकाता की सड़कों पर बसर करने वाले लोगों के जीवन में झांकने की कोशिश की है।... इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये कविताएं किसी से शिकायत नहीं करतीं। वे आईने की तरह स्थिति को दर्शाती भर हैं।' समीक्षक ने इस संग्रह की तीन कविताओं की विशेष रूप से चर्चा की – सनातनी की जिंदगी, चनाजोरगरम तथा प्यारे मियां की बग्घियां। इस संग्रह के बारे में मुहम्मद फारुक रज़ा ने लिखा,' यह संग्रह बड़े ही नाजुक विषय पर आधारित है। इस काव्य संग्रह में समाज के उस तबके पर कलम

चलाया गया है जहाँ लोगों की जिंदगी सड़क पर शुरू होती है और सड़क पर ही खत्म हो जाती है ।... इस संग्रह को पढ़ कर साहिर लुधियानवी की नज्म' जिन्हें नाज है हिंद पर वो कहां हैं' बेसाख्ता याद आ जाती है।' इस संग्रह की चर्चा करते हुए मानिक बच्छावत के और दो संग्रह स्वाभाविक रूप से याद आते हैं – भीड़ का जन्म (1972) और पीड़ित चेहरों का मर्म (1994)।

मानिक बच्छावत की काव्य-भाषा उनकी कविताओं की एक बड़ी ताकत है। शंभुनाथ ने उनकी काव्य-पुस्तक ' पेड़ों का समय' (2009) को संदर्भ में लेते हुए लिखा था,' उनकी कविताओं में सादगी का सौंदर्य है, जो पारदर्शी है। कवि की भाषा बनावटी अलंकरणों से मुक्त है।' इसी संग्रह की चर्चा करते हुए 'स्वाधीनता' के साप्ताहिक संस्करण में राम आह्लाद चौधरी ने लिखा था,' मानिक बच्छावत ने हिंदी कविता को नई दिशा दी है।...भाव और भाषा को बोधगम्य बना कर आम जनता के लिए लिखना कितना जरूरी है, जिसकी मिसाल पिछले छह दशकों से कविता के जरिए कायम कर रहे हैं मानिक बच्छावत।' प्रांजल धर ने इसी कृति को आधार बनाकर लिखा था,' बहुत बार भाषा के जरिए रचनाकार ऐसा कुछ कहलवा लेता है जिसे कहने की सामर्थ्य आमतौर पर भाषा में नहीं होती। इसी को देखते हुए कबीर को हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'वाणी का डिक्टेटर' यानी 'भाषा का तानाशाह' कहा था। मानिक बच्छावत की काव्य-भाषा में सादगी का सौंदर्य एक अलग अहमियत रखता है। यह सादगी ऐसी है जिसका वर्णन हमें ज्यां जैक्स रूसो की 'सोशल कांटैक्ट' में चित्रित प्राकृतिक अवस्था में मिलता है। 'मानिक बच्छावत की पारदर्शी और अबनावटी भाषा भवानी प्रसाद मिश्र की याद दिलाती है कि जैसा तू बोलता है वैसा तू लिख।

मानिक बच्छावत का एक महत्वपूर्ण संग्रह 'इस शहर के लोग' है। इस संग्रह पर उन्हें मैथिलीशरण गुप्त ट्रस्ट द्वारा दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार दिया गया। दिल्ली के आईसीसीआर हॉल में वरिष्ठ राजनीतिक सुनील शास्त्री के हाथों यह सम्मान मिला। तब इस पुरस्कार की राशि 31 हजार थी। इस संग्रह ने विशेष रूप से लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इस संग्रह के वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हुए अरुण माहेश्वरी ने लिखा,' पैंतालीस कविताओं का अपने प्रकार का यह एक अनोखा संकलन है। इसकी प्रत्येक कविता राजस्थान के मरुशहर बीकानेर के किसी न किसी एक ऐसे चरित्र पर है, जिसे साधारणीकृत करके हम इस शहर के वासियों के अंदर की विलुप्त हो रही प्रजातियों की श्रेणी में रख सकते हैं। ये उदय प्रकाश के पाल गोमरा के स्कूटर के पाल गोमरा की तरह किसी तेज गति पर सवारी की बेचैनी की वजह से बेमौत मारे जा रहे चरित्र नहीं हैं, बल्कि खुद-ब-खुद व्यतीत और विलुप्त हो जाने वाले बेहद संकेतपूर्ण चरित्र हैं।' इस संग्रह पर पत्रिका 'शेष' के जुलाई-सितंबर 2010 के अंक में महेश दुबे ने एक लंबा आलेख लिखा। उस आलेख का एक अंश है,' प्रस्तुत संग्रह की कविताएं हिंदी में अपने ढंग की अनूठी कविताएं हैं और कुछ अर्थों में अप्रत्याशित भी।...इन कविताओं के पात्र भिश्ती, ठठेरा, मोची, हमाल, दरजी, मेहतरानी आदि-आदि जो लगभग 60-70 वर्ष पहले और उसके पूर्व की हमारी सामाजिक संरचना के आधार रहे हैं और कवि ने इन कविताओं के माध्यम से उस युग का एक नया ही समाजशास्त्र लिख दिया है। ... इन कविताओं में हसीना गुजर, तीजाबाई, रोवणगारी, गपिया गंतारी, जिया रंगारी, अल्लाह जिलाई बाई, हमीदा चूनगिरनी,

कबरी लखारी और नूरा ऊनछांटनी उपस्थित हैं तो पूरी ठसक और आन-बान के साथ मौजूद हैं – खुदा बक्श फोटोग्राफर, भूरजी छींपा, रामचंद्र मोची, नूरजी पिंजारा, अहमद हमाल, सरजोजी दर्जी, नत्थू पहलवान, उदाराम सूंधा और पीरदान ठठेरा। यहां बेला का मीठा शरबत है तो जैसराज की कचौड़ियों का स्वाद भी।' यहां यह बताना आवश्यक है कि बीकानेर मानिक बच्छावत का अपना शहर है। मानिक बच्छावत इसी शहर से निकल कर कोलकाता आए और यहीं रच बस गए। उनका पूर्व परिवार जैसलमेर से बीकानेर आया था। यहां यह भी उल्लेख्य है कि संग्रह' इस शहर के लोग' का उर्दू में अनुवाद भी आया। यह दो जबानों की एक किताब थी।

महेश दुबे ने मानिक बच्छावत के एक दूसरे पक्ष को भी उद्घाटित किया है,' मानिक मूलतः प्रकृति और उसके सौंदर्य के कवि हैं। अपनी कविताओं में वे मनुष्य के साथ प्रकृति के लयात्मक संबंधों का समीकरण बुनते हैं। वे प्रकृति को प्रकृति की आंखों से देखते हुए सहजता के साथ उसके रूपों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देते हैं–'फूल मेरे साथ हैं,' 'पत्तियां करतीं स्नान,' 'पेड़ों का समय'–उनके उल्लेखनीय काव्य संग्रह हैं।' प्रकृति राग मानिक बच्छावत की प्रकृति संबंधी कविताओं का संचयन है। अभिज्ञात ने इस कविता संग्रह पर गौर करते हुए लिखा,' लगभग साठ वर्षों से सतत रचनाशील वरिष्ठ साहित्यकार मानिक बच्छावत की प्रकृति से घनी आत्मीयता की रचनाओं का साक्ष्य उनका काव्य-संग्रह 'प्रकृति राग' है। मानिक जी का प्रकृति के प्रति मैत्री भाव है जिससे वे लगातार संवादशील रहे हैं। वे उसके द्वंद्व को समझते हैं और उससे अपनी मानसिक ऊर्जा व संवेदनशीलता भी ग्रहण करते हैं। ऐसे दौर में जबकि वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के बचाव की चिंता की जा रही है, ये रचनाएं उस मनोभूमि का निर्माण करती हैं जहां प्रकृति का साहचर्य सुखद, विस्मयकारी और आह्लादकारी है।' यहां यह उल्लेख्य है कि इस महत्वपूर्ण संग्रह के लिए कविताओं का चयन पीयूषकांति राय ने किया।

मानिक बच्छावत ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन्हें हिंदी के अतिरिक्त कई विदेशी भाषाएं आती हैं। हिंदी की ओर वे अंग्रेजी को छोड़ कर आए थे। वातावरण और परिवेश की ऐसी संगत थी कि उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय में हिंदी में एमए करने के लिए दाखिला ले लिया। एक बार हिंदी के और साहित्य के हो लिए तो फिर दोनों का साथ उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। दोनों बंधे ऐसे कि जैसे एक दूजे के लिए बने। बंधना और बांधना उनके स्वभाव का हिस्सा है। जिनसे मिले और जिनके हुए, बिना किसी नापतौल के हुए। उन्होंने कविताएं भी अपनी किसी महत्वाकांक्षा को साधने के लिए नहीं लिखीं। उन्होंने नीलकमल को दिए एक साक्षात्कार में कहा था कि कविता से उनका विशेष लगाव है और उनकी कविताएं इसी लगाव से सृजित हैं। मानिक बच्छावत को अपने पसंदीदा कवियों की सैकड़ों कविताएं मुंह जबानी याद हैं। मानिक बच्छावत की कविताओं को भी नहीं भुलाया जा सकेगा। उनकी कविताओं की ही यह उपलब्धि है कि 2006 में उन्हें केंद्रीय हिंदी संस्थान की ओर से भारत के राष्ट्रपति ने गंगाशरण पुरस्कार से सम्मानित किया था। वेदव्यास ने उनके बारे में सही लिखा है,' मानिक बच्छावत रूप और ध्वनियों के कवि हैं और सादगी का सौंदर्य शास्त्र इनके पास है।

मानिक बच्छावत की अद्यतन कविताएँ

घर छोड़ते हुए

उस दिन कैसा लगा होगा
जिस दिन अपना घर छोड़ना पड़ा होगा
भरे हुए मन से जब हुए होंगे विदा
आंखों में पानी भरा होगा
बांहें फैलाकर मिलते हुए
जब अपनों की गरमाहट
महसूस की होगी
घर के दरवाजे तक लोग
भारी मन से
सड़क तक आए होंगे
बूढ़े-युवा-छोटे सबने मिलकर
यात्रा की शुभकामनाएं देते हुए
जल्दी लौट आने को कहा होगा
शुभ संकेतों के चिन्ह अंकित किए होंगे
सामने से कोई सौभाग्यवती गुजरती होगी
मन को कठोर करते नजरे चुराएं
अपने मोह को पीछे छोड़ते
जब कोई आगे बढ़ गया होगा
वह ड्योढ़ी पर झुककर कुछ
देर रूक गया होगा
उसने अपनी माटी को प्रणाम किया होगा
जिसकी गंध नासिका में बसी होगी

तब वह
मुंह छिपाकर अवश्य रोया होगा
ऐसे में जो कोई घर छोड़ कर गया होगा
अपना घर अपने साथ ले गया होगा।
('पत्तियां करती स्नान' संग्रह से, 2003)

मेरी कविता

मेरी कविताएं
दूसरों की मेजों पर
कभी नही बैठी
उन्होंने इन्हें नहीं चखा
इनका स्वाद नहीं लिया
ये मेरे भीतर से निकली संरचनाएं हैं
नैसर्गिक मन की
जिन्हें मेरे ही अंदाज में
देखा जा सकता है
मेरी पीड़ा को
मुझसे अधिक कौन जान सकता है
उसे समझने के लिए
मेरी पीड़ा में जीना होगा
मेरे साथ दुखों में सुखों में
रहना होगा
जो मैंने सहा है सहना होगा
('पेड़ों का समय' संग्रह से, 2009)

पीरदान ठठेरा

पीरदान आधा हिन्दू था
आधा मुस्लमान
ठठेरा कहता
मैं इन बरतनों की तरह हूँ
जिनका कोई मजहब नहीं होता

वह सबके लिए तांबे के पीतल के
बर्तन गढ़ता था
बर्तन बनाने की कला में माहिर था
उसके हाथ के बनाए कलसे तेपली तोपिये
गुणिये चरू परातें कुलदे छिन्नियां थालियां रकाबियां
इस शहर के लोग वर्षों से बापरते रहे
वह किसी को शिकायत का मौका नहीं देता
उसे लोग अपने घर में बुलाते
वह अपनी धौकनी और मशक लेकर
आंगन में बैठ जाता
लोग बर्तनों का ढेर लगवा देते

वह रांगे की छड़ी गर्म कर उनमें कलई कर देता
उन दिनों बर्तनो का व्यवहार करते वक्त
कलई लगाना जरूरी था
समय ने पलटा खाया
स्टेनलेस स्टील और प्लास्टीक का
व्यवहार बढ़ने लगा
पीरदान का काम घटने लगा
लोग अब तांबे और पीतल की जगह
नये बर्तनों का इस्तेमाल करने लगे
देखते ही देखते ठठेरे पीरदान का
कारोबार खत्म हो गया
अब ठठेरा सीर्फ वर्णमाला की किताब में
'ठ' की पहचान के लिए
महज एक शब्द है।
('इस शहर के लोग' संग्रह से, 2010)

सड़क पर जिन्दगी

गीता सड़क पर सोती है
चीतरंजन एवेन्यू के माधव भवन के नीचे
रात गुजारती है
वहाँ और भी
बहुत सारे व्यक्ति
डेरा डाले पड़े रहते हैं
वे रोज इधर-उधर कूड़ा-करकट चुनते हैं
दस-बीस रुपये कमा लेते हैं
उनकी कोई जाति-पाँती नहीं है
कोई उम्र नही है कोई मजहब नही
वे मिलकर दिन गुजारते हैं
गीता सुबह इन्द्र महल मद्रासी रेस्तराँ में
बर्तन साफ कर आती है
वहां से नास्ता-पानी
मिल जाता है
अगल-बगल की गलियों-सड़कों पर
चक्कर लगाती है
जो कुछ रद्दी मिलती है
उसे अपने बोरे में भरे कबाड़ी को दे आती है
काम चल रहा है
देखते ही देखते गीता गर्भवती हो गई है
पता नही कौन है उस बच्चे का बाप
पर बच्चा उसका है
फूटपाथ पर ही प्रसव हो जाता है
वह बेटे की माँ बनी है
उसमें रम गई है
भूल गई है दुख
देखते हैं
आसपास के लोग
भौंचक-से
कैसे बच्चे को अच्छा आदमी बनायेगी
उसे रद्दी चुनने नही देगी वह
नही सोने देगी फुटपाथ पर
हालांकि उसके सिर पर
पति का हाथ नहीं है।
('सड़क पर जिन्दगी' संग्रह से, 2016)

जामुन का पेड़

पिता ने तलाब के किनारे
लगाया था जामुन का पेड़
देखरेख से
वर्षों में बड़ा हो गया
जामुन का पेड़

लगने लगे उसमें
फल बहुत मीठे
जायकेदार
पिता अब नहीं हैं
हम हर वर्ष खा रहे हैं
जामुन।
('प्रकृति राग' संग्रह से, 2017)

संपर्क : मानिक बच्छावत : जीसी-76, साल्टलेक, सेक्टर - 3, कोलकाता-7000106

मृत्युंजय श्रीवास्तव : फ्लैट-सी/11.3, एन.बी.सी.सी., विवज्योर टॉवर,
न्यू टाऊन, कोलकाता-700156, मो. 9433076174

कविता

-सरिता खोवाला

जीवट संगीत

दो आँखें
झाँकती रहतीं
इर्द-गिर्द
रसोई के जूठे बर्तनों में कुछ!
झाँकती रहतीं, कभी सड़कों पर
तेज भागते वाहनों को।
तमन्नाओं का बड़ा पेट
झाँकने भर से
भर जाता होगा भला!

दो आँखें
चलती थीं टूटे-फूटे रास्तों में,
सड़कों के बीच
उग आए जलाशयों के
पानी को,
पैरों से उछालते
उन्मुक्त गान
जीवट संगीत
कैद मुक्त हो रहा जैसे जीवन!

दो आँखें
एकटक अविरल
झाँक रही थीं मुझको
बरसों से घेरे में 'मैं'
मोहपाश या असीम स्नेह
अथाह प्रेम या मायाजाल
विरक्त विरक्त सा
वनवासी हो चला था मन!

रेत में नदी

रेगिस्तान की रेत हो
या फिर समंदर की रेत
सोख ली जाती हैं
अक्सर नदियाँ!
नदी जाना चाहती थी रेगिस्तान
पत्थरों से टकरातीं
पहाड़ों का सीना चीर
चली जाना चाहती थी
सूदूर रेगिस्तानी इलाकों में...
हरियाली बरपाने!
शायद पहले कभी कोई नदी
चली गई थी तेज प्रवाह लिए
विराट जलधारा के साथ
उन रेगिस्तानों में...
असमय काल के मुँह में
समा गई मानों
पूरी की पूरी सोख ली गई!
अस्तित्व ही शेष हो गया उसका।
तब से अब तक
रेगिस्तान सूखे ही पड़े रह गए।
नदियाँ बहती रहीं
समतलों में, पठारों पर
सपनों की रेलगाड़ी जैसी अल्हड़!
अस्तित्व का बचाव
एक लम्बी लड़ाई होती है हमेशा।

नुकीला समय

वो समय...
घड़ी की सूई की
नुकीली नोक पर चल रहा था।
सूई सा नुकीला समय भी
गुजर ही जाता है...
कमोबेश अंकों के मध्य
जैसे घूमती हैं
घड़ी की टिक-टिक करती सूइयाँ।
समय का कोई लक्ष्य नहीं होता
बीत जाना है बस उसकी नियति ।
लक्ष्य होता है मनुष्य का
समय बीत सकता है
लक्ष्य स्थिर है
रास्ते तय किए जाते हैं
समय रहते लक्ष्य का भेदन जरूरी है
अर्जुन ने जैसे लक्ष्य भेदा।
नुकीला समय बनकर रह जाता है कर्ण...
कुन्ती के लिए
समय बन आया था नुकीला,
अंक समान ही रह गए आखिर।

भूख की पराकाष्ठा

मिथिहास परोसा गया हमारे समक्ष
धृत के सदृश...
बाल्टी भर-भर बचा दूध
फेंक दिया गया...
छिछले नालों और सड़कों पर
लावारिस बहने के लिए
अमीरी की पराकाष्ठा थी ये।
नालों से निकाल
दूध अलग करने की कोशिश
लगे रहे असंख्य हाथ
गरीबी की पराकाष्ठा थी ये।
इतिहास ने बताए आंकड़े
जंग में मरे लोगों के...
मिथिहास लगाता रहा ढक्कन
उन आकंड़ों पर...
जंग के उपरांत
भूख की कड़ाही में तले जीवन पर!

जादुई यादें

रेडियो का एंटिना
तब लगता था जादुई छड़ी,
सीधा खड़ा करते ही उसे,
डब्बे के अंदर से
घरघराती आवाजें
आने लगती थी एकदम साफ!
दिन भर में घटित
देश-विदेशों की खबरें
निकल आती थी उस डब्बे से...
जो सजाकर रखा था पापा ने
अपनी टेबल पर।
हर शाम,शाम होते ही
जीवित हो उठता था वो डब्बा
निकल आते थे उसके पंख
समेट लाता था वो सारी खबरें।
बस सनसनीखेज खबरें
न होती थी आज की तरह!

संपर्क : 4/B/1, सलकिया स्कूल रोड़, राघव रीभर भ्यू, D-23, द्वितीय तल्ल,
हावड़ा, पिन. 711106, मो. 8910052301

-तृषान्विता

मेरे जंगल की एक और माँ

मेरी माँएं काटती हैं काठ
ढोती है लकड़ी
मेरे बाप बनाते हैं महुआ-हड़िया
चीरते है ज़मीन, रोपते हैं बीज, उगाते हैं धान
मेरे जंगल के लोग
बजाते हैं मादल, गाते हैं लोकगीत

मेरे जंगल की एक और माँ बैठती है
भारत-टीले की सबसे ऊँची चोटी पर
मैं सोचती हूँ
क्या वहाँ से दिखता होगा उनको
मेरे जंगल के बच्चों के छीले हुए पैर
जो जाते हैं स्कूल नंगे पैर
मीलों की दूरी तय कर
और देखते हैं शिक्षक अनुपस्थित हैं?
या मेरे किसान भाइयों का दुःख
जब उनसे खरीदें जाते हैं उत्पाद
सबसे सस्ते दामों में?
या मेरे बहनों के आँसू
जो उच्च शिक्षा के छूटे सपने लिए
बिठाई जाती हैं विवाह-मंडपों में?

क्या वहाँ से उनको सुनाई देता होगा
मादल की थाप
लोकगीत की धुन
जो गूंजता है मेरे जंगल में हर रात?

क्या सोचती होंगी वह
अपने आदिवासी इतिहास के बारे में?
क्या लिखती होंगी हमारा भविष्य?
क्या देखती होंगी हमारे युगों से
ठहरे हुए वर्तमान को?

नाह
भारत-टीले का उनका वह भवन
सबसे ऊँची चोटी पर है।

समझौता

मैंने देखी है
सेन्ट्रलाइस्ड ए.सी वाली गगनचुम्बी इमारतें
और उसकी
सबसे ऊपरी तल्ले के छतों की झलाई करते
मिस्त्रियों की
उभरी हुई नसें
पसीने से तर-बतर शरीर

मैंने देखा है
शाम सात बजे की भीड़ बसों से लटकते
पीठ पर लैपटॉप का बैग
कंधे पर घरखर्च की ज़िम्मेदारी
और मन में घिसी-पिटी जीवनशैली
की ऊब लिए
मध्यवर्गीय पिता का
थका-मांदा चेहरा

मैंने देखा है
घड़ी की सुई से होड़ लगाती
सालों से छुरी-पहसुल की मार सहते
कुशल गृहिणी की
कटी-फटी ऊँगलियों का सिरा
नर्म सुंदर हाथों पर पड़े
तेल की गर्म छींटों के फोड़े

मैंने देखा है
सरकारी दफ्तरों में
रिश्वतखोरी से हारे हुए
मेधावी छात्रों के हाथों में
कलम की जगह पर झाड़ू

मैंने देखा है
सालोंसाल
अपनी शक्ति से अधिक
मेहनत करते लोगों को
और देखा है
उन्हें अपने प्राप्य अधिकार से भी
कम में
समझौता कर लेते हुए।

संपर्क : हिन्दी शिक्षीका, सुशीला बिड़ला गर्ल्स स्कूल, गीता-अपार्टमेंट,
739 विद्यासागर सरणी, कोलकाता - 700063 **मो.** 9903270093

-अभिषेक पाण्डेय

खो चुका है आकाश

सियासत ने
कभी नहीं उठाया
गिरे हुए तारों को
न झाड़ी उनकी धूल
न थामा उन्हें हाथों में
वे बनाते रहे, चाँद और सूरज
बड़ी-बड़ी मशीनों में
हो गया ओवरलोड
चली गई रोशनी
फैल गया अँधेरा
सिसका कहीं पर
एक तारा, मिट्टी में सना हुआ
कुछ कहने को खड़ा हुआ
चमकना है आकाश दे दो/दे दिए गये माइक
होने लगे इंटरव्यू, जमने लगी काई
फिसलने लगी जिह्वा
पर आकाश न मिला
लाखों तारे, गिरे पड़े हैं औंधे मुँह
सिसकियों को
सोख चुकी है नीरवता
बची हुई है
सुनहली मद्धिम-सी
एक चमक
जिससे, रह-रह कर आती है
टोंय-टोंय की आवाज़
जो संपर्क ढूँढ़ा करती है
घर का।

निस्संग नहीं होती कविता

कविता
लिखते हुए
मैं कभी
अकेला नहीं होता

मेरे साथ होती है
फर्श पर बिछी हुई चटाई
जो मेरी कविता को
आधार देती है

मेरे साथ होता है
एक लोटा पानी
जिसे थोड़ी-थोड़ी देर में
पीती है मेरी कविता
मेरे साथ होती हैं
पपड़ी छोड़ती हुई दीवारें
जहाँ बिम्बित होते हैं
कई शब्द और वाक्य समूह
जो दरीचे से
आती हवाओं से मिलकर
क्रमबद्ध आ बैठते हैं
मेरी कविता में।

घर की अंतिम इच्छा

दो नए घरों के बीच में
टूटा पड़ा हुआ
वह पुराना घर
उसके बिखरे पड़े
ईंट और खपरैल
जगह-जगह से झड़ रही
मिट्टी और अब टूट कर
गिर ही जाने वाले खम्भे
मेरी उंगली पकड़कर
खींच लाते हैं
उसी आंगन में
जहाँ मैं नित्य गौरैयों को
चावल खिलाया करता था।

यहीं पर था वह
मिट्टी का चूल्हा
जिसने दाल और साग
की खुशबू से
हमेशा ही इस घर को
महकाया था पर शायद
अब कुछ शेष नहीं
उस पुरानी हवा को
अभी भी महसूस
कर रहा हूँ
जो जब मन चाहे आती है
और इस जर्जर घर में लगे हुए
जालों से खेल कर लौट जाती है।

इस घर में
कुछ बच गया है तो
वह रिक्त स्थान, जहाँ गौरैया ने अंडे दिए थे
सहसा मुझे भान हुआ
जगह तो वही है, सिर्फ घोंसले बदल गए हैं

घोंसला हाँ यानी घर
वही घर, जो कभी मेरा था।

इन्हीं यादों की कच्ची
पगडंडियों पर, चला जा रहा था कि
अचानक सब कुछ, मौन लगा मुझे
मानों इस उजर रहे घर ने
अपनी जिम्मेवारी, पूरी कर ली हो
इन यादों को मुझे सौंप कर
अब वह सुकून से बिखर सकेगा
शायद यही इसकी इच्छा थी
अंतिम इच्छा।

वे जो शोषित हैं

देश था, इंसान था,
परिवार था, सपने थे,
भूख थी, मजदूरी थी, मजबूरी थी!
तो लौटा वह मजदूरी करके
हमेशा की तरह
पूर्ण श्रम और अर्द्ध फल पा कर।
लेकिन चल गया उसपर
काल का काला पहिया
कट गया सिर,
मिट गया अस्तित्व,
शुरू हुई राजनीति,
नहीं मिला मुआवजा,
भटक रही है आत्मा।

अलग-थलग पड़े हैं
हैं हाथ कहीं, कहीं कटे हुए शीश,
कहीं हृदय में ही
सिमट चुकी हैं सांसें, कट चुकी है जिह्वा,
रुक चुकी है गति
अधिकारों की, फिर भी ताक रहा है
भूख से कचोटता हुआ
वह अधमरा पेट।

खुली हुई हैं आंखें
मर रहे हैं सपने,
भाग रही हैं यादें,
दौड़ रहा है मस्तिष्क,
समेट रहा है यादों को
पर पड़ जाती हैं
बेड़ियाँ पैरों में;
गिर जाता है मस्तिष्क औंधे मुँह,
फिसल जाती हैं यादें,
खुल जाती है बुद्धि।

माँगती है बुद्धि न्याय अब
पाषाण हो चुकी सरकार से
बार-बार खोल डालती है
उस संविधान को
जिसमें कैद है
समानता का अधिकार
कहीं किसी काले पन्ने में।

भागती है बुद्धि
पूरी स्पीड से, दबोचती है उस 'जिह्वा' को
जिसने वायदे किए थे-
'रोटी , कपड़ा और मकान' का,
'सुरक्षा तथा स्वाभिमान' का
पर फिसल जाती है 'जिह्वा'
जल जाती है 'रोटी'
फट जाते हैं 'कपड़े'
और बिखर जाता है 'मकान'

अंततः बच जाता है
एक काला और अंधा सच।
जिसमें दौड़ रहा है
एक खाली पिंजर
जिसकी हड्डियां तक
चूसी हुई हैं;
जो शोषित है,
क्षुद्र है, नग्न है,
असभ्य है।
हाँ, वह
वही मजदूर है!
जिसे तुम्हारी कल्पनाओं ने
हक़ीक़त में निगल डाला;
वही मजदूर जो कि
आज मिट गया
तुम्हारी भूख को मिटाते-मिटाते।

संपर्क : 34, बनवारी लाल रॉय रोड, हावड़ा, **पिन.** 711101 (पश्चिम बंगाल), **मो.** 8902201232.

-घुँघरू परमार

प्रार्थना की विधा_____

प्रार्थना की सर्वोत्तम विधा का
अब तक
सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सका है

कोई पानी में सिक्का फेंक कुछ माँगता है
तो कोई टूटते तारे देख बड़बड़ाता है
मन्नत के धागे से
मंदिर-मस्जिद की दीवारें अँटी पड़ी हैं
कोई नंगे पाँव नापता है चारों धाम
तो कोई तोल रहा अपने भार भर स्वर्ण

कुछ रावण बन
अपना और अपनों का सर काट रहे
तो कोई राम बन अपनी ही आँखों का
चढ़ा रहे थे चढ़ावा

ये सब प्रार्थना की सबसे अश्लील विधा थी
जहाँ एक मन की इच्छा पूर्ण करने हेतु
दूसरे मन की दी जाती रही बलि

इतिहास से वर्तमान की अनवरत यात्राओं
के पड़ाव में
प्रार्थना ने अपने ढोंग का बस रंग बदला था
विधा वही थी

इच्छाएं-

कुछ इच्छाएं भीष्म होतीं हैं,जो तुम्हें देखे
बगैर मरने नहीं देती।
कुछ इच्छाएं अधमरी होतीं हैं,जो जीने
नहीं देती।
कुछ इच्छाएं धृष्ट होतीं,जो चाहती तुम्हारे
अधूरे चित्रों के साथ होना।

कुछ इच्छाएं पेड़ा होती है-
हाँ, 'पेड़ा'
गाँव की 50 साला विधवा बड़की, जब अपने
दम तोड़ रही थी
अंतिम इच्छा पूछने पर
बताया था-खाना है पेड़ा
हँस पड़े थे सब ठठाकर कहते हुए-पेड़ा.....

चौंक की ही छोटी दुकान से लाकर पेड़ा
मृत्युशैया पर पड़ी बड़की की अंतिम इच्छा
की गयी थी पूरी।
इस सुंदर इच्छा के साथ
वह संस्कारी बन मरी थी
चार संस्कारी पुरुषों ने संस्कार को श्मशान
पहुँचाया था।

उम्र या बीमारी से नहीं,
संस्कार बचाने में
उपेक्षा से मरी थी वह

श्राद्ध पाँच मिठाइयों संग
संपन्न हुआ था
इच्छा पूरी करने वाला, पेड़े की दुकान भी
फल-फूल रहा था खूब।
पता नहीं क्यूँ
तब से पेड़े का स्वाद
हर बार कड़वा लगा था मुझे
श्राद्घ का भोज कब खाया
फिर याद नहीं।

कई अतृप्त इच्छाएँ कह रही थीं-बड़की से
मधुर व्यंजन उसके मालिक का था
हाँ.. उन्नीस-बीस तो होता ही है

नानी ने कहा था कभी
बेलन का दोनों सिरा भी उन्नीस-बीस ही होता,
ताकि बना रहे संतुलन।

बड़की मर कर भी संस्कार और पत्नी
धर्म निभा गयी थी

कुछ इच्छाएं हवा में उड़ती पॉलीथीन होतीं हैं,
आसमां छूने की चाह में खुद के ही चिथड़े
उड़ा लेती।
कुछ इच्छाएं अपाहिज होतीं हैं जो दौड़ने
की चाह में घिसटती रहती है
कुछ इच्छाएं बदचलन होती हैं
जैसे तुम्हें छूने की।
ऐसी इच्छाओं का श्राद्ध भी नहीं होता,
जो भूत-पिशाच बनकर भटकती रहती
दर-ब-दर।।

संपर्क : मो. 7004981616

सांझी छत

-मनीष कुमार सिंह

घर का रास्ता लगभग पहले जैसा ही था। बस नगर-निगम वालों के लगाए पौधे आदमकद हो गए थे। गुमटी पर जमाने से चल रही चाय की दूकान वैसी ही खुली थी। मोड़ पर बैठने वाला पान वाला अभी भी कत्था-चूना लगाता हुआ दिखा। घर के दरवाजे और उस पर लगे साँकल व बरामदा की सूरत पहले जैसी थी। अन्दर के कमरे क्या बदले होगे?

बरामदे में चहलकदमी कर रहे बड़े भाई ने उसे देखकर बस इतना पूछा कि कौन सी गाड़ी से आए हो। भाभी ने अपनी कोठरी के दरवाजे का मटमैला परदा जरा सा सरका कर यह जायजा लिया कि उनका पति किससे बात कर रहा है। उसे देखकर वे तनिक मुँह बिचकाकर अंदर हो गयीं। चाय-पानी को पूछना तो दूर बीबी-बच्चे का हालचाल तक की खबर नहीं ली। वह सब कुछ देखते हुए भी निरपेक्ष मुद्रा अख्तियार करके घर के अंदर आया। आँगन के तीनों ओर कोठरियाँ थीं। वह सीधा मॉ और बाबूजी की कोठरी में पहुँचा। पाँव छूने पर पहले से ज्यादा बूढ़ी लग रही माँ ने खाट से उठने का उपक्रम करते हुए पूछा। ''बहू और मोनू को साथ क्यों नहीं लाया?''

वह बिना कोई जवाब दिए घड़े से गिलास में पानी उड़ेल कर पीने लगा। फ्रिज बड़े भाई की कोठरी में था। पुराने मॉडल का ही सही जिसके फ्रिजर में इस्कीमो के घर इग्लू के आकार की बर्फ जमी रहती।

बाहर कुल्फी वाले की घंटी सुनायी दी। बचपन में वह इस घंटी को सुनकर वह मचल कर भागता था। दादाजी, पिताजी, बड़े या मझले चाचाजी से जिद् करके खरीदवाता। वे मना करते लेकिन फिर मान जाते। आज खुद खरीदकर खाने का भी जी नहीं करता है। बस यार-दोस्तों के साथ कैण्टिन में बैठकर चाय पीता है। कुल्फी खाकर जो तृप्ति तब मिलती थी वह अब कहाँ। उसे सहसा यहाँ आने की निस्सारता का अनुभव होने लगा। खामखाह का नॉस्टेलजिया। न कोई लेना न देना और यहाँ पहुँकर सभी का फूला मुँह देखो। सबके सब कुंठित..। हद दर्जे के खुदपरस्त। सभी के मन में अपरिभाषेय मलबे के रूप में न जाने क्या-क्या दबा हुआ है।

मॉ कब रसोई में गयी यह पता नहीं चला। प्लास्टिक के एक पुराने ट्रे में चाय और मगज के दो लड्डू लेकर वह आ रही थी। उसने गौर किया कि प्याली के किनारे टूटे हुए थे। ज्यादा चीनी वाली लोकल ब्रांड की चाय। लड्डू भी बेमजा थे। वह सामने दीवाल पर टँगे कैलेण्डर में शिवजी के परिवार को देखने लगा। शिव-पार्वती, गणेश और कार्तिकेय। पंखे की खड़खड़ाहट के साथ कैलेण्डर भी आवाज करता हुआ डोल रहा था। इस उपक्रम में दीवाल पर निशान बन गए थे। शिव-परिवार का चित्र लोगों में शायद भक्तिभाव जाग्रत करने के लिए कारगर होगा लेकिन वह कुछ सोचकर मन ही मन हँस पड़ा। अजीब विरोधाभास है। शिव के गले में सर्प माला की भाँति आबद्ध थे जबकि कार्तिकेय का वाहन मोर सर्पभक्षी है। उधर गणेश जी का वाहन चूहा बिना साँप के आतंक के सन्निकट बैठा है। शक्ति स्वरूपा पार्वती जी दुर्गा ही तो हैं जिनकी सवारी सिंह से नन्दी बैल को कोई भय नहीं है। विरूद्धों का अजीब सामंजस्य है।

आँगन में पीपल का पेड़ आज भी ज्यों का त्यों खड़ा था। उसकी जड़ बगुले के पैर की तरह फैली हुई थी। गिलहरियॉ उसपर चढ़ उतर रही थीं। उसके बिल्कुल पास चौखट पर आकर एक गिलहरी किवाड़ के नीचे उग आए एक पौधे में अंकुरित नन्हें फल खाने की चेष्टा कर रही थी। उसने लड्डू का एक टुकड़ा उँगलियों से उसकी तरफ फेंका। फूर्ती से उस भेंट को स्वीकार करके वह दुबारा पेड़ पर चढ़ गयी।

घर में एक अघोषित विभाजन पहले ही विद्यमान है। किसी दिन बड़े भाई पूरी तरह अलग हो जाएँगें। माँ-बाबूजी किसके हिस्से आएँगें यह एक यक्ष प्रश्न हो सकता है। क्योंकि उनकी सम्पत्ति जैसे-खेत-जमीन, यह पुश्तैनी मकान, चौकी-खाट, आलमारी, बर्तन-भाँड़े और माँ के गहने का ही सवाल नहीं था अपितु माँ-बाबूजी को बुढ़ापे में रखने के दायित्व का भी उलझा हुआ प्रश्न निहित था।

"बाबूजी की सेहत कैसी रहती है?" उसने एक सामान्य प्रश्न किया। "संझा को आएँगें तो देख लेना।" माँ ने निरपेक्ष मुद्रा में जवाब दिया। उसे लगा कि वह व्यंग्य कर रही है क्योंकि उसके सवाल में मामूली जिज्ञासा भर थी। चिन्ता का कोई नामोनिशान न था। फिर लगा कि माँ सहज भाव से कह रही है। उसके संज्ञान में यह तथ्य था कि पिछले कुछ महीनों में उनकी तबियत ठीक नहीं चल रही है। इस दौरान माँ ने उससे पैसों की कोई माँग नहीं कि और न ही उसने खुद अपनी ओर से कुछ भिजवाया।

सांझ को बाबूजी आए। दरवाजे पर खटखट होते ही अशक्त दिखने वाली माँ चपलता से उठी और किवाड़ खोला। बाबूजी का शरीर केले की तरह गल गया था। बड़े भाई की तरह किस ट्रेन से आए हो यह न पूछ कर वे उसे ध्यान से देखने लगे। प्रणाम और आर्शीवाद के बाद उन्होंने उसे घूरते हुए कहा, "काफी दुबले हुए हो।"

इस बात पर वह कुछ नहीं बोला। औलाद को बहुत दिनों बाद देखने पर माँ-बाप की सामान्य प्रतिक्रिया माना। बाहर आदमी कमाने जाता है। बैठे-ठाले रहने का समय किसके पास है। यहाँ की कस्बाई सोच चाय-पान की गुमटी पर महफिल सजाकर गप हाँकने तक सीमित है। टूटे चप्पल मोची से सिलवाकर अनंत काल तक इस्तेमाल करने की जिद्द, फटी धोती व झरते प्लास्टर वाली दीवालें देखने की अभ्यस्त आँखें किसी की तरक्की बर्दाश्त नहीं कर सकती हैं। पहले खाना खाने से पूर्व और खाने के बाद ढंग से हाथ धोने की आदत डाल ले। उसे घर का प्रत्येक सामान ऐसा लग रहा था मानो बरसों तक जमीन में दबा रहने के बाद निकाला गया हो। छत पर जगह-जगह सीलन के निशान थे। जब तक कोई अति आशावादी अपनी कल्पना से इसे मार्डन ऑर्ट न समझ ले तब तक यह दृश्य बेहद अवसाद उत्पन्न करता था। घर में कोई आ जाए तो उसे बैठाने में शर्म आएगी। बड़े भाई की कोठरी में दादाजी के समय का शीशम का पलंग पड़ा दिख रहा था। बिना बँटवारे के ही उन्होंने एक तरह से कब्जा कर लिया। देखो जरा पलंग की मजबूती पर कई जमाने बीत जाने के बाद भी कोई फर्क नहीं पड़ा है। भला निर्जीव चीज की भी इतनी आयु होती है। अनेक लोग इस बीच गुजर गए। लोग उत्तरोतर किशोर, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध होते गए।

बड़े भाई की छह वर्षीय बेटी माला दौड़कर उसके पास आ गयी। "तुम मटरू चाचा हो ना?" वह पहली बार मन से मुस्कराया। "हाँ ठीक पहचाना और तुम कौन हो?" उसने जानबूझ कर कौतुक करने के लिए पूछा।

"मैं माला...?" वह किवाड़ से सटकर खड़ी हो गयी। एक हाथ में प्लास्टिक की गुड़िया थामे हुई थी। घर में पुकारे जाने वाले इस मटरू नाम को बड़े शहर में कोई नहीं जानता था। आज यह नाम सुनकर उसे अच्छा लगा। घर वाले बच्चों के नाम ऐसे-वैसे रख देते हैं। "इधर आओ।" उसने माला को बुलाया।

"ना...।" वह इठलाती हुई बोली। उसने उसे गोद में उठाया। इतने दिनों बाद मिल रहा है। बच्चों को कहाँ याद रहेगा। "मोनू को क्यों नहीं लाए?" माला ने पूछा। लो इसे तो सब याद है। "चलो तुम्हें उसके पास ले चलते हैं।" वह बोला।

"मटरू चाचा टमाटर और कटहल फल माने जाते हैं या सब्जी?" माला ने अपनी आँखें चमकाते हुए पूछा। अरे यह कैसा सवाल...! वह फेर में पड़ गया।

"हमारे स्कूल में मैडम ने पाँच फल और सब्जियों के नाम लिखने को कहा है।"

"तुम्हें किसी और फल-सब्जी का नाम नहीं सूझा?"

"नहीं...बात यह है कि एक बच्चे ने टमाटर और कटहल को फल में लिखा था। उसके पापा ने यही बताया था। इस पर मैडम ने काट दिया। इसलिए पूछ रही हूँ।" वह जोर से हँसने लगा। देश में किन-किन जगहों पर कटहल को फल माना जाता है? कम से कम शहरों में तो ये सब्जी में गिना जाएगा। टमाटर का मामला जरा अलग है। यह बॉर्डर लाइन पर है। वह माला को लेकर चौक की ओर निकल गया। उसे टॉफी-चॉकलेट दिलाने का इरादा था। चौक पर एक खाली मैदान हुआ करता था। पहले बिल्कुल खाली रहता था। अब कुछ कार और दुपहिया खड़े थे। फिर भी काफी जमीन खाली थी। यहाँ साल-छह महीने पर कव्वाली, कुश्ती–दंगल इत्यादि हुआ करते थे। अभी भी होते होंगे। दुर्गा-पूजा का पंडाल यहीं लगता है। दो बच्चे प्लास्टिक की थैली को डोरी से बाँधकर हवा के प्रवाह के विरुद्ध दौड़ते हुए उड़ा रहे थे। बहुत बरस पहले वह भी कभी ऐसा ही किया करता था। जब तक घर से कोई माँ और दादी के नाराज होने की पक्की खबर नहीं लाता तब तक प्लास्टिक और अखबार का पढ़ना उड़ाने की सफल-असफल कोशिश करता रहता।

माला को दूकान के सामने लाकर उसने मर्तबानों की ओर इशारा करके कहा, "ले लो...क्या चाहिए।" वह जरा सकुचा गयी। "अरे चुप मत रहो। बोलो...।" उसने प्रोत्साहन दिया। फिर खुद कुछ टॉफी और चॉकलेट लेकर उसके नन्हे हाथों में पकड़ाया।

लौटते हुए पूरे रास्ते माला उसकी उँगली थामे तरह-तरह की बातें पूछती रही। मटरू चाचा यह मंदिर हनुमान जी का है या शंकर भगवान का...? आपकी पतंग कितनी ऊँची जाती थी, वगैरह। उसने हलवाई के यहाँ जलेबी खाने को कहा लेकिन बच्ची में लालसाधिक्य का अभाव था। बस टॉफी-चॉकलेट से संतुष्ट थी। घर पहुँचकर वह खुले दरवाजे के अन्दर घुसकर जोर से किलकारी मारती हुई चिल्लाई। "हाथी, घोड़ा, पालकी जय कन्हैयालाल की।" घर में सभी खामोश सदस्यों का ध्यान उसकी तरफ आकृष्ट हुआ। "ये देखो," उसने अपनी दोनों हथेलियाँ खोली, "मटरू चाचा मेरे लिए क्या लाए हैं।"

बेटी के हाथ में टॉफी-चॉकलेट देखकर भाभी की मनस्थिति तनिक बदली। "दिन भर हुड़दंग मचाती रहती है यह। स्कूल का होमवर्क पूरा करने को कहा तो नानी मरने लगती है।" इस भर्त्सना को सुनकर उसने माला का पक्ष लिया। "अभी बहुत छोटी है।"

"चलो मटरू चाचा हम लोग छत पर चलते हैं।" वह उसकी उँगली पकड़ कर पूरे अधिकार से खींचती हुई बोली। "चल जाकर अपना काम कर।" माँ ने उसे झिड़का। "थका- माँदा आया है और तू उसे अपने में उलझा रही है।"

"जाने दो माँ।" वह उसके साथ ऊपर गया। सीढ़ियाँ जर्जर थीं। छत की काली, खुरदुरी और कबूतरों की बीट से जगह-जगह पटी फर्श किसी स्वजन के शव की तरह लेटी लग रही थी। एक कोने में कटी पतंग गिरी हुई थी। पतंग का फीका पड़ा रंग देखकर लगता था कि कई दिन पहले गिरी होगी। छत के एक कोने में बड़ी सी दरार साफ दिखायी दे रही थी। उसे याद आया कि इसी जगह पर कभी बड़े भाई तिरपाल तान कर बरसात का पानी इकट्ठा करते थे। कहीं से एक बगुला पकड़ कर लाए थे। उसे खिलाने के लिए तिरपाल के संग्रहित पानी में मछलियाँ छोड़ देते थे। आज उसी जगह से पानी टपकता है।

आँगन में बड़े भाई के खटिया पर बैठ जाने की वजह से माँ ने एक बार सबके लिए चाय बनायी। चाय पीते ही पता चला कि उसमें तुलसी की पत्तियाँ डाली गयी हैं। यानि की माँ को उसकी पसंद याद है। कस्बाई माहौल ऐसा ही होता है। "भाग्य खराब हो तो शेर भी मकड़ी के जाले में फँस जाता है।" बड़े भाई अब उससे बड़ी आत्मीयता से अपना दुखड़ा बयान करने लगे। "ठेकेदारी शुरू की थी लेकिन बीच में पेंच आ गया। पार्टनर भाग निकले और मैं फँस

गया। जेब से जमा-पूँजी लगानी पड़ी। मुनाफे की बात छोड़ो।"

"पार्टनर कौन थे?" उसने एक सामान्य जिज्ञासा दिखायी।

"एक तो अपना वीरेश्वर था। नाम सुना होगा...। इंटर फेल है। दूसरा रामऔतार बाबू का लड़का हरिहर...। इसमें वीरेश्वर ने बेईमानी की। समझ लो कि आज शहर में अपना पूरा व्हाइट हाउस बना लिया है। गाड़ी, घोड़ा, नौकर सब हैं।"

उसे लगा कि बड़े भाई के जख्म से मवाद बह रहा है। "तुमको नहीं पता होगा। उसका खानदान भूखों मरता था। घर के लाई-चबेना का ठिकाना नहीं था। लेकिन उसका बाप बाहर निकलता था तो मूँछों पर घी निपोड़ लेता।"

वह कहना चाहता था कि कलयुग में पूँजी और प्रचार के बिना कुछ नहीं होता है लेकिन चुप रहा।

लोग महानगर को खामखाह लानत भेजते हैं। कुछ भी करो वहाँ कोई फालतू की ताँक-झाँक नहीं करने जाता। सबकी अपनी-अपनी जिंदगी है। इधर लोग जिंदगी का कम से कम आधा समय दूसरों के बारे में जानने और सूँघने में लगा देते हैं। पहले की बात और थी। अच्छा है कि आज वह यहाँ नहीं रहता है। ऐसे माहौल में कोई क्या खाक तरक्की करेगा...। आसपास कोई नाली या पीकदान होता तो वह खँखार कर थूक देता। यहाँ लोग एक-दूसरे को नीचा दिखाकर और उनकी असफलता एवं औसत दर्जे के जीवन पर खुश होकर एक कुंठित आनन्द का आस्वादन करते हैं।

घर की रेलिंग से प्लास्टर का एक टुकड़ा टूट कर सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ नीचे गिरा। जर्जर चीज चाहे कितनी भी ऊँची हो गिरकर बिल्कुल तल पर आती है। पूरा मकान ही जीर्ण-शीर्ण है। मरम्मत में जितना लगेगा उससे अच्छा है कि नया खरीद लो। लेकिन यह बात ये लोग कहाँ समझेगे। कहने में भी खतरा है। न जाने क्या समझ ले।

"पूरा घर टूट रहा है। पेट पाले या छत बनवाए। फूस जला कर या तो ताप लो या उसे छत पर बिछा दो।" पास में पीढ़ा पर बैठकर बाबूजी ने गर्मी के मारे अखबार मोड़कर पंखा करना शुरू कर दिया। गर्मी के विरुद्ध अपने इस क्षुद्र संघर्ष में पराजित होकर उन्होंने अखबाररूपी पंखा नीचे रखकर मानो अपनी पराजय स्वीकार कर ली। "धरती को बुखार चढ़ रहा है। हर साल पहले से ज्यादा गर्मी पड़ती है।"

माला अपने खिलौने लेकर उन सबके बीच आ गयी। सारे खिलौने लकड़ी की एक गाड़ी में रखकर वह उसे खींचने लगी। थोड़ी देर तक इस उपक्रम में लीन रहने के बाद जमीन पर चुक्के-मुक्के बैठ कर सबको टुकुर-टुकुर देखने लगी। "ऐ बिटिया जमीन पर मत बैठो। इधर खटिया पर आ जाओ।" बाबूजी ने कहा। पीढ़ा, खटिया और चटाई सरीखे बहुउद्देशीय निर्मितियों पर बैठने-लेटने और औंधे होने का काम खूब होता है।

"तुम्हें जितनी तनखाह मिलती होगी उससे ज्यादा कुटुम्ब के लोगों की उम्मीदें होगी कि उन्हें कुछ मदद मिले।" बड़े भाई का स्वर निरंतर विगलित होता जा रहा था। "मुझे मालूम है...आदमी की आमदनी आठ आने होती है तो लोग रुपए-डेढ़ रुपए की आस लगाकर बैठते हैं।"

भाभी ने प्लास्टिक के बदरंग प्लेट में नमकीन लाकर सामने लगा। प्लेट में तीन चम्मच पड़े थे। सुबह वाली बेरुखी छोड़कर उन्होंने नजदीक मोढ़े पर बैठकर उससे अनुरोध किया। "नमकीन लो। ये यहाँ की सबसे अच्छी दूकान से लाए हैं। ये माला सारा फेंक-फाँक देती है। इससे छिपाकर रखा था।" वह बोला। "शरारत नहीं करेगी तो कैसे मालूम होगा कि घर में कोई छोटा है।"

"तुम नहीं जानते हो।" भाभी ने कहा। "हफ्ते भर पहले इसके पापा कुल्फी लाए। खाते हुए इसने अपनी फ्रॉक गंदी कर दी। फिर जानते हो अगले दिन सुबह जागने पर मुझे हिलाकर क्या कह रही थी...। मम्मी मोनू मुझे सपने में दिखा था। कह रहा था कि

थोड़ी कुल्फी मेरे लिए भी बचाकर रखना। मैं भी खाऊँगाँ। इस पर माला पूछने लगी कि तुम्हारे आते-आते तो कुल्फी पिघल जाएगी। तब तक इसकी नींद खुल गयी।" कहते-कहते भाभी साड़ी के पल्लू से आँखों की कोर पोछने लगीं। चाय सस्वर सुड़कते हुए सबका बतियाना जारी रहा।

थोड़ी देर में चाय की तीनों प्यालियाँ समरसता में जूठी होकर नल के नीचे पड़ी थीं।

"दुनिया में हर आदमी के पास पैसा नहीं होता है लेकिन बाजार हर जगह लगा हुआ है।" बाबूजी के स्वर में दोनों बेटों के साथ बैठने की खुशी के साथ हल्की निराशा भी घुली थी। "पहले नून-तेल-लकड़ी का बाजार लगता था। आज हर इंसानी रिश्ते का बाजार सजा हुआ है। ....जड़ से जुड़े रहने पर धूप और पानी फलता है। डाल से टूटा एक पत्ता हो या जड़ से अलग मजबूत तना, देर सबेर जिंदगी देने वाली यही धूप और पानी उसे मिट्टी में मिला देती है।" अपनी सरीसृप समान पंक्तियाँ द्वारा वे सूखे पत्तों के ढ़ेर के बीच सरसराते हुए बढ़े जा रहे थे। वह उनकी बातें सुनते हुए भी कहीं और खोया हुआ था।

गमछा से मुँह पोछते हुए वे बिना संदर्भ के एक और वक्तव्यनुमा बात बोले। "शहर में लड़की पड़ोस तक भी जाती है तो बिना फेशवॉश से मुँह धोये और क्रीम लगाए नहीं निकलती। यहाँ लड़कियाँ हफ्ते में एकाध बार बाल सँवारती होगीं।" गतकालिकता के दोष से ग्रस्त इस कथन को उसने वृद्धजनों की सोच समझ कर झेला।

वह जमीन की ओर नजरें गड़ाए हुए था। इसी आँगन में दोनों भाइयों का छोटे-छोटे बालों वाला पहलवान कट बनवाने का पाक्षिक कार्यक्रम होता। दोनों जमकर विरोध करते कि वे अमुक फिल्म हीरो वाली स्टाइल की बाल रखेगें। लेकिन बाबूजी की त्यौरी के आगे उनकी एक न चलती। यहाँ जिंदगी कितनी आराम से चलती है। महानगर में बेतहाशा भागते इंसान के पास थक जाने के बावजूद विश्राम का समय नहीं होता है। हॉ रात में सोते हुए अर्धविराम जरूर ले लेता है। क्षण भर के लिए उसे लगा कि शहर में उसका वक्त जेल की कोठरी में एक युवा कैदी के यौवन की तरह व्यर्थ बीत रहा है।

बड़े भाई की कोठरी के दरवाजे पर लगा परदा अभी हटा हुआ था। उसने देखा कि दीवाल का प्लास्टर भुरभुरा कर झर रहा है। कमरे की पुताई बदरंग हो चुकी है। शायद बड़े भाई ने यह देख लिया था कि वह कोठरी का जायजा ले रहा है। "एक तरफ की छत धसक गयी है। पानी चूता है। सारा घर मरम्मत माँगता है। कोई क्या-क्या करे।" नन्ही माला इधर-उधर पड़े ईटों को उठाकर एक के ऊपर एक रख रही थी। "अरे क्या कर रही है?" उसकी माँ ने कहा। "हाथ-पैर पर गिर गया तो चोट लग जाएगी।"

"घर बना रही हूँ माँ।" वह लाड़ से बोली। उसके जी में आया कि उसके हाथों से लेकर खुद घरौंदा बनाने लगे। माला अचानक मुड़कर बिना किसी को संबोधित किए बोली। "सब लोग मिलकर बनाएगें तो हमारा यह घर क्यों नहीं पहले जैसा सुन्दर नहीं बनेगा। मेरे हाथ छोटे हैं पर दादाजी, पापा और मटरू चाचा के हाथ तो इतने बड़े-बड़े हैं।" लोग बस उसकी ओर ताकते रह गए।

"बाबूजी हम लोग मिलकर छत क्यों नहीं बनवा सकते हैं?" वह सहसा बोल उठा। बिना किसी पूर्वनिर्धारित योजना के कहा गया संवाद लोगों के कानों में पड़ने पर सहसा कोई प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न कर पाया।

"आज अच्छी हवा चल रही है। उमस घटी है। मच्छर-वच्छर नहीं दिख रहे हैं। अगर बारिश नहीं हुई तो छत पर बिछावन लगाऊँगा।" बाबूजी के चेहरे पर मगही पान खाने के बाद वाली चमक छायी हुई थी। शिव परिवार के चित्र वाला कैलेण्डर शाम की ठंड़ी हवा में जैसे उमंग से लहरा रहा था।

संपर्क : एफ-2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद,
उत्तर प्रदेश, **पिन :** 201010, **मो.** 8700066981

कतरे हुए पंख

-डॉ. कविता विकास

अख़बार की सुर्खियों में लीसा दास का नाम देखते ही बीरबाद गाँव के लोगों में ख़ुशी की लहर फैल गयी। मिस इंडिया के लिए निर्वाचित अंतिम दस की सूची में एक नाम लीसा का था। इतने बड़े देश के विभिन्न राज्यों से आए प्रतिनिधियों में लीसा ने अपने राज्य का नाम रोशन किया था। उससे भी बड़ी बात थी कि आदिवासी समाज के लिए ऐसी उपलब्धियाँ अद्भुत होती हैं। देखते - देखते स्थानीय स्तर पर अनेक पुरस्कार - सम्मान उसकी झोली में भरते गए। हालाँकि टॉप तीन में वह अपनी जगह नहीं बना पायी, लेकिन टॉप टेन में भी स्थान बनाना कम छोटी बात नहीं थी। लीसा का समय अब विभिन्न संस्थाओं से आ रहे लुभावने प्रस्तावों को देखने में बीत रहा था, कहीं से विज्ञापनों के लिए कहीं से ब्राण्ड अंबेसडर के लिए मॉडलिंग। यह भी निर्णय लेने का समय था कि उनके सुनहरे वादों पर यकीन करके आगे की ज़िंदगी चकाचौंध की दुनिया में बिता दे या फिर अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए नयी ऊँचाइयों को छुए। उपहार, अख़बार और मनभावन ऑफ़र्ज़ में दिन भर लीसा को व्यस्त देख कर, आइने के सामने मुस्कुराते हुए अक्सर इठलाती लीसा को देख कर अब उसकी माँ को भी डर लगने लगा था। बालिग लड़की थी, कुछ कहना भी ठीक नहीं था। लेकिन माँ का मन अक्सर अकेले में उदास हो जाता, सोचती,इससे तो बेहतर था अपनी पढ़ाई पूरी करके किसी नौकरी में लग जाती। वह ख़ुद भी ग्लैमर की दुनिया को देख चुकी थी।

गोरेट्टी दास अपने संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी बेटी थी। कोई भी काम नहीं था जो वह नहीं करती थी। उसकी चाची जब सोमवार हाट में चावल बेचने जाती तो वह उसके ज़िम्मे पड़ने वाले काम,मसलन भात और तरकारी बना कर रख देती।पिता के कपड़ों को तहिया देना, छोटे भाई - बहनों को ककहरा सिखलाना और हर वो काम कर देना जिसे करने में कोई भी आनाकानी करता। बकरियों को चराना, गुलेल से चिड़ियों को मारना और माटी के घर को लीपना, सब करती थी सत्रह साल की गोरेट्टी। एक दिन बकरियाँ चराते समय, बग़ल के मैदान में हॉकी खेलते हुए लड़कों की बॉल कुछ दूर उसके पास तक आ गयी। बकरियों को हाँकने वाले लकड़ी के मोटे डंडे से ही उसने कुछ इस तरह बॉल को मार कर उन तक ठेल दिया कि कोच सुंदर राय ने उसमें एक नयी प्रतिभा तलाश ली। उन्होंने उसे इशारे से मैदान में बुलाया और उसके माता - पिता की जानकारी ली । दूसरे दिन उसके घर जाकर गोरेट्टी को हॉकी प्रशिक्षण संस्थान में दाख़िला दिलवा देने का आग्रह किया। लड़कों के लिए बने इस संस्थान में केवल सात लड़कियाँ थीं। अब तो गोरेट्टी और व्यस्त हो गयी। कोच निरंतर उसकी दक्षता की सूचना उसके माता - पिता को देते,लेकिन इस बात से उन्हें कोई वास्ता नहीं था। पिछड़े वर्ग में आमदनी के स्त्रोत वाले काम ही काम माने जाते हैं। एक दिन अंतरराष्ट्रीय स्तर के खेलों के लिए डेढ़ साल के कैम्प का प्रस्ताव आया। गोरेट्टी की माँ ने सीधे - सीधे इसे मना कर दिया। सुंदर रॉय भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे। ताड़ी के साथ एक मुश्त तीस हज़ार की पेशकश को यह परिवार ठुकरा नहीं सका। अब तक गोरेट्टी उन्नीस साल की सुंदर लड़की हो चुकी थी। उसे दक्षिण के एक प्रशिक्षण शिविर में नए कोच के हवाले कर सुंदर रॉय ने अपना पीछा छुड़ा लिया।

बारमोड़ के प्रशिक्षण केंद्र और छात्रावास में गोरेट्टी की ख़ास दोस्त थी क्रिस्टीना। एक साथ खेलने जातीं, सोतीं और खातीं। अनेक मैचों में अपनी टीम के लिए साथ - साथ चुनाव होता रहा। एक साल की कठिन ट्रेनिंग के बाद बड़े पदाधिकारियों

के समक्ष चुनावी मैच खेला गया। गोरेट्टी का चुनाव यूरोपीय देशों के साथ के इंटरनेशनल टूर्नामेंट में हुआ। क्रिस्टीना का चुनाव नहीं हुआ था, सो गहरी उदासी थी उसमें। बाद में कॉमनवेल्थ गेम्ज़ में गोरेट्टी की कामयाबी की ख़बर विश्व भर में फैल गयी। उसकी बदौलत टीम को दो बार सफलता मिली थी। टूर्नामेंट के बाद वापस लौटने पर एयरपोर्ट पर उसका भव्य स्वागत हुआ। सम्मान आदि के साथ शहर में ज़मीन भी दी गयी। लोगों का प्यार देख कर उसकी माँ को बहुत फ़क्र हो रहा था उसपर। लेकिन यह तो शुरुआत थी। अनेक ऑफ़र्ज़ आ रहे थे। कई संस्थान अपने केंद्र से खेलने के प्रस्ताव दे रहे थे जिसके लिए वे मुँहमाँगी रक़म भी देने को तैयार थे। गोरेट्टी की माँ ने उसे पुनः दूर भेजने का विरोध तो किया लेकिन तब तक गोरेट्टी की देह में पंख लग चुके थे। अपनी उड़ान के रास्ते में वह किसी को बाधा बनते नहीं देखना चाहती थी।

बारमोड़ के उसी प्रशिक्षण केंद्र और छात्रावास में क्रिस्टीना उसका इंतज़ार कर रही थी। अब जो प्रशिक्षण होता, उसमें पहले की तरह उसकी भागीदारी नहीं होती। गोरेट्टी को लगता कि शायद अभी उसकी थकान को देखते हुए उसे ज़रा ढील दी जा रही है। शाम के समय तो उसे बिलकुल ही नहीं बुलाया जाता। वह ख़ुद भी स्वयं को स्टार समझ कर बीच - बीच में नए ट्रेनीज़ को टिप्स देने भर जाया करती। पहले वाले कोच भी अब नहीं थे। नए कोच सुदीप डी मेलो तेलंगाना के स्मार्ट युवक थे। खेल से ज़्यादा उनकी नज़र गोरेट्टी की ख़ूबसूरती पर थी। वह अक्सर देर रात की पार्टियों में उसे साथ ले कर जाते। गोरेट्टी उनके सान्निध्य को ही अपनी कामयाबी का सबब मानने लग गयी थी। जहाँ भी वह जाती उसके साथ सेलेब्रिटी-सा व्यवहार किया जाता। साथ की लड़कियाँ कहतीं कि उसे अब अभ्यास की ज़रूरत नहीं है, उसका तो टीम में स्थान पक्का है। ऐसे ही किसी नाज़ुक क्षणों में वह उन्हें अपना देह सौंप बैठी। डी मेलो सर ने उसका प्रशिक्षण केंद्र बदलवा दिया। अब वह जहाँ थी, वह एक छोटी-सी जगह थी, बारमोड़ से कई किलोमीटर दूर तीर्ग । व्यवस्था संतोषजनक नहीं थी। लेकिन डी मेलो यहीं रहते थे। अपने तबादले की सूचना उसने अपने माँ - बाप को दे दी थी। वैसे भी घर से संपर्क बना हुआ था। और, एक दिन उसे पता चला कि वह गर्भवती है। यह वही समय था जब आगामी नेशनल गेम्ज़ के लिए चुनावी मैच निरंतर खेले जा रहे थे। गोरेट्टी की स्थिति का पता चलते ही डीमेलो ने उससे दूरियाँ बनानी शुरू कर दी थी। धीरे - धीरे आना - जाना बिलकुल बंद हो गया। गोरेट्टी ने इस धोखाधड़ी की बात अपने सीनियर्स को सुनाई। लेकिन क़सूरवार उसे ही ठहराया गया। टीम का चुनाव हो चुका था। शरीर से अनफिट और खेल में भी अच्छा प्रदर्शन न करने के कारण इस बार उसकी जगह क्रिस्टीना को स्थान मिला था। जब वह बारमोड़ के प्रशिक्षण केंद्र में क्रिस्टीना से मिलने गयी तो उसे पता चला कि डी मेलो उसका मंगेतर था। क्रिस्टीना का टीम में प्रवेश का कारण उसे मिल चुका था। वह एक कतरे हुए पंख वाली चिड़िया थी।

अब कोर्ट - कचहरी के चक्कर लगने लगे,लेकिन गोरेट्टी के पास न तो साधन थे न ही कोई सफ़ाई। डी मेलो के पास पैसों की पकड़ थी। अपने साथ के छल के लिए वह ख़ुद भी ज़िम्मेदार थी। एक दिन जब वह गर्भपात करवाने हैदराबाद के दास क्लीनिक पहुँचती है तो डॉक्टर विश्वजीत दास को विश्वास नहीं हुआ कि दो साल पहले अख़बार की सूर्खियों में छायी रहने वाली स्टार खिलाड़ी गोरेट्टी दास की हालत ऐसी भी हो सकती है। डॉक्टर ने उसे धैर्य से सुना और समझाया भी। उन्हें पहले भी छोटे शहरों

की उच्च महत्त्वाकांक्षी लड़कियों की ऐसी स्थितियों से दो - चार होना पड़ा था,लेकिन गोरेट्टी से उन्हें विशेष हमदर्दी थी क्योंकि एक शीर्षस्थ खिलाड़ी का भविष्य अंधकार में डूबने जा रहा था। माँ - बाप उसकी इस दशा से वाकिफ़ नहीं थे। उन्हें लग रहा था किसी और कारण से उसका चयन इस बार नहीं हो पाया था। यह प्रसिद्धि के नशे में चूर एक सितारा का टूट जाना था। कई दिनों तक क्लीनिक में गोरेट्टी को आते - जाते देख, उसे समझाते हुए डॉक्टर ने उससे विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे दुःख की मारी गोरेट्टी ने स्वीकार कर लिया। कैरियर की उड़ान अधूरी ही रह गयी थी। राजनीति और ओछेपन की कथाएँ उसने खूब सुनी थी लेकिन वह भी इसका शिकार हो जाएगी, उसने सोचा नहीं था। माता - पिता को उसने जब अपनी आप बीती सुनाई, तो वे भी उसके पास आ गए और डी मेलो से मिलकर इस घटना पर बात की। उन्होंने क्रिस्टीना को जगह देने के लिए गोरेट्टी को मुहरा बना कर उसके कैरियर को समाप्त करने का दोष लगाया। लेकिन उससे कुछ होने वाला नहीं था। डी मेलो के साथ पूरा क्षेत्रीय हॉकी संघ था। सभी को ख़ुश करने के साधन थे उसके पास। जिन अख़बार ने उसकी कामयाबी के किस्से गाए थे, वही अब उसे छीछालेदर करने में आगे थे। डॉक्टर के साथ हैदराबाद में रहते हुए गोरेट्टी ने लीसा को जन्म दिया था। बेटी का पालन - पोषण करते हुए स्वयं को गुमनामी के चादर में लपेट लिया।

गोरेट्टी के सामने उसका पूरा जीवन फ्लैशबैक की तरह गुज़र गया। जैसे ही पछतावे का दो बूँद आँसू उसके गालों पर टपका, लीसा की आवाज़ सुनाई दी, "अरे मम्मा, तुम्हारी आँखों में पानी क्यों ? तो बताओ ये मेरी सफलता के आँसू हैं या मुझे मुंबई भेजने के विरह - आँसू?" गोरेट्टी की आँखों में भय की लहर फैल गयी। उसने सहज होने का प्रयत्न किया और कहा,' क्या तेरा जाना टल नहीं सकता? तुझे तराशने के लिए मैं हूँ न, आख़िर यह ख़िताब तुझे मेरी ही मेहनत से मिला है न? तूने इस कांटेस्ट के लिए कहीं ट्रेनिंग थोड़ी ही की थी।' "नहीं मम्मा, प्रोफेशनल टच मिलता तो शायद मैं टॉप टेन में न आकर, क्वीन ही बन गयी होती! मुंबई की बात ही निराली है। सितारों के बीच रहना बहुत कुछ सिखा देगा। फिर संदेश सर तो विज्ञापन कंपनी के मालिक हैं, उनसे भी लाभ पहुँचेगा।' विज्ञापन कंपनी, प्रतियोगिताएँ, आगे बढ़ने के दाँव - पेंच, शोषण, ब्लैकमेल इन सब के केंद्र में लीसा । गोरेट्टी के पास बहुत सारे तर्क और साक्ष्य थे, लेकिन लीसा के अरमान के आगे सब कमज़ोर थे। गोरेट्टी को अपने दिन याद आ गए। बाली उम्र का जोश उस बरसाती नदी की तरह होता है जो सभी बाधाओं से लड़ना जानती है। इस समय वह रुक नहीं सकती है। बस उसके लिए प्रार्थनाएँ हैं कि उसके वेग में धार हो ताकि ढलान के कीचड़ में शिथिल पड़ कर समुंदर से मिलने के पहले ही दम न तोड़ दे।

संपर्क - फ़्लैट नम्बर -टी/1801, **सेक्टर** - 121, होम्स - 121, नॉएडा,
पि. 201301, उत्तर प्रदेश, **मो.** 9431320288

एक तालाब हजार जाल.....

-रजनी शर्मा बस्तरिया

"मोंगरी" जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा कर तालाब से पानी भरकर वापस आ रही थी। तालाब से सीधी चढ़ाई, सिर पर गुडरी (कपड़े का घेरा) उस पर जरमन (ऐल्यूमिनियम) की नक्खी और इसमें भरे पानी की खदबदाहट से पानी का छलक जाना और गंज में रखी मछलियाँ की ऊबक-डुबक....।

गंज से छलका पानी देह पर रुक ही नही रहा था। फिसलती बूंदे मोंगरी की देह पर कुछ देर और ठहरना चाह रही हों। पानी और मछली की नीरमयी जुगलबंदी।

उसकी त्वचा थी ही मत्स्य कन्या सी चिकनी, देहगंध भी मछरिया सी।

अजीब सा फलसफा गंज में तैर रहा था।

गंज में पानी....

पानी से मछरी.....

कमर में गंज!

मछरियों की छपा-छप.....

पानी छलका टपा-टप .....

कमर लचका धका-धक .....

सबके एक ताल, एक लय, जिजीविषा की रस्सी पर करतब दिखाती नटनी जिंदगी। यही तो है बस्तर का 'राग-जिजीविषा' मछली जैसी ही तरल में रहना ही मोंगरी को भाता था। जरा सी तरलता कम हुई कि स्वाभिमानी मोंगरी की आंखें भीग जाती थीं। ठुड्डी पर मोरपंखिया गोदने के टप्पे दपदपा उठे।

कोंडागांव का वह' बरकई 'गांव। इस गांव के घर-घर में शिल्पियों का वास । यूं तो पूरा बस्तर ही प्रस्तर के अनोखे शिल्प से भरा पड़ा है, पर कोंडागांव की तो बात ही निराली है। बैलाडीला के लौह अयस्क यहाँ शिल्प का रूप ले कर बोल पड़ते हैं।

बरकई गांव में मनाये जाने वाले पर्व "बंधा मतऊर तिहार।"

आज 'मोंगरी' का मन हुलक रहा था। माटी के पर्व में ना जाना, ये तो हो ही नही सकता ना! बाबा कई दिनों से जाल बुन रहे थे। क्या पता जाल या फिर मोंगरी के भविष्य के सपने बुन रहे थे।

बाबा ने पूछा-होलीस तियार?

हव!

षोडशी मोंगरी की देह हुलकने लगी थी। बाबा ने कहा-

ढूढ़ी (संकरे मुंह की टोकनी) पकड़ो!

हव।

ग्राम पटेल ने घोषणा पूजा अर्चना के बाद पर्व की अनुमति मांगने के बाद मड़ई की मुनादी करवा दी थी।

केंवरी ने पूछा-

मोंगरी तियार होतीस काय?

(तैयार हो क्या?)

हव...

जो तेबे -!

(चलो तब!)

अनावृत कांधों पर जाल, गजब का तिलस्म! जीवित मछली सरीखी मोंगरी अपने ही कांधे पर स्वयं के फांसे जाने का साधन लिए हुए। तुड़बुड़ी बजने लगा। चालीस गांव के लोग जुटे थे। फरसा बहार, मेटगुड़ा पखांजूर, कोड़ेनार। न जाने कहां-कहां से लोग आये थे! ग्राम पटेल ने समय सीमा निर्धारित कर दी थी। मछड़ी पकड़ने का उत्सव मात्र एक घंटे में ही मनाया जायेगा !....

खदबद-खदबद एक के बाद एक सैकड़ों जाल एक साथ तालाब में उछाल दिए गये। मछलियों को भी मानों इसी दिन का इंतजार रहता है। आखिर वो भी बस्तर की माटी में अपने अस्तित्व की अक्षुणता का प्रतिदान खुद को जाल में सौंपकर देना चाह रही थी।

छपाक....

जाल भारी हो गया था, समेटा नहीं जा रहा था।

कितरो गरु?

(कितनी भारी)!

अचानक एक जोड़ी मांगुर मछली सी पुष्ट भुजाएं आगे बढ़ती दिखीं।

आले छांड लेकी!

(छोड़ लड़की)!

मोंगरी ने घूर कर उसे देखा!

अभी 'दर्प-दर्शन' का समय नही था। कहीं मछलियाँ जाल से छिटक ना जाएं। उस बलिष्ट भुजाओं वाले ने जाल समेट कर बाबा को दे दिया।

बाबा-कोन गांव चो आसीस लेका? (कौन गांव के हो?)

माड़पाल। माड़पाल के लोग पूरे बस्तर में अपनी स्वामिभक्ति के लिए जाने जाते रहे हैं। षोडशी मोंगरी के चेहरे पर स्मिति पसर गई। क्यूं कि बाबा के चेहरे पर उसे संतोष दिखा। अचानक उसने अपना मुँह स्थानीय लुंगी में छिपा लिया। ये चेहरा भी' नवजात भावों का ढिंढोरा' सारे जगत में पीट ही देता है। तालाब में हजारों पैर एक साथ, कीचड़ मक्खन सा हो गया। अहा, कितनी सौंधी-सौंधी खुशबू!

यहां चलना, वहां दौड़ना। मिट्टी से लिपटे मछलियों की उबक-डुबक, अजीब सा सम्मोहन, पैर कीचड़ में स्थिर हो ही नही पा रहे थे। जाल अरझी सी जा रही थी। मोंगरी खुद को संभाले कि जाल को।

आया गो...!

माँ रे...बड़ी सी मछली को देख कर वह खुशी से चीख पड़ी।लोगों का हुजूम, 'चिंगड़ी' चिल्लाई।

मोंगरी झट के धर!

(जल्दी पकड़!)

उधर माड़पाल गांव का समूह भी जाल डाल चुका था। समय सीमा तय थी, मात्र एक घंटा। अचानक गुत्थम गुत्था दो कायाओं से जाल लिपट गई। इसमें उलझे सिर्फ दो लोग, 'मोंगरी और दंड़ामी'। इनकी पूरी देह पर पंक, दोनों की देह हो चुकी थी पंकिया-पंकिया !

एक जाल में अल्हड़ उम्र, देहाती, लापरवाह, बस्तरिया सौंदर्य।

'दंडामी' की निश्छल भाव-भंगिमा, कर्मठ-काया, जाने विधाता कौन सा जाल फेंक रहा था? दंडामी और मोंगरी के बीच नेह के जाल का सृजन

सालद्वीप ने कर दिया था।

ग्राम पटेल की नजरें न जाने क्यूं सोन मछरिया सी मोंगरी पर अटकी जा रही थी। 'जाल में दंडामी के साथ मोंगरी'। यह देख कर उसके गले में मछली का कांटा सा कुछ अटक गया, फंस गया। उसकी आंखें उबलने लगी थीं। मोंगरी सकपका गई!

छाडून देस।

(छोड़ दे!)

दंडामी ने आश्चर्य से देखा।

मैं काय करली?

(मैंने क्या किया?)

कीचड़ से सनी सांसे... धौंकनी की तरह चल रही थी।

सोनारिन चीखी! आले धंगड़ी हो

(अरे लड़कियों) चलो! मोंगरी ने तालाब से निकलते ही जाल नीचे रखा। ढुढ़ी में मछलियां रखी।

'कीचड़ काया' लथपथ, कदम से कदम, पैर-जोरी कर रहे थे और देह से विलग पंक (कीचड़) के ढेले रास्ते में गिर रहे थे। पीछे -पीछे माड़पालिया समूह भी गीत गाता आ रहा था। चिंगड़ी ने कहा -

जल्दी चलो!

रास्ते में कीचड़ पैरों के निशां छोड़ती जा रही थी। पर कैशोर्य के चंपई उजास सी ''नेह -अंजोर'' मोंगरी और दंडामी के मन में छपने लगी थी।

अब अगले बरस फिर होगा' बंधा मतऊर तिहार'। उस गाँव का नाम माकड़ी (जलीय जीव) मछलियों की प्रचुरता के कारण ही शायद पड़ा होगा। मोंगरी की रात आंखों में कटी। देन का सुवास, कीचड़ में गुत्थम, गुत्थम हो जाना, बाबा को दंडामी का जाल पकड़ाना, मदद करना जान-पहचान न होने के बाद भी। जाने कितनी वजहें थीं रात भर करवट बदलने की।

वह वापस अपने गाँव तो आ गई थी, पर तालाब में जाने क्या छोड़ आई थी? तालाब में पानी भरकर उसने नक्खी अपने डेरी (बांये) घुटने पर रखा। हथेली सी गंज की तली का पानी पोंछ, सिर पर रखा ही था कि चिंगड़ी ने चुलह की।

काय गोठ आय रानी?

(क्या बात है सखी?)

काहीं नी आय!

(कुछ नही है!)

दंडामी लेका संगे जाल भीतरे, चिक्खल लोंडी।

(जाल के भीतर दंडामी के साथ गुत्थम-गुत्था)

तूके बाघ धरे।

(तुझे बाघ खा जाये!)

और तूझे

दंडामी खा जाये!

मोंगरी ने पानी चिंगड़ी के ऊपर उलीच दिया।

कुछ माह से ही फटफटी सवार अजनबियों की आवाजाही गाँव में हो रही थी। माकड़ी गांव में मछली भंडार का मिलना यह बात अब शहर तक पहुंच गई थी।

आज चिंगड़ी का कांडाबारा (लगिन) होना था। बाली -फूलो (सखी) चिंगड़ी का दूर जाना, सोच-सोच कर मोंगरी की आंखों में पानी भर आया।

'मेटगुड़ा का मुनुख है'।

जोड़ी सुन्दर है! मोंगरी को जिम्मेदारी मिली थी कि, वह लगिन के समय 'बोध मछरी 'लेकर आयेगी। भला बोध मछरी के बिना कांडाबारा (विवाह) हो सकता है क्या?

बोकरा-भात भी परोसा जायेगा। रोहू, कतला, मोंगरी सब मछलियाँ पकड़ी गईं, पर बोध मछली नही।

यह तो ईष्ट है, हाथों में सल्फी वृक्ष के पत्तों के साथ ही लगिन होगा।

मोंगरी ने ढुंढ़ी (टोकनी) को गंज के ऊपर खपल दिया। बरकी (साड़ी) निकाली और गांठ बांध कर कौंवे के पंखों को खोपे में खोंचा। हाथ में ककनी, गले में कौड़ी माला, पैर में पायड़ी। वह अपनी ककनी के छिलाव में खुद को देखने लगी। कभी उसे गोदने के टप्पे तो कभी नाक की लौंग ही दिखाई पड़ती थी। बस्तरिया सौंदर्य कभी ककनी के छिलाव में, समा सकती है क्या? वह तो विशाल चट्टानों, झरनों, निडर पगडंडियों, लचकती डालियों, गुमनाम गुफाओं, चंपई झुरमुटों, बोलते प्रस्तरों सी होती है।' बस्तर को भी इन्हें समेटने के लिये सालद्वीप बनना पड़ता है'।

चिंगड़ी का घर–पत्थर को मिट्टी की जुड़ाई से रची गई दीवार, गोबर से लीपी दीवारों पर भित्ती चित्र, आम की डालियों को अरझा कर बनाया गया मंडप। हल्दी की गांठों की माला' चिंगड़ी और सोमारू ने एक दूसरे को पहनाई। अब बारी थी कांडाबारा (विवाह) की।

मुख्य रस्म–जीवित बोध मछरी को मोंगरी ने चिंगड़ी की हथेलियों पर जैसे ही रखा, बोध मछली उछल पड़ी और पास खड़े सोमारू के दोस्त 'दंडामी' की गोद में जा गिरी। बस्तर की विशिष्ट आराध्य मछली को दंडामी ने फौरन लपक लिया और ससम्मान चिंगड़ी के 'बाली बदना' (सखी) मोंगरी को दे दिया, ताकि रसम पूरी हो सके। मोंगरी ने दंडामी को देखा।

दंडामी–वृषभस्कंधा, फड़कती भुजाएँ, पसलियों की छरहरी मछरियाँ, सिर पर पंख। मोंगरी ने आंखें झुका ली। लेकियों की टोली बिहाव गीत गा रही थीं।

'पाँव चो पायड़ी लेकी
कोन लेका दिल्लो?
कोन लेका दिल्लो?
माड़पाल जाऊन रेलो,
दंडामी लेका दिल्लो !

संदेश स्पस्ट था, दंडामी समझ चुका था।

काय तूके दिला?
(क्या दिया?)
बोध मछरी देऊन रेलो
दंडामी पारा जिल्लो...
(बोध मछली, दंडामी के मोहल्ले से मिली)

गीत के माध्यम से मोंगरी ने घोषणा कर दी थी कि, जो उसे सबसे बड़ी बोध मछली देगा। वह उसी से लगिन करेगी। पटेल को तो काटो तो खून नही। भरे समाज में आदिवासी कन्या की घोषणा, वह भी विवाह मंडप में, यह उसके लिए एक चुनौती थी। वह भी जान चुका था कि बलपूर्वक अधिकार से आदिवासी कन्या का वरण बस्तर में असंभव है। यही मूल्य बस्तर को आज तक सालद्वीप बनाये हुए हैं।

अगले दिन ही गाँव के सबसे पुराने तेतर रूख (ईमली पेड़) के नीचे आगामी बंधा - मतऊर तिहार की विधिवत की घोषणा होनी थी।सिरहा झूप रहा था। करिया कुकरी देऊके पड़ेंदे!

(काली मुर्गी चाहिए!)

पूरा गांव सांस रोके सुन रहा था, जाने सिरहा क्या घोषणा कर दे!

पटेल मंद (शराब) चढ़ा रहा था, कुटिल स्मित सिरहा के चेहरे पर नाचने लगी। मांगुर मछली की बलि चढ़ाई गई, उसके बाद सिरहा ने घोषणा कर दी।

छः कम एक कोड़ी। (छः कम बीस)
कितरो होली? (कितना हुआ)?
सोला (सोलह)।
इतरो बरिस नी होये दे!
(इतने बरिस नही हो सकता!)
क्या?

बंधा मतऊंर तिहार।

मुखिया समेत पूरा गांव सन्न....स्तब्ध

काय काजे?

(किसलिए)

बोध मछरी रिसाली!

(बोध मछली नाराज है।)

'चौदह बरिस आराम चाहिए'-माटी तिहार, चिक्खल लोंडी सभी पर्व तो तालाब से जुड़े हुए है, तालाब बिना कैसे तिहार होगा?

सिरहा झूप रहा था।

जो बले मछरी धरे दे नास होये दे। (जो भी मछली पकड़ेगा उसका सर्वनाश होगा।)

पूरा गांव रुआंसा हो गया। शहरिया लोगों ने सिरहा पटेल से मिलकर चुपचाप गुपचुप तरीके से तालाब के चौदह बरस की लीज पर अंगूठा लगवा लिया था। सिरहा कुकरी, बोकरी, मंद (शराब) नोट की गड्डी पाकर खुश!

दिन बीतते गये। पटेल का दबाव मोंगरी के बाबा पर बढ़ता ही चला गया।

मोंगरी चो बिहाव मोचो संग करुन देस।

(मोंगरी का ब्याह मेरे साथ कर दे।)

किवाड़ की आड़ से मोंगरी ने जब सुना तो सन्न रह गई,उसकी आँखें पानी से निकाले गये मछली सी उबल पड़ी।बाबा ने पूछा-काय होली?

(क्या हुआ?) भात कसन नी खालीस? (खाना क्यूं नही खाया?)

कुछ नही, रुंआसी मोंगरी क्या कहे?

उसने तो बाबा को नोटों की गड्डी छत के पटाव में छुपाते देख ही लिया था।

साल बीतते गये मोंगरी का प्रण नही टूटा, ना ही खुद टूटी। बाबा चुप...' पकी- पकाई' रकम ने उनका मुँह बंद कर रखा था।

दंडामी की स्मृतियां.... रोज आस बंधाती।चौदह बरस की तपस्या कहीं प्राण ही ना ले ले ! तेरह की मोंगरी अब तेईस की हो चली थी। वह ही क्या, पहाड़ों के भी दूध के दांत टूट चुके थे। अब उनकी मसें भी भीगने लगी थी, नवजात तरुओं पर भी मरकत हरापन छा चुका था। तालाबों की देह भी भरने लगी थी। साथ वाली सभी सहेलियों, बाली फूलो का कांडाबारा (विवाह) हो चुका था। पर ना जाने वह किसी की प्रतीक्षा में, किसके नाम का 'अजपा- जाप' करते हुए अभी तक प्रतीक्षा करती रही। अपने जीवन का सबसे बड़ा जुआ, सबसे बड़ा दांव वह लगाने जा रही थी। उस व्यक्ति के लिए, जिससे भेंट चौदह साल बाद ही ससम्मान, विधिपूर्वक होनी थी? अनगिनत प्रलोभन, अनगिनत ख्वाहिशें, उम्र का उफान इन सबको वश में करना इतना आसान तो नहीं होता ना?

उधर' दंडामी' जो कि नाम के उलट खुद दंड भोग रहा था, विछोह ने उसके चेहरे की मुस्कान छीन ली थी। अब बाहों की मछरियां किसके लिए फड़के, कौवे के पंख साफे में किसके लिए खोंचे, किसके लिए उसके होठों पर गीत, बांसुरी के छिद्रों से स्वर लहरियाँ बनकर निकले? सब कुछ फीका-फीका लगता था, मोहरी के बिना! पर एक धुंधली सी आशा जीवित थी कि, बरसों के बाद शायद उससे भेंट हो जाये और कहीं न कहीं मोंगरी के मन के किसी कोने में उसकी छवि लिए वह उसका इंतजार कर रही होगी?

दंडामी अपने गाँव लौट चुका था। जब बंधा-मताऊर तिहार होगा, तभी तो न्यौता मिलेगा, मोंगरी से भेंट हो पायेगी।

मुखिया ने घोषणा की। सिरहा बोला पाप कटली, (दोष हटा)। अब चौदह बरिस के बाद, इस बरिस मछली पकड़ने का तिहार होगा। इसके लिए चालीस गाँवों को न्यौता भेजा जा चुका था। सबकी अपनी मनौतियाँ थीं। एक से बढ़कर एक, जाल लेकर चालीस गांव के लोग आ जुटे थे। टुड़बुड़ी, हुल्की, पाटा, बाजा, मोहरी, मांदर, तुरही के वादन

पश्चात पूजा अर्चना हुई और समय सीमा की घोषणा की गई। चौदह बरस का इंतजार!!!

मोंगरी की आस बुझ सी गई थी। अचानक माड़पालिया दंडामी को आते देख...,बुझती आस जुगजुगाने लगी। पर यह क्या?

दंडामी के कदम पस्त, हौसले नर्म, कांधे पर जाल डाले वह तालाब की ओर थके कदमों से आगे बढ़ रहा था। अपना गाँव होता तो बतलाता, उसके पक्ष में पूरा माड़पाल ही आ जुटता। यहां तो वह निपट अकेला है क्या पता मोंगरी के मन में वही भाव उसके लिए हो भी कि नही?

इधर मोंगरी का मन भी ऊबक-डुबक... इतने बरस में क्या दंडामी पर नेह का दूसरा रंग नही चढ़ गया होगा?

दोनों की आँखें नम थीं।दंडामी सोचने लगा क्या पता बोध मछरी आज उसके जाल में फंसेगी भी की नही?

चौदह बरिस की तपस्या, विछोह से उपजी उदासी, डूबती आस, कानों में गूंजती मोंगरी की कसम, उसका प्रण। वह करे तो भी क्या करे?

तपस्या तो मोंगरी ने भी की थी। पटेल की लंपट नजरों से खुद को अक्षुण्ण रखना इतना आसान नहीं था ना। थके कदमों से रूआंसा दंडामी, अपने कदम खुद ही ढ़ो रहा था कि अचानक सामने मोंगरी तालाब पार खड़ी दिखी।

संवादहीन संप्रेषण इस पार से उस पार तक 'मोंगरी और दंडामी' के बीच हो चुका था।संदेश स्पष्ट था मोंगरी का "मरकर आना या मार कर आना'। उमड़ती भीड़ ने जयकारा लगाया। चिंगड़ी और उसके पति ने पस्त दंडामी की ओर देखा। इससे दंड़ामी के हौसलों ने जरा सी बढ़त ली। मोंगरी से नजर मिली और वह तालाब की ओर कूच कर गया।

कांधे के ऊपर के जाल को तीन बार गोल-गोल घुमाया। जैसे हवा में भविष्य लहरा रहा हो। उथल-पुथल, आशा-निराशा, जीत-हार, मन्नत, मनौतियों-चुनौतियों के धागे मानो जाल के रूप में हों। सब के सब एक साथ तालाब के भीतर। जाल कुछ भारी सा लगा, हजारों लोग, सैकड़ों जालें, चालीस गाँवों के लोग, भयानक खदबदाहट तालाब -मंथन।

जाने इस मंथन से दंडामी के लिए अमृत निकलेगा या फिर विष?

मोंगरी तालाब में छटपटाती मछरी सी लहरा उठी। मोंगरी आगे-आगे, पटेल उसके पीछे। तालाब में दंडामी..... बदहवास सा। कभी जाल के इस कोने को पकड़ता तो कभी उस कोने को। छलपूर्वक पटेल ने मुर्गा लड़ाई में प्रयुक्त किये जाने वाले नानी कड़री (छोटी चाकू) से जाल को जगह-जगह पर से काट दिया था। एक तरफ' छल तो दूसरी तरफ निश्छल' नेह के बीच अघोषित प्रतियोगिता! कीचड़, चिक्खल, पंक लेपित देह।

पटेल ने जैसे ही मोंगरी की कलाई पकड़ी वह मछरी सी छिटकी। जाल पटेल के सिर पर फंस चुका था। जिंदा चिंगड़ी मछली हलक में अरझने से उसका दम घुट गया था।

बंधा- मतऊर तिहार की समय सीमा समाप्त होने की घोषणा हुई।

दो लोग नही दिखे पर तालाब से निकल कर दूर जाते, एक जोड़ी पैरों के निशान 'पंक-पग' के अपनी छाप छोड़ गए थे। बस्तर के जंगलों में छप गये थे।

जाल में लिपटा, हलक में मछरी के अरझने से पटेल मृत हो चुका था।

कीचड़ आरक्त, पंकलेपित बोध मछरी, पंकिया देह यह सब दंडामी और मोंगरी' के हरिद्रालेपन की गवाह बनी। बंधा-मतऊर तिहार ने सालद्वीप को गवाही दे ही दी है।

संपर्क : 116, सोनिया कुंज, देशबंधु से सामने, रायपुर (छ.ग.) **मो.** 9301836811

अंतरात्मा की आवाज

-डा.पंकज साहा

'आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं?' छोटी लड़की के इस छोटे-से सवाल ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रकांड विद्वान को असहज कर दिया था। वे सोच में पड़ गये थे कि ये नाखून इतने बेहया क्यों होते हैं? काट देने के बाद भी निर्लज्ज की तरह बढ़ जाते हैं। वे विद्वान थे। उन्होंने इस प्रश्न का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया कि मनुष्य का विकास किस दिशा में हो रहा है —पशुत्व की ओर या मनुष्यत्व की ओर? सृष्टि के विकास के इतिहास को परखते हुए वे प्राणी-विज्ञान तक पहुँचे और उन्होंने पाया कि जैसे मानव-चित्त की हजारों अभ्यास-जन्य वृत्तियाँ होती हैं, वैसे ही मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास-जन्य वृत्तियाँ पायी जाती हैं। इनमें नाखूनों का बढ़ना भी एक वृत्ति है।

लेकिन मेरी धर्मपत्नी ने जब मुझसे पूछा कि अंतरात्मा की आवाज केवल विधायकों एवं सांसदों को ही क्यों सुनायी पड़ती है, तो मैं एकदम हड़बड़ा गया।

द्विवेदी जी ने लिखा है, 'अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है।' मेरा मानना है कि अल्पज्ञ पति को भी दयनीय जीव की श्रेणी में रखना चाहिए। मुझमें द्विवेदी जी जैसी न विद्वता है, न क्षमता। ये विधायक एवं सांसद जैसे जीव हाल में ही उत्पन्न हुए हैं। इनके उद्भव और विकास की खोज के लिए मुझे इतिहास की भी लंबी यात्रा नहीं करनी पड़ेगी। बावजूद इसके मैंने श्रीमती जी के प्रश्न का जवाब देने में खुद को असहाय पाया। तब एक समानता मैंने नाखून में और नेता में पायी कि दोनों निर्लज्ज होते हैं। काटने के कुछ दिनों के बाद जैसे नाखून फिर बढ़ जाते हैं, वैसे ये नेता लोग चुनाव जीतने के बाद गायब हो जाते हैं और चुनाव निकट आने पर निर्लज्ज होकर हाथ जोड़े, खीसें निपोरे पुनः प्रकट हो जाते हैं। कई मामलों में तो ये नाखूनों से भी ज्यादा निर्लज्ज होते हैं। जनता इन्हें जिस पार्टी का उम्मीदवार के रूप में चुनती है, आगे चलकर अंतरात्मा की आवाज पर, जनहित के नाम पर वे दूसरी पार्टी में चले जाते हैं। चुनाव आने पर फिर उसी जनता के पास पुराने अंदाज में खीसें निपोरे पहुँच जाते हैं। जनता बेचारी भी क्या करेगी? भारतीय संस्कार का मोह-पाश उनके अंदर अधिक विचलन पैदा नहीं करता। परंपरा-प्रेमी और यथास्थितिवादी होने के कारण वह अपनी आत्मा में पड़ी धूल की परतों को साफ नहीं करती। उधर नेतागण अपनी आत्मा को समय-समय पर फॉर्मेट कर अपडेट करते रहते हैं; अपनी अंतरात्मा को जगाकर लोकतंत्र को प्रासंगिक बनाये रखते हैं; दल बदलकर साबित करते रहते हैं कि लोकतंत्र जिंदा है। लेकिन मैं श्रीमती जी के इस कथन से सहमत नहीं हो सका कि अंतरात्मा की आवाज सिर्फ विधायकों या सांसदों को ही सुनायी पड़ती है। हमारे देश के कुछ बड़े व्यापारी भी बैंकों से भारी-भरकम ऋण लेकर अंतरात्मा की आवाज पर विदेशों में शरण लिये बैठे हैं। अभी तक उनकी अंतरात्मा ने देश लौटने का आदेश उन्हें नहीं दिया है। बहुत से अपराधी, देशद्रोही भी अपराध करके विदेशों में शान से रह रहे हैं। ऐसे लोगों की अंतरात्मा मरती नहीं, बल्कि अत्यंत सचेत रहती है और अपने आश्रयदाताओं को सावधान करती रहती है।

देश के अंदर बम ब्लास्ट करके निर्दोषों की जान भी लोग अंतरात्मा की आवाज पर लेते हैं। मिलावटखोरी, रिश्वतखोरी या किसी भी प्रकार की दुर्नीति, बलात्कार, भ्रष्टाचार, अनाचार, शोषण, दोहन करने में क्या अंतरात्मा की भूमिका शून्य होती है? मैंने एक ज्ञानी के समक्ष यह जिज्ञासा रखी। उन्होंने कहा, 'सभी प्राणियों में आत्मा का निवास होता है और सर्वत्र आत्मा एक है। इसीलिए कहा गया है —'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानो। परंतु सबसे चालाक प्राणी होने के कारण मनुष्यों ने अपनी आत्मा को अपनी चित्तवृत्ति के अनुरूप सेट कर लिया। देश-काल, वातावरण से आत्मा भी अछूती नहीं रहीं। नतीजा यह हुआ कि मनुष्य की आत्मा तो एक रही, परंतु उसकी आत्मा का चरित्र बदल गया। आज अधिकांश मनुष्य सांसारिक तृष्णाओं एवं आधुनिक सूचनाओं के अंतर्जाल में इस प्रकार उलझ गया है कि उसकी आत्मा से निकलने वाला अनहद नाद उसकी चित्तवृत्ति, स्वार्थ, लोभ आदि डिवाइस के कारण रिवर्स हो जाता है। जैसे गुर्दा रिवर्स ऑस्मोसिस प्रक्रिया द्वारा शुद्ध जल को अंदर और दूषित जल को बाहर निकाल देता है, वैसे ही अनेक लोगों की आत्मा से निकलने वाली अच्छी आवाज अंदर रह जाती है और जो दूषित आवाज बाहर निकलती है, उसी को वे अंतरात्मा की आवाज कह देते हैं।'

मेरे मुख से अकस्मात 'साधु-साधु' की ध्वनि निकल गयी और मैं अनायास ज्ञानी जी के चरणों में झुक गया।

संपर्क : झपाटापुर, ईगल हाउस के निकट, **खड़गपुर** - 721301 **(प. बंगाल) मो.** 9434894190

बंगला भाषा के कवि जय गोस्वामी की कविताओं का हिन्दी अनुवाद

—मंजु श्रीवास्तव

अधीन 1

मैं नीचे बंधा हुआ हूँ।
छोटे छोटे दड़बों में सामने जाली लगी है।
झिर्रियों से दिखाई देता है गाड़ी चली गई।
स्कूटर खड़ा है।
पायजामा, बरमूदा पहने पैर -
दूकान के सामने ही रुक गए हैं।

मेरा जाली वाला दड़बा है।
खट-खट की आवाज कानों में पड़ती है।
दो व्यक्ति लगातार मांस काटे जा रहे हैं।
आज बहुत भीड़ है।
बारी आने पर मुझे डोरी से लटका कर
बाहर ले जाया जाएगा।
ऐसी ही बिक्री और बाजार बना रहा तो
आज शाम को ही...

अधीन 2

मुर्गी का सिर काटने के बाद
सख्त हाथों से उसका गला
दबाए रखना चाहिए
जिससे खून न बहने पाए
चाहे जितना वह छटपटाए-
उससे मांस और भी सुस्वादु होता है।
जब छोटा था, मुहल्ले के एक भैया ने क्लब
के कमरे में भोज के समय यह बताया था।

हे अदृश्य भवितव्य
तुमने भी ठीक इसी तरह मेरा गला दबोच
रखा है।
मस्तक कट चुका है, मैं सिर्फ खून
बहने देने की स्वाधीनता चाहता हूँ,
वह भी मिल नहीं रही।

सपने में

सपने में तुम्हें घर छोड़ने थोड़ी दूर
तक जाता हूँ
सपने में मुहल्ले के नुक्कड़ पर आकर
खड़ा होता हूँ
कब लौटोगी सोचते हुए चारों तरफ देखता हूँ
तुम्हारी चोटी पकड़कर खींचता हूँ ।

सपने में विक्टोरिया में तुम्हारे पास खड़ा हूँ
सपने में टैक्सी में तुम्हारे बगल बैठा हूँ
सपने में तुम्हारे हाथ से लेकर भुनी
मूंगफली खाता हूँ
तुम्हारी ओढ़नी कंधे से फ़िसलकर
घास पर गंदी हो रही है

उठाने लगती हो, तो तुम्हारी कुहनी
मेरे हाथ से छू जाती है
और उठाते समय कंधा मेरे कंधे से।
खिसककर बैठूं? आकाशभरी छत में
बादलों से हटकर बैठा चांद।

कितने बजे हैं? उठ पड़ीं तुम।
सारी घड़ियाँ किसने बंद कर दीं?
गुस्सा करोगी? तुम्हारा हाथ छू लूँ जरा?
घर पहुंचाने के लिए छोड़ देता हूँ
तुम्हें थोड़ी दूर तक।

सपने में अगर तुम्हें कुछ दूर तक
घर छोड़ने जाऊँ,
तुम्हारे पति का इसमें क्या जाता है
सच कहता हूँ, विश्वास नहीं करोगी
सपने में भी मेरी आँखें गीली हो जाती हैं।

वर्षा जैसी आर्द्र बांग्ला भाषा

कौन हो बालिके, अचानक प्रणाम
करने आई हो
सिर पर मैंने हाथ नहीं रखा
तुमसे ज्यादा संकोच में, तुम्हें पीछे
छोड़ आगे बढ़ गया
मैली कुचैली चप्पल, गंदी काया,
पसीने की गंध
खचाखच भरे लोग सब देख रहे थे
फिर भी तुमने मेरे पैर छुए।

आज घर लौटकर भी मैंने स्नान नहीं
किया कि कहीं वह स्पर्श धुल-पुंछ न जाए।
तुम्हारी मुट्ठी में भरी पुष्करिणी के बदले
क्या दूं तुम्हें? मुझे तो सिर्फ दो चार
पन्ने लिखना भर आता है।

सर्वनाश के इस पार या उस पार
कुछ भी दिखता नहीं
लेकिन इस चकाचौंध रोशनी में
मुझे खड़ी दिखी वह स्वयं, वही कीर्तिनाशा
अपरिचित उस बालिका की आंखों
के जरिये उसने भेजी
दो एक पल के लिए वर्षा सी
आर्द्र बांग्ला भाषा।

सीधी बात

गोली लगते ही जब गिर पड़े कोई
पकड़ कर जब उठाने चले उसकी पत्नी
बंदूक ऊंची करके रखो
बोलो-' ना, उठाना नहीं- '
बोलो-' बोलता हूँ, चलो दूर रहो'
फिर भी न सुने तो
पति की मदद को बढ़े दोनों हाथों
पर सीधे गोली चला दो।
जो स्त्री बलात्कार में बाधा दे
उसकी योनि में सीधे लाठी का
एक सिरा घुसेड़ दो
यंत्रणा से छटपटाकर जब दया के लिए
रिरियाये, या फिर गरियाए
तो उसके सामने उसके शिशु की
दोनों टांगें पकड़कर दो तरफ खींचो
तब तक खींचते रहो जब तक चीर न दो।
इसी को कहते हैं सीधी बात,
ऐसे ही दिखाई जाती है ताकत।

पानी की तरह साफ

मैं तुम्हारे काबिल नहीं
किसी भी तरह तुम्हारे काबिल नहीं

दुनिया में किसी भी काम के लायक नहीं

तुम्हें यह संदेह था, पर सौजन्यतावश
कभी मुझसे कहा नहीं

आज कोई आया
उसने दो दिन - तीन दिन तुम्हें समझाया
तो पानी की तरह सब साफ हो गया

इसीलिए छोड़ गईं तुम, जाओ
पर यह न जान पाईं कि अब भी तुम्हारे लिए
कांप-उठता है यह जीवित शव।

संपर्क : फ्लैट न. सी.11.3, एन.बी.सी.सी. विबग्योर टॉवर्स, न्यू टाउन,
पिन. 700156 कोलकाता, मो. 9674986495

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयः एक अन्तर्यात्रा

-पूनम सिन्हा

11 जून, 2019 की रात को मैं, मेरे पति श्रीनारायण जी एवं फिजिक्स की प्रोफेसर संगीता सिन्हा लंदन के हिथ्रो हवाईअड्डा पहुँच गए। संगीता हवाई अड्डा से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शोधकार्य कर रही अपनी बेटी सपना के पास चली गई और हम दोनों पति-पत्नी हीथो से 28 माइल दूर रेडिंग नाम के शहर में स्थित हमारे मित्र के पुत्र विनीत भास्कर के आवास पर चले गए। ब्रिटेन में दूरी की माप को माइल कहते हैं। 17 जून की दोपहर तक का रेडिंग प्रवास अच्छा रहा। लेकिन इस स्मृति ने आहत किया कि हम डेढ़ सौ साल से अधिक अंग्रेजों की औपनिवेशिक दासता के अधीन थे। हुआ यह कि एक रात रेडिंग स्टेशन से आवास की ओर लौटते समय रास्ते में एक तरफ स्थापित बड़ी सी काली मूर्ति दिखी, जिसके नीचे अंग्रेजी में लिखा था, "यह एडवर्ड सप्तम की मूर्ति है। इन्होंने आयरलैंड आदि देशों के साथ-साथ इंडिया पर भी शासन किया।" पढ़कर बुरा लगा। अपनी लिप्सा और अत्याचार को भी कैसे महिमामंडित किया जाता है! सप्तम एडवर्ड 22 जनवरी 1901 से 6 मई 1910 तक मृत्युपर्यन्त भारत का शासक बना रहा।

17 जून को दिन में तीन बजे टैक्सी से मैं और मेरे पति श्रीनारायण जी रेडिंग से ऑक्सफोर्ड के लिए चल पड़े। मार्ग अत्यंत सुहावना था। दूर-दूर पर बसे छोटे-छोटे खूबसूरत गाँव। सड़क की दोनों ओर सघन वृक्ष। दोनों तरफ के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के ऊपरी हिस्से ऊँचाई पर एक-दूसरे में गुँथे हुए। ऐसा लगता था कि इस चौड़ी साफ-सुथरी सड़क पर वृक्षों की प्राकृतिक मेहराबें बनी हुई हैं। लंदन में प्राकृतिक संसाधनों की देख-रेख अत्यंत प्राथमिकता एवं सावधानी से की जाती है। यहाँ की जनसंख्या भी तो कम है। टैक्स यहाँ के लोगों को खूब देना पड़ता है, किन्तु टैक्स की राशि जनता की सुख-सुविधाओं में खर्च की जाती है।

हमलोग अभी सीधे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी जा रहे थे। संगीता इन दिनों अपनी बेटी सपना के साथ ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के लेडी मार्गरेट हॉल कॉलेज के छात्रावास के एक सुइट में रहती है। सपना वहाँ के छात्रों की डीन है। इसीलिए उसे रहने के लिए सुइट और दिन में एक वक्त का खाना निःशुल्क प्राप्त है। संगीता उसके साथ रुकी है तो उसे शुल्क देना पड़ता है। यहाँ स्नातक एवं स्नातकोत्तर की पढ़ाई विश्वविद्यालय में ही होती है। संगीता ने कहा था 'ऑक्सफोर्ड के लिए टैक्सी में बैठ जाने पर फोन कर दीजिएगा। आपको आने में पचास मिनट लगेंगे। मैं पचास मिनट के बाद लेडी मार्गरेट हॉल कॉलेज के गेट पर रहूँगी।' लेकिन रेडिंग से चलते वक्त हम उसे फोन करना भूल गये। रेडिंग में विनीत ने यहाँ का अपना सिम दे दिया था, जिसे वहाँ से चलते वक्त हमने उसे वापस कर दिया था, जिसके कारण हम उससे बात नहीं कर पा रहे थे। लेडी मार्गरेट हॉल कॉलेज के गेट पर टैक्सी ड्राइवर को हमने पैसे दे दिये थे तब भी वह हमें परेशान देखकर रुका हुआ था। वह ब्रिटिश था। वेश-भूषा से टैक्सी ड्राइवर नहीं, साहब लग रहा था। हम लाचार खड़े थे। संगीता का फोन भी हमारे पास पहुँचना संभव नहीं था। यहाँ का सिम हमारे मोबाइल से निकल चुका था। भारत वाला सिम यहाँ कारगर नहीं था। हमारी प्रतीक्षा करते-करते वह बाहर निकली। गेट पर उसे आते हुए देखकर हमें चैन आया। इसके बाद ड्राइवर भी चला गया। सपना के सुइट में आने के क्रम में संगीता हर गेट पर एक कार्ड सटाती थी तो गेट खुलता जाता था। चारों तरफ छात्रावास के कमरे थे। बीच में खुली जगह, जिसमें घास की तरह के पौधों में रंग-बिरंगें सुन्दर फूल खिले हुए थे। सपना का सुइट अच्छा था। एक शयनकक्ष अच्छे पलंग एवं बिस्तर के साथ। शयनकक्ष के सामने ही शौचालय एवं स्नानागार। एक बैठकखाना था, अच्छे सोफे एवं टेबुल वगैरह के साथ। बैठकखाना बड़ा था। उसी में रसोईघर एवं खाना खाने की जगह भी निर्धारित थी। संगीता ने बिजली के चूल्हा पर भात-दाल, आलू का चोखा बनाया। आज रात आठ बजे

ऑक्सफोर्ड से स्कॉटलैंड जाने वाली बस से मैं, संगीता और श्रीनारायण जी एडिनबरा के लिए चल देंगे। अकादमिक व्यस्तता के कारण सपना हमलोगों के साथ नहीं जाएगी। वह इन दिनों ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नैनो टैक्नोलॉजी पर शोधकार्य कर रही है। उसका शोधकार्य अब सम्पन्न होने के कगार पर है। अतः उसका ज्यादा समय लैब में ही बीतता है। साथ ही छात्र-डीन होने के कारण भी उसकी अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ हैं। वह हमें बता रही थी कि "डीन होने के कारण उसे छात्र की आकस्मिक समस्याओं से निपटने के लिए आधी रात को भी उठना पड़ता है। किसी छात्र की अचानक तबीयत खराब होने पर तत्काल उसके पास जाना होता है। कुछ दवाइयाँ भी अपने पास रखनी होती हैं। कभी-कभी छात्रों की अजीबोगरीब समस्याओं से भी निपटना होता है। एक रात तो एक छात्र छत पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा कि अब मैं छत से कूद जाऊँगा। छः महीने से मेरे डैड ने मुझसे बात नहीं की है।" मैंने सपना से पूछा "तुम युवा हो। सुन्दर हो। रात के समय किसी छात्र की आकस्मिक समस्या के समाधान के लिए जाते हुए तुम्हें भय नहीं होता?" "नहीं! अभी तक तो कोई बुरा अनुभव नहीं हुआ है। इस उत्तरदायित्व के कारण मैं बहुत कुछ सीख भी रही हूँ। फिर रहने के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के परिसर में इतना आरामदायक सूइट मिला हुआ है। एक समय का खाना भी निःशुल्क है।"

बहरहाल! संगीता हमें ऑक्सफोर्ड का परिसर घुमाने ले गयी। पूरे परिसर में हरियाली बहुत थी। एक जगह पतली-सी नदी बह रही थी, जिसमें छात्र-छात्राएँ स्वयं नाव चलाते हुए तफरीह कर रहे थे। उस नदी का पानी काला दिख रहा था। संगीता ने बताया कि नदी के पानी के नीचे की मिट्टी काली है इसी कारण पानी का रंग काला दिख रहा है। नदी के किनारे मोटे-मोटे दरख्त थे। अतः जमीन सीली हुई थी। नदी में बतखें तैर रही थीं। कुछ बतखें नदी से बाहर आकर किनारे की जमीन पर कुछ चुग रही थीं। लगता है मनुष्य से उनका तादात्मय हो चुका है। अपने निकट हमें आते देखकर भी आराम से चुगती रहीं। जब हम बिल्कुल उनके पास आ गये तो उनमें से कुछ धीरे-धीरे सरकते हुए नदी में चली गयीं; भयभीत होकर तेजी से नहीं। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का हरा-भरा परिसर सुन्दर लगा, साथ ही नैसर्गिक भी।

नोबल पुरस्कार विजेता पाकिस्तान की मलाला युसुफजइ यहीं पढ़ती है। उसके यहाँ रहने का कमरा देखा। अपने देश पाकिस्तान में मलाला को गोली मारी गयी, बच्चियों को पढ़ाने एवं उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने के कारण उसने एक रास्ता चुन लिया है जीने का, जो रास्ता कमजोर को आगे बढ़ाता है। नोबल पुरस्कार प्रदान कर उसकी निर्भयता को सम्मानित किया गया। पाकिस्तान की बेनजीर भुट्टो की पढ़ाई भी ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई थी। बेनजीर भुट्टो की पाकिस्तान में गोली मारकर हत्या की गयी थी, जब वे अपनी राजनीतिक उपलब्धि के शीर्ष पर यानी पाकिस्तान की प्रधानमंत्री थीं। वैश्विक राजनीति के इतिहास में दर्ज अनेक महत्त्वपूर्ण एवं मजबूत स्त्री राजनेताओं की शिक्षा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई है। भारत की इंदिरा गाँधी, पाकिस्तान की बेनजीर भुट्टो, ब्रिटेन की मार्गरेट थैचर, वर्मा की यांग सान सू (नोबल पुरस्कार विजेता) आदि ने यहाँ शिक्षा प्राप्त की। ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर 1940 में यहाँ स्नातक की छात्रा थीं। वे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय छात्रसंघ की पहली अध्यक्ष हुई थीं।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में लड़कियों का नामांकन 1878 इस्वी से प्रारंभ हुआ। पर उन्हें परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं थी। 1894 में परीक्षा में बैठने की अनुमति तो मिल गयी, किन्तु डिग्री नहीं दी जाती थी। 1920 में लड़कियों को डिग्री मिलनी शुरू हुई। यहाँ सेन्ट डिल्हास एकमात्र कॉलेज है, जहाँ सिर्फ लड़कियाँ ही पढ़ती हैं।

12वीं सदी तक इंगलैंड का अपना कोई विश्वविद्यालय नहीं था। उस समय पेरिस में विश्वविद्यालय था। इंगलैंड के छात्र पेरिस के विश्वविद्यालय में जाकर पढ़ते थे। 12वीं सदी में पेरिस के सम्राट हेनरी द्वितीय ने इंगलैंड के छात्रों को वहाँ पढ़ने से रोक दिया। अतः ऑक्सफोर्ड के राजा ने अपने यहाँ शैक्षिक गतिविधि शुरू कर दी। ऑक्सफोर्ड उस समय भी एक जीता-जागता शहर था। वहाँ राजाओं के महल, व्यावसायिक प्रतिष्ठान वगैरह थे। किन्तु ऑक्सफोर्ड में 12वीं सदी से 20वीं सदी तक यानी आठ सौ सालों तक धर्म की पढ़ाई होती रही। जब 12वीं सदी में ऑक्सफोर्ड में धर्म की पढ़ाई शुरू हुई तो स्थानीय लोगों एवं पादरियों में लड़ाई शुरू हुई। इस लड़ाई को 'गाउन वर्सेज टाउन'

कहा गया। यह लड़ाई 14वीं सदी तक चलती रही। वहाँ विद्वान और सामान्य लोग दो भागों में बँट गये। कुछ लोग पादरी के पक्ष में थे तो कुछ राजा के। स्थानीय जनता राजा के साथ थी। पादरी चाहते थे कि धर्म की पढ़ाई हो। 'गाउन वर्सेज टाउन' की लड़ाई में साठ लोग मारे गये। 20वीं सदी में विज्ञान एवं समाज विज्ञान आदि की पढ़ाई होने लगी। 1960 इस्वी तक किसी भी छात्र के कमरे में लड़की दिखाई पड़ती थी तो उस छात्र को निष्कासित कर दिया जाता था।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में तीस कॉलेज हैं जो समूचे ऑक्सफोर्ड में फैले हुए हैं। बीच-बीच में निजी आवास भी हैं। आस्कर वाइल्ड, शेक्सपीयर, शेली आदि ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के छात्र थे। शेली को उनके बुरे व्यवहार के कारण विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया था। शेक्सपीयर जब अपने गाँव (अब शहर) स्टेय्टफोर्ड से लंदन आते थे तो ऑक्सफोर्ड में रुकते थे। जिस कमरे में वे रुकते थे वह अब ऑक्सफोर्ड का दर्शनीय स्थल है।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का प्रेस भी दुनिया का नामी प्रेस है। यह 16वीं सदी में प्रारंभ हुआ था। पहले वह सिर्फ प्राचीन पांडुलिपियों को प्रकाशित करता था। 19वीं सदी में इसमें बाइबिल का प्रकाशन शुरू हुआ, जिससे यह प्रेस काफी प्रसिद्ध हुआ। अब तो यह ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी छापने के लिए प्रसिद्ध है। अभी भी यह हर साल तीस लाख बाइबिल छाप कर बाँटता है।

वहाँ एक क्राइस्ट चर्च कॉलेज है। दो सौ वर्षों में यहाँ के सोलह छात्र इंग्लैंड के प्रधानमंत्री बने। एक कॉलेज किसी राष्ट्र को सोलह प्रधानमंत्री दे, यह अपने आप में उल्लेखनीय है। क्राइस्ट चर्च कॉलेज के डीन की बेटी थी एलिस। लेविस कैरोल की अत्यंत लोकप्रिय किताब 'एलिस इन वंडरलैंड' की नायिका एलिस थी। ऑक्सफोर्ड से जुड़े बच्चों के साहित्य को प्रोत्साहित करने के लिए सन 2002 में 'एलिस इन वंडरलैंड' संस्था के द्वारा हैरीपॉटर का ऑक्सफोर्ड रेलवे स्टेशन पर स्वागत का आयोजन किया गया। इसमें ओरिएंट एक्सप्रेस ट्रेन से सौ लोगों ने यात्रा की, जिनमें हैरीपॉटर भी था। इस ट्रेन को 'फ्लाइंग स्काउट्स मेन' के द्वारा खींचा गया।

हम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में सेंट चर्च के गेस्ट हाउस में रुके थे। इसके समीप ही मैक्समूलर का घर था, जो अब बी.एड. कॉलेज बन चुका है। स्वामी विवेकानन्द यहाँ रुके थे और उन्होंने मैक्समूलर के यहाँ खाना भी खाया था। मैक्समूलर उनको ट्रेन तक छोड़ने ऑक्सफोर्ड रेलवे स्टेशन भी गये थे। उस जगह को देखते हुए, उनकी स्मृतियों से गुजरते हुए, अतीत में कुछ जो महत्त्वपूर्ण घटित हुआ उससे वाकिफ होते हुए विलक्षण अनुभूति हो रही थी।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के नाम से ही एक विशिष्ट शैक्षणिक संस्थान का बोध होता है। वहाँ के छात्र जीवन का अपना विशिष्ट अनुभव है। अतः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जाना, उसके परिसर में रुकना, वहाँ के छात्र जीवन को नजदीक से देखना-समझना हमारे लिए विरल अनुभव था। मैं चकित थी यह देखकर कि ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय परिसर और ऑक्सफोर्ड के सामान्य रहवासियों के आवासीय परिसरों के बीच कोई विभाजक दीवार नहीं थी। आबादी सघन नहीं विरल थी। चौड़ी विस्तृत सड़कें। सड़कों के किनारे दुकानें बिल्कुल नहीं। छात्रों के खाने के लिए कहीं-कहीं कुछ स्टॉलनुमा दुकानें थीं। कुल मिलाकर विशिष्ट एवं सादगीयुक्त वातावरण।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की यात्रा हमारे लिए अविस्मरणीय है। यात्राएँ मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रक्षालन करती हैं। यात्राओं के बिना जीवन अधूरा है। अज्ञेय ने अपने यात्रा-संस्मरण में लिखा है, "यायावर ने समझा है कि देवता भी जहाँ मंदिर में रुके कि शिला हो गये, और प्राण-संचार के लिए पहली शर्त है गति, गति, गति!"

संपर्क : लक्ष्मी नारायण नगर, गली नं-14, **पो.** रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम,
पो. मुजफ्फरपुर, बिहार-842002, **मो.** 9470444376

जलप्रपात जो मन तक भींगा देता है

-अंजना वर्मा

अपने अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्वविख्यात नायाग्रा फॉल्स दुनिया के शीर्ष दर्शनीय-स्थलों में से एक है , जिसे देखने के लिए लाखों पर्यटक प्रतिवर्ष अमेरिका या कनाडा जाते हैं और आनंद का अनोखा अनुभव अपनी यादों में संजोकर ले जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के मध्य स्थित यह जलप्रपात अमेरिका के न्यूयॉर्क राज्य में बफलो के समीप है , तो कनाडा में यह ओंटेरियो राज्य में पड़ता है।

नायाग्रा फॉल्स जितना मोहक अमेरिका की ओर से दिखता है, उससे कहीं अधिक मोहक और विस्तृत कनाडा की ओर से दिखाई देता है। इसलिए यदि पर्यटक सिर्फ इस झरने को देखने का प्लान बनाते हैं तो कनाडा ही जाना पसंद करते हैं। परंतु अमेरिका में भी इसका सौन्दर्य अप्रतिम है। नायाग्रा जलप्रपात की तीन धाराएँ हैं, जिनमें अमेरिकन फॉल्स तथा ब्रइडल वेल फॉल्स - ये दो फॉल्स अमेरिका के हिस्से में आते हैं और हार्सशू फॉल्स नामक एक चौड़ा जलप्रपात कनाडा में पड़ता है।

बार-बार अमेरिका जाते रहने और वहाँ के अनेक महत्वपूर्ण पर्यटक-स्थलों को देखने और घूमने के बाद भी न जाने क्यों मेरे लिए नायाग्रा फॉल्स देखने का सुयोग नहीं बन पाया था। इधर तो कोविड को लेकर भी यात्राओं, खासकर विदेश -यात्राओं पर पाबंदी लगी रही। लेकिन इस साल मेरी बेटी शेफालिका और जामाता आशीष कुमार मुझे बुलाने से पूर्व ही मुझे नायाग्रा फाल्स घुमाने का प्लान बना चुके थे। जून से अगस्त तक के महीने इस जलप्रपात को देखने के लिए आदर्श माने जाते हैं; क्योंकि इस समय मौसम अनुकूल रहता है। इसे देखने का हमारा दो दिवसीय ट्रिप भी जून के अंतिम सप्ताह में रखा गया था - शनिवार और रविवार के लिए।

हम सभी ने वहाँ दो दिनों तक घूमने और ठहरने के लिए सारी पैकिंग रात को ही कर ली, जिससे सवेरे निकल सकें। उन दिनों वहाँ सुबह साढ़े पाँच बजे ही हो जाती थी। पर हम सुबह सात बजे ब्रिजवाटर से नायाग्रा फॉल्स के लिए बी एम डब्ल्यू से निकले। मैं अपनी बेटी शेफालिका कुमार, जामाता आशीष कुमार और दो नवासे – ईशान वर्मा एवं वेदांग वर्मा के साथ थी। हमारे जामाता ड्राइव कर रहे थे। गाड़ी पूरी रफ्तार में सड़क पर फिसल रही थी।

वह धूपवाला खुला हुआ दिन था। ब्रिजवाटर से नायाग्रा फॉल्स का रास्ता बहुत हरा-भरा है। शुरू में तो छोटी पहाड़ियों को काटकर बनाई गई चिकनी और चौड़ी सड़कें मिलीं, जिनके अगल-बगल हरे, सघन पेड़ और झाड़ियाँ थीं। दोबगली हरियाली से गुजरते हुए कहीं-कहीं कूदते हुए हिरन का पोस्टर दिखाई पड़ जाता, जिसका मतलब था कि इस इलाके में हिरन हैं और सड़क पर गाड़ियों के सामने आ जा सकते हैं। अतः वाहन चालक सावधान रहें। वैसे ब्रिजवाटर में तो घरों के आस-पास, अगल-बगल भी हिरन चले आते हैं और बड़े अधिकार के साथ, इत्मीनान से फूल-पत्तियाँ चरकर चले जाते हैं; क्योंकि इनको पता है कि इन्हें कोई किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचा सकता। इस देश में जीव-जंतुओं को किसी तरह की क्षति पहुँचाना कानूनी तौर पर अपराध है, जिसके कारण मजबूरन कितने लोगों ने अपनी बागवानी के शौक का गला ही घोंट दिया है, तो कितने लोग पौधों पर डियर स्प्रे डालकर उन्हें हड़काए रखते हैं।

रास्ते में दूर तक फैले हुए समतल मैदान भी दिखाई दिए तो कहीं ऊँचाइयों या ढलानों पर हरी घास का विस्तार आँखों में हरी ठंडक भर देता था। ब्रिजवाटर से नायाग्रा फॉल्स की छः से साढ़े छः घंटे की ड्राइव है। ड्राइव करते हुए कुछ घंटे हुए तो आशीष ने कोर्टलैंड में काफी और स्नैक्स के लिए एक रेस्ट स्टाप पर कार रोकी। इससे उनको थोड़ा आराम मिल गया और हम सब भी तरोताज़ा हो उठे। वहाँ से फिर आशीष ने स्टीयरिंग सँभाली तो दिन के करीब डेढ़ बजे हम नायाग्रा फाल्स के सीमावर्ती

इलाके में पहुँचे। इस सिटी के समीप आते ही सड़क पर कारों का जाम शुरू हो गया, जैसाकि विदेशों में बड़े शहरों के समीप आने पर होता है। आगे बढ़ने पर हम नायाग्रा नदी पर बने पुल से गुजरे, जिसके नीचे मैंने कोतूहल भरी आँखों से पुल के नीचे नीली-हरी नायाग्रा नदी को बहते हुए देखा।

जब तक आशीष कार पार्क करते, तब तक हम टिकट लेने के लिए नायाग्रा फॉल्स स्टेट पार्क आए, जहाँ पर्यटक टिकट के लिए लंबी कतार में खड़े थे। गर्मी भी थी। यद्यपि वहाँ हरियाली और पेड़-पौधों की कमी न थी। फिर भी क्यू तो क्यू ही होती है और कतार में तो लगना पड़ेगा ही। यह सोचकर हम क्यू में लगने के लिए आगे बढ़े तो नवासे ईशान ने सबको धूप और गर्मी से बचाने के लिए छाया में बैठने के लिए कहा और स्वयं टिकट लेने के लिए चला गया। हम उसी पार्क में पेड़ों के नीचे बने बेंच पर बैठकर ईशान के टिकट लेकर लौटने का इंतज़ार करने लगे। वहाँ एक-दो पर्यटक व्हील चेयर पर भी थे, जिन्हें उनके बच्चे घुमाने ले आए थे और यहाँ छाया में उनकी व्हील चेयर लगाकर टिकट लाने गये थे। यह एक अच्छी बात है कि ऐसे लोगों के लिए यहाँ फॉल्स तक घुमाने के लिए विशेष इंतज़ाम रहता है। अमेरिका में पर्यटक-स्थलों पर लोग अपने वृद्ध या दिव्यांग माता-पिता अथवा आत्मीय जन को व्हील चेयर पर घुमाते दिखाई पड़ जाते हैं, जो बहुत सामान्य-सा दृश्य है।

ईशान को टिकट मिलने में बहुत देर नहीं लगी। उसे टिकट लेकर आते देखा हमें बड़ी खुशी हुई कि अधिक देर तक बच्चे को धूप नहीं झेलनी पड़ी। उसके बाद हम फिर दूसरी क्यू में लग गए, जो फॉल्स तक ले जाने वाली बोट 'मेड आफ द मिस्ट' की क्यू थी। 'मेड ऑफ द मिस्ट' बोट अप्रैल से अक्टूबर तक पर्यटकों को जलप्रपात दिखाने के लिए चलती है। फाल्स देखने के लिए डेक पर जाकर एलिवेटर से नीचे धरातल तक उतरना था, जहाँ बोट पर्यटकों की प्रतीक्षा कर रही थी। बोट से ही जाकर गिरते हुए जलप्रपात को अच्छी तरह समीप से देखा जा सकता था। अब तक आशीष भी आकर कतार में हमारे पीछे खड़े हो गए थे। अभी क्यू में हम जैसे-तैसे एक-एक कदम करके सरक रहे थे; क्योंकि चेहरे पर सीधे धूप पड़ने के कारण हम सभी बेचैन थे और सूरज था कि अपनी पूरी शान में चमक रहा था। कहाँ हम सोचकर आए थे कि मौसम खुशगवार होगा, पर यहाँ तो उल्टा ही नज़ारा था। ऐसे नायाग्रा फॉल्स में अक्सर ठंड हो जाती है और फॉल्स के पास पहुँचकर ठंडी हवाओं का भी सामना करना पड़ता है। यही सोचकर लोग स्वेटर-जैकेट वगैरह साथ में ले लेते हैं। बिटिया ने मेरे लिए भी एक पतला जैकेट रख लिया था। पर साफ लग रहा था कि उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

लेकिन हमारे आश्चर्य और खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि कुछ और आगे बढ़ने पर नायाग्रा जलप्रपात से उठने वाली हवा के भींगे झोंके हमारे मुँह पर पड़ने लगे और तापमान कम हो गया। हवा में घुली नमी से चेहरा भींगता जा रहा था, जिसका कारण था कि हम जहाँ खड़े थे वहाँ डेक से नीचे नायाग्रा फाल्स था। उसमें इतना वेग था कि उससे छिटकती जल-बूंदों के महीन अंश धुंध की तरह आसमान में फैले हुए थे–अपने पीछे के दृश्यों को पूरी तरह ढँके हुए! लगता था जैसे कोहरा फैला हुआ है। आकाश के कैनवस पर तस्वीर की तरह जो ऊँची-ऊँची इमारतें दिख रही थीं, वे नमी की उजली धुंध से इस तरह ढँक गई थीं, मानो बादलों से ढँकी हों।

नायाग्रा को देखने जाने के लिए हमें एलिवेटर से एक सौ पच्चीस फीट नीचे धरातल पर उतरना पड़ा, जहाँ सभी पर्यटकों को नीला वाटरप्रूफ पोंचो पहनने के लिए दिया गया। इसके लिए अलग से कोई शुल्क नहीं लिया जाता। उसे पहनकर हम बोट पर सवार हुए तो दोनों बच्चे बड़े खुश थे। ईशान और वेदांग पूरे उमंग में यह कहते हुए बोट की ऊपरी मंजिल पर चले गए कि उन्हें पानी में भींगना है। सच, भींगने में जो आनंद है, वह भींगने वाला ही जानता है। हम भी बचपन में वर्षा में नहाकर इसका अनुभव कर चुके थे।

सभी पर्यटकों को लेकर बोट चल पड़ी। चलती हुई बोट से मैंने देखा कि पास में पानी की सतह पर उजले जलपक्षी किल्लोल करते हुए जल-क्रीड़ा में मग्न थे। कुछ तैर रहे थे तो कुछ पानी में चोंच मारकर आकाश में उड़े जा रहे थे। इन पंछियों की दुनिया इन्हीं झरनों के आसपास थी। हमारी बोट को बारी-बारी से तीनों फॉल्स के पास जाना था और वह घूमती हुई जलप्रपातों के समीप चलती जा रही थी।

मज़ा तो तब आया जब पहली जलधार के नजदीक जाते ही चेहरे पर गिरते हुए झरने की फुहार पड़ने लगी। बरसात जैसे हल्के छींटे पड़ने लगे, जिससे बोट पर सवार सभी पर्यटक भींग गये और भीगी ठंडी हवा चलने लगी। नायाग्रा इतनी ऊँचाई से गिर रहा था मानो पानी का पर्वत हो। पहाड़ों की तरह ऊँचे दिखते फाल्स से गिरते हुए पानी को देखकर मैं विस्मित थी!

बोट जैसे-जैसे जलप्रपातों के करीब पहुँचती गयी, पानी के छींटे बढ़ते गए। उसके बाद तो जैसे वर्षा ही होने लगी। ऊपर से वर्षा और सामने जल-पर्वत ! आँखों के आगे अजीब मंजर था। निश्चित रूप से जो पहली बार इस दृश्य को देख रहे होंगे वे थोड़ा घबरा भी रहे होंगे। लेकिन बोट बेखौफ आगे बढ़ी जा रही थी। अंतिम प्रपात महाजलप्रपात था यानी हार्सशू फाल्स जो देखने में ही पहाड़ की तरह विशाल और ऊँचा था। पर बोट उसी के करीब बड़ी सरलता से बढ़ती चली गई - बिना डगमगाए। वहाँ पहुँचते ही हमारी जल-यात्रा का चरम-बिंदु आ गया। आँखों के समक्ष विराट दृश्य था। सामने पर्वताकार उजले फेन और लहरों से भरा हुआ नीला जलस्रोत प्रचंड वेग से गिर रहा था और गिरते हुए जल का गंभीर नाद हवाओं में गूँज रहा था। घनघोर बारिश में पूरी बोट और सारे पर्यटक भींग रहे थे। रोमांच..विस्मय और आनंद का यह अभूतपूर्व, अद्भुत अनुभव था मेरे लिए! हर्षातिरेक में सभी पर्यटक हँसते हुए ऊ...आ...हू..हा...बोलते हुए चिल्लाने लगे।

मेरे सामने जो प्रकृति का सम्मोहक रूप था, उसके लिए कोई शब्द या वाक्य जुटा पाना कठिन था। वह गूंगे का गुड़ था। प्रकृति कितनी रहस्यमयी है –यह इस क्षण महसूस हो रहा था। मनुष्य जानता ही क्या है ? आदिकाल से वह इसे जानने का प्रयत्न कर रहा है, तो भी इसका एक पन्ना तक नहीं पढ़ पाया है। यह गिरता हुआ जल जितना आँखों को सुख देने वाला था,उतना ही मन को भी आप्लावित करने वाला। प्रकृति माँ का ऐसा विराट रूप! पन्ने जैसे हरे जल की दुर्बंध धाराओं का आघात झेलती धरती! सौन्दर्य और शक्ति, आनंद और भय, जीवन और मृत्यु का अद्भुत मिलन! क्षण-भर में मेरे मन में यह ख्याल आया कि जब लौकिक जलप्रपात इतना प्रबल और विस्मयकारी हो सकता है, तब शिव के जटाजूट पर जब अलौकिक देवनदी गंगा की धार गिरी होगी तो क्या दृश्य रहा होगा? कैसे सँभाला होगा शंकर ने स्वैर गंगा के प्रचंड वेग को अपनी जटा में ? लेकिन व्योमकेश, चंद्रचूड़ के लिए तो गंगा को सँभालना उनकी सहज मुस्कान के बराबर ही रहा होगा!

हमारी बोट हॉर्सशू फॉल्स के बिल्कुल करीब जाकर सबको एक रोमांचकारी अनुभव से गुजारकर लौट आई। बोट से बाहर निकलते हुए ईशान ने अमेरिकन एक्सेंट में मुझसे पूछा, 'नानी आपको खूब मज़े आए?'

वेदांग ने भी पूछा, 'डिड यू एन्जॉय नानी?'

'बहुत-बहुत...बेटा!' मैंने कहा।

हमें फिर एलिवेटर से ऊपर आना पड़ा। 'मेड ऑफ द मिस्ट' की यह बीस मिनट की जल-यात्रा हमारे लिए यादगार बन गई। शेफालिका ने बताया कि यह उनलोगों की नायाग्रा फाल्स की पाँचवीं ट्रिप थी, लेकिन इस बार भी उसे लग रहा था कि सब कुछ नया-नया है। यही है सच्चे सौंदर्य की संवेदना कि उसे बार-बार देखने के बाद भी देखते रहने का जी करे। मन न भरे। जितनी बार भी देखा जाए, हर बार वह अनदेखा और नवीन ही लगे।

ऊपर आने के बाद हम पार्क के उस छोर पर पहुँचे, जहाँ थोड़ी चट्टानी चढ़ाई थी, जिस पर चढ़कर पर्यटक इस झरते हुए प्रपात का दृश्य ऊपर से देखते हैं। यहाँ भी ऊपर जाने और उतरने वालों का रेला लगा हुआ था। हम थोड़ा ही ऊपर गए तो वहाँ से दिखाई दिया नायाग्रा नदी का हरा-हरा शांत जल! यहाँ से एक ही साथ फॉल्स की तीन धाराएँ स्पष्ट रूप से गिरती हुई दिखाई दे रही थीं और अगले ट्रिप के लिए अनेक बोटों में सवार होते सैकड़ों पर्यटक भी दिखाई दे रहे थे। हम फिर एलिवेटर से ऊपर आकर नायाग्रा स्टेट पार्क में लौट आए।

अब तक हमारे पोंचो प्रपात की वर्षा से पूरी तरह से धुल गए थे और हमारे कपड़े भी आधे-अधूरे भींग चुके थे। हम थक भी गये थे। अब सबको दाना-पानी चाहिए था, जिसके लिए आशीष हमें भारतीय रेस्तरां में ले गये, जिसमें हर प्रकार का सामिष और निरामिष भारतीय भोजन मिलता है। नायाग्रा फॉल्स आने वाले पर्यटकों में भारतीय बड़ी संख्या में होते हैं। इसीलिए यहाँ शानदार भारतीय रेस्तरां भी हैं,

जिनमें शाकाहारी व्यक्ति भी आराम से भोजन कर सकता है। ये रेस्तरां रंग-रूप से पाश्चात्य शैली के दिखते हैं, परंतु इनकी आत्मा भारतीय होती है। आधुनिक पोशाकों में सजे शाकाहारी, सनातनी, जैनी, वीगन या ग्लूटनफ्रीभोजी पर्यटक यहाँ अपनी पसंद का शुद्ध भारतीय भोजन पा सकते हैं; क्योंकि होटल के मालिक भी भारतीय ही हैं जो यहाँ विदेश में आये शाकाहारी लोगों की भोजन से जुड़ी कठिनाइयों को बखूबी समझ पाते हैं। जब हम वहाँ पहुँचे तो होटल के द्वार पर खड़े रिसेप्शनिस्ट ने कहा, 'लगता है आप सब काफी थक गए हैं, आइए।' परदेस में एक अपरिचित के मुँह से अपनी भाषा सुनना बहुत सुखद था। तभी महसूस हुआ कि अपनी भाषा अनायास ही कितनी आत्मीयता से बाँध लेती है।

दूसरे दिन हल्की बारिश हो रही थी। लेकिन हमें आज भी घूमने जाना था कि कल जहाँ-जहाँ हम नहीं जा सके थे, वहाँ घूम लें। हम गोट आइलैंड गये। हॉर्सशू फॉल्स तथा ब्रइडल वेल फॉल्स के बीच में जो खाली इलाका है वह गोट आइलैंड कहलाता है। यह भी देखने और सैर करने की जगह है। यहाँ से नायाग्रा फॉल्स का एक अलग ही दृश्य दिखाई देता है। इस पार्क में विविध रंग बिखेरते फूल, कटे-सँवरे हरे झाड़, हरे मखमल-सी फैली घास और ऊँचे-ऊँचे दरख़्त बेहतरीन बागवानी की मिसाल थे। वहाँ से तीनों फॉल्स विस्तृत रूप से नायाग्रा नदी में गिरते हुए दिखाई दे रहे थे, जिनके प्रचंड वेग से गिरने के कारण नीली नायाग्रा नदी से प्रतिक्रियास्वरूप उठती दूध-सी सफेद झाग की जल-बूँदें आकाश में फैलकर सम्मोहन-जाल बिछा रही थीं।

रेलिंग के किनारे खड़े होकर पूरे दृश्य को देर तक निहारने के बावजूद मन नहीं भर रहा था।यहाँ लोग जिस रेलिंग से सटे खड़े जलप्रपात को निहार रहे थे, वहाँ से नायाग्रा के जल की सतह मात्र दस-पंद्रह फीट नीचे होगी ! कितना करीब था हरा जल! गोट आइलैंड के विषय में कहा जाता है कि इस स्थान पर कोई गड़ेरिया अपनी बकरियों को भेड़ियों से बचाने के लिए लेकर आया था। इसीलिए इसका नाम गोट आइलैंड पड़ा।

यहाँ भी एक खुली हुई जगह थी , जहाँ से हम देख सकते थे कि कल हमारी बोट कहाँ से चली थी? वह स्थान ऊपर से साफ दिखाई दे रहा था और हमें पता चला कि कल जो बोट हमें लेकर गयी थी, उसका जल-पथ कहाँ से कहाँ तक था? घूमते हुए जब बारिश तेज हो गई और हम भींगने लगे तो कल वाला नीला पोंचो खूब काम आया। रकसैक से निकाल कर सबने वही पहन लिया। काफी घूमने के बाद हम सबने गोट आइलैंड पार्क के एक रेस्तरां में जाकर काफी और स्नैक्स लिया और फिर टिकट लेकर बस में सवार हुए जो पर्यटकों को पूरा पार्क घुमा देती है।

नायाग्रा फाल्स में जलप्रपात देखने के अतिरिक्त भी मनोरंजन के लिए कई जगहें,पार्क और विविध साधन हैं, पर हमें आज लौट जाना था। हम तो अपने होटेल से चेक आउट करके ही निकले थे। अतः अब यहाँ से ढेर-सारे सुखद अनुभव लेकर हम कार में बैठे और निकल चले। हमारा रास्ता रेनबो ब्रिज से होकर था, जो इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि यह अमेरिका एवं कनाडा के नायाग्रा फॉल्स के बीच की सीमा पर स्थित है। इसी रेनबो ब्रिज के पास एक रेस्तरां से शेफालिका और ईशान मोमोज़ पैक करवाकर ले आए। उसके बाद आशीष ने ब्रिजवाटर की सड़क पकड़ ली।

लौटते हुए रास्ते में झिम-झिम वर्षा होती रही। कल जो पहाड़ियाँ सूखी थीं , आज उन्हीं पर बादल फैले हुए थे । कहीं -कहीं तो उजली भाप की तरह फैले मेघों ने अपने भीतर पहाड़ियों को पूरी तरह से छुपा ही लिया था। हमारी सड़क भी धुंधली हो गई थी। रात के आठ बज रहे थे और अभी तक सूरज डूबा नहीं था। वाइपर गतिशील था और कार भी।

●

संपर्क : ई-102, रोहन इच्छा अपार्टमेंट, भोगनहल्ली, विद्या मंदिर स्कूल के पास,
बैंगलुरू - 560103 **मो.** 8210777500

थिरकती धुन

–अरूणा सब्बरवाल

आज चिड़ियों की चहचहाहट ने उसकी नींद में ख़लल डाल दिया। उनींदी आँखो से उसने घड़ी देखी, अभी तो सुबह के छः ही बजे थे, चादर से मुँह ढक कर वह, फिर सोने की कोशिश करने लगी जो विफल रही, अब तक सूरज देवता जी ने भी खिड़कियों से झाँकना आरम्भ कर दिया था, ऐसा लंदन में कभी-कभार ही होता है, क्यूँ कि यहाँ सूरज देवता जी के दर्शन बहुत दुर्लभ है, अगर होते भी हैं तो धूप में तपिश नहीं होती। आज प्रकृति पूरे यौवन पर थी। उसने सोचा क्यूँ न इसका लाभ उठाया जाये, वह अपने बग़ीचे में बैठ चाय का आनंद लेने लगी। सुहाना दिन था, धूप भी ख़ूब सुनहरी हो कर फैली थी, रंग- बिरंगे फ़ूलों से लदे वृक्ष और पौधे इसे और ख़ूबसूरत बना रहे थे। सुबह की धुँध छितरा चुकी थी। दूर-दूर तक सब कुछ साफ़ दिखाई दे रहा था। उसे याद नहीं कितने अरसे बाद उसने इतना स्वच्छ इतना निर्मल और स्फूर्तिदायक वातावरण देखा था। आज वर्षों बाद लंदन की धूप में तपन थी, जो उसके तन को सहला रही थी। पेड़ों को छूती मंद-मंद महकती बयार उसके मन को आनंदित कर रही थी। सामने एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदती - फुदकती, छलाँगें लगाते गिलहरियाँ आपस में लुका-छुपी खेल रहीं थीं। उसने सोच लिया था, कि आज पूरा दिन यहीं बैठ कर प्रकृति का आनंद लेगी। अचानक फ़ोन की घंटी ने उसकी सोच को विराम लगाया "हाय मम आज होस्पिटल में आपकी अप्पोईंटमेंट कितने बजे की है ?"

जिसे वह बिलकुल भूल चुकी थी। पल भर को उसे निराशा ज़रूर हुई पर कर भी क्या सकती है, पिछले दो साल से अप्पोईंटमेंट का यही चक्कर उस के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका हैं ।वह ख़ुद नहीं जानती कि उसे बार-बार अस्पताल क्यूँ जाना पड़ता है, कोई बताता भी तो नहीं था।

उसे तो बस यह याद है कि एक बार वह शुगर के लिए अपने डाक्टर के पास ख़ून टेस्ट करवाने के लिए गयी थी तभी से इसी झमेले में पड़ी है।

उसने घड़ी देखी अप्पोईंटमेंट साढ़े दस की थी, अभी समय था, पर दिन तो उसका बेकार हो गया था सोचने लगी, यहाँ तो रंग में भंग पड़ गया। न इधर की रही न ही उधर की।

"होस्पिटल पहुँच कर, नम्बर लिया , एक घंटे पश्चात आवाज़ आयी 'मिस कमाल'।

"मिस्स "कमाल नहीं मिस कोमल है" उसने नर्स को टोकते हुए कहा। मीटिंग के बाद डाक्टर ने कहा

'अभी कुछ और टेस्ट होने हैं। डेस्क पर जा कर तीन हफ़्ते की अप्पोईंटमेंट ले लो'।

'डाक्टर के यहाँ से फ़ारिग़ होते -होते, दोपहर के दो बज चुके थे, वह थक चुकी थीं, उसने सीधे घर जाने की ही सोची। अस्पताल के चक्कर लगाते-लगाते बारह महीने से अधिक हो गए थे। निरंतर वही नित्यकर्म, दुःखी हो चुकी थी वह। नर्स बताती नहीं, डाक्टर से पूछने की हिम्मत नहीं। बचपन से ही बहुत आत्मनिर्भर रही है कोमल। बच्चों से भी उसने अभी तक ज़िक्र नहीं किया था। पिछले छः महीने से मामला कुछ पेचीदा होने लगा था। पहले एंडोस्कोपि हुई, फिर कोलोनोस्कोपि। सभी प्रोसिज़र बहुत दुखदायी थे। अभी बोन मैरो का आखिरी टेस्ट बाक़ी था जो सबसे अधिक दर्दनाक होता है । बोन मैरो का टेस्ट बहुत भयावह था।

तीन सप्ताह पश्चात, जैसे ही अस्पताल पहुँची, उसके लिए अकेले कमरे में बेड तैयार था, उसे देखते ही बहुत घबरा गयी , फिर नर्स ने बोरी सीने वाला सुआ निकला और मेरी पीठ में घुसाने लगी, पीठ की हड्डी इतनी मज़बूत थी कि सुआ भी टेढ़ा हो गया। यह प्रक्रिया उसे तीन बार करनी पड़ी, तुम सच नहीं मानोगी वह इतनी ज़ोर से चिल्लायी कि

हाए माँ हाए-माँ करने लगी उसका चीख़ना सुन कर वहाँ, एक और नर्स आ गयी। नर्स ने चाय पिलाई, आराम करने को कहा, बस पूछ मत .....इसके बाद ही निष्कर्ष निकलने वाला था। वह कौन सा हारने वाली थी? उसने भी सोच लिया था 'जो होगा देखा जाएगा' या फिर अंग्रेज़ी कहावत है 'वी विल क्रोस द रिवर वेन द टाईम कमज़ ,उसमें नया विश्वास भर देता है।

वह दिन भी आ गया जिसका बैचेनी से इंतज़ार था। बोन मैरो का टेस्ट बहुत भयावह था डाक्टर ने बताया कि उसे 'मायलोमा' (कर्करोग) है। जैसे ही डॉक्टर ने बताया, वह जम गयी, जैसे ठंड से कड़कती रातों में नदी का पानी जम जाता है। पल भर को उसे लगा मानो जैसे ठंडे कुएँ के पानी में किसी ने कंकर मार दिया हो। अचानक इतनी भयंकर ख़बर सुन कर वह जम गयी, उसकी आँखों के सामने अंधेरा सा छा गया। वह स्तब्ध थी पूरा जीवन चलचित्र की भाँति घूमने लगा। पाँव धरती से बेदख़ल हो गए। वह स्तंभित थी उसे एक पल लगा इस उलझन से सम्भलने में, इस अप्रत्याशित ख़बर ने उसके अन्तःकरण को झकझोर दिया। सारे रास्ते सोचती आयी, वह नहीं जानती कि कैसे वह घर पहुँची।

घर पहुँचते ही वह फूट-फूट कर रोई, आँसू पलकों की सीमा को लाँघ गए, पति की मृत्यु के पश्चात यह बात उसके मस्तिष्क में उत्पात मचा गयी। उतना सुनते ही उसकी आँखों में नमीं तिर गयी, होंठ काँपने लगे। बड़ी मुश्किल से घर पहुँची। घर पहुँचते ही उसे मिस्टर गूगल ने तीन महीने की मोहलत बतायी। पढ़ कर उसके भीतर एक कील सी ठुक गयी शरीर सूखे पत्ते की तरह हवा में तैरने लगा। शरीर का भार जाता रहा। ऐसा लगा ज़मीन अपनी ओर खींच रही है। उसके भीतर का तरल पल भर में सूख गया। एक ऐसा सदमा पहुँचा जो घुन बन कर अंदर का कलेजा खाता रहता है , जहाँ इंसान के बस में कुछ नहीं रह जाता। धीरे धीरे उसके मन में रिक्तता सी आने लगी, उसे लगा उसकी पकड़ में कुछ नहीं आ रहा, सब फिसलता जा रहा था। सोचने लगी हम क्यूँ जीते हैं, मर जाते हैं, और मरते-मरते जी जाते हैं। उसकी बरसों से लिपा पोती की दीवार कमज़ोर होने लगी, पल भर को उसे लगा उसके भीतर कोई ओर औरत बैठी है, जिससे वह कभी मिली नहीं, शायद मिलने की इच्छा ही न हो। उसका आत्मविश्वास उसे कचोटने लगा था।

वह ज़ोर से चिल्लायी नहीं ....नहीं ....कोमल तुम इतनी कमज़ोर तो कभी नहीं थी, उठो सम्भालो ख़ुद को। वह स्वयं से जूझ रही थी, सोच रही थी संभल कर बच्चों को बताउँगी, नहीं तो वह नाहक परेशान होंगे। बड़ी मुश्किल से वह घर पहुँची।

बड़ी मुश्किल से उसकी रात बड़ी बैचेनी से गुज़री, रात भर करवटें बदलती रही, ज़रा सी आँख लगी ही थी कि अचानक एक दम घबरा कर उसकी आँखें खुलीं, तो वह पसीने से तर थी और उसका दिल इतनी ज़ोर से धड़क रहा था कि उसे लगा, कहीं अचानक उसकी धड़कन न बंद हो जाए। अंधेरे में उसने कई बार पलकें झपकायी। पहली बार तो उसे समझ नहीं आया कि वह कहाँ है? एकदम दिशा स्थान का ज्ञान भूल गयी। जब पास पड़ी घड़ी का अलार्म बजा, धीरे-धीरे उसे ध्यान आया, उसने जल्दी से गले का पसीना पोंछा, उसके दिमाग़ में मायलोम घूमने लगा।

सुबह होते ही उसने अपने बचपन की बेस्ट-फ्रेंड ऋतु को फ़ोन मिलाया, कोमल को सुबकते सुन कर आधे घंटे में ऋतु उसके पास थी। ऋतु को देखते ही वह फूट-फूट कर रोने लगी। ऋतु कुछ असमंजस में थी कि यह मुस्कान बिखेरती चंचल, हमेशा गुनगुनाने वाली कोमल की आज सूजी हुई आँखें बता रहीं थीं की आज वह कुछ कहना चाहती है।

"कोमल को देखते ही ऋतु बोली यह क्या हालत बना रखी है तुमने, कुछ बताओगी भी हुआ क्या है ?" कोमल ने रोते-रोते अपनी मेडिकल रिपोर्ट और गुगल का प्रिंट आउट ऋतु के सामने रख दिया।

"धैर्य रखो, सम्भालो खुद को ..उसका इलाज भी तो होगा।"

"किंतु गुगल तो कुछ और भी बता रहा है"।

"मुझे विश्वास है, कोई तो इलाज ज़रूर होगा। इतनी कायर तो तुम कभी नहीं थी, उठो, रोओ खूब रोओ, चिल्लाओ ज़ोर से जितनी ज़ोर से चिल्ला सकती हो मेरी जान, स्वयं से कब तक जूझती रहोगी, बच्चों को बताया क्या ?"

"नहीं, अभी नहीं, सोच रही थी खुद संभल कर बच्चों को बताउँगी, नहीं तो वह नाहक परेशान होंगे।

अभी तो बहुत कुछ करना है मुझे"।

"ऐसा भी क्या करना है ?"

"तू नहीं समझेगी सारा पेपर वर्क करना है , अभी तक तो विल भी नहीं बनायी"।

"यह तो सब हो जाएगा, आराम से बैठ कर सोचेंगे, मैं अभी कही भी नहीं जा रही, ऋतु ने प्यार से कोमल के कंधों पर हाथ रखते कहा .... अब यह बताओ, तुमने सुबह से कपड़े क्यूँ नहीं बदले, जाओ पहले अपना हुलिया सुधारो, मैं वही चुलबुली, हर फ़िक्र को धुएँ में उड़ाती, सकारात्मक सोच वाली कोमल देखना चाहती हूँ। मैं चाय बनाती हूँ, तुम गार्डन में बैठ थोड़ी ताज़ा हवा लो"।

कोमल कपड़े बदल कर अपने बग़ीचे में पहुँची, हवा में हल्की सी ठंडक अभी बाक़ी थी, जो देह में हल्की सी सिरहन पैदा कर रही थी। धूप काफ़ी चमकीली और हल्की सी ऊष्मा लिए थी। मन में विचारों का झँझावात मचा था। अचानक उसने देखा कि एक गिलहरी एक ख़ाली प्लास्टिक के गिलास को शायद अपने घोंसले में ले जाना चाहती थी, बार-बार गिलास फ़ेन्स में अटक जाता और गिलहरी ज़मीन पर गिर जाती, वह फिर ज़मीन से उठ कर प्रयत्न करती रही जब तक वह सफल नहीं हुई। कोमल सोचने लगी अगर गिलहरी बार-बार गिर-गिर कर ऊठ सकती है तो मैं क्यूँ नहीं? गिलहरी से प्रेरणा लेकर उसके चेहरे पर एक छिपी मुस्कान खेलने लगी। गहरी साँसें ले कर उसने अपने मन में उठते विचारों के बबंडर को फूँक मार उड़ा दिया। उसके मस्तिष्क में कोई विशेष चिंतन प्रवाहित होने लगा, और वह किसी नयी योजना का ताना -बाना बुनने लगी। इतना अवश्य था कि उसकी मुस्कुराहट के पीछे से उसकी गम्भीर सोच की झलक मिल रही थी।

इतने में ऋतु चाय लेकर बग़ीचे में ही आ गयी, दोनों बैठ कर चाय पीने लगी। कोमल के चेहरे पर मुलायमी मुस्कान देख कर ऋतु ने कोमल से पूछा

"अब कैसे महसूस कर रही हो ?"

"बढ़िया ....हाँ मैं सोच रही थीं कि जो होगा सो देखा जाएगा, क्यूँ न मैं उसकी खुशी मनाऊँ जो भगवान ने खुशियों का भंडार दिया है। मैं कुछ विशेष करना चाहती हूँ, उत्सव की भाँति मनाना चाहती हूँ। जो दूसरों को खुशी दे सके। मैं मौन नहीं रहना चाहती, मौन भयावह होता है, डरावना होता है, जो मुझे पसंद नहीं। मैं अपने भीतर के पतझड़ को बहार में बदलना चाहती हूँ , दोनों ही खुशियों के विकल्प सोचने लगीं जैसे, वर्ड क्रूज़, बिग होलीडेज, दुनिया की सैर, वग़ैरा-वैग़रा। नहीं, नहीं ऐसा विशेष उत्सव हो जो अपनों और मित्रों के साथ मिलकर मनाया जाए। अब समस्या थी बहाना ढूँढने की, क्रिसमस निकल गया, नया साल निकल गया वैलंटाइन दिन निकल गया है, ईस्टर निकल गया है, रह क्या गया है"...

ऋतु ने कोमल को रोकते कहा "याद आया तुम्हारा जन्मदिवस भी तो आने वाला है, गुड .... डन।"

बस बड़े ज़ोर- शोर और सक्रियता से दोनों भव्य दावत की तैयारियों में जुट गय्यीं। दो दिन पश्चात पार्टी प्लानर विशेषज्ञ को बुलाया। हाल की सजावट निमंत्रण पत्र, फ्लावर डेकोरेशन, कटलरी इत्यादि सभी कलर कोरडीनेटिड होने चाहिए, आस -पास का वातावरण ज़िन्दा होना बहुत ज़रूरी है। यह सब पार्टी (विशेषज्ञ) की ही ज़िम्मेदारी थी। उस दिन की लिए कोमल ने तो अपनी शादी का जोड़ा और पति की तरफ़ से मिला मुँह दिखाई वाला ज़ेवर

तैयार किया। निमंत्रण पत्र पर मेहमानों को उनकी बेस्ट सूट या साड़ी में आने का निवेदन था ।

आज वो दिन भी आ गया, आज की सुबह कुछ अलग थी, हवा में अभी हल्की सी ठंडक बाक़ी थी, जो देह में हल्की सी सिरहन पैदा कर रही थी। धूप काफ़ी चमकीली और हल्की सी ऊष्मा लिये थी। उसके मन का उत्साह उसकी आँखों में चमक रहा था। वह तैयार थी इस जोखिम के लिए उसने आदमकद आइने में देखा और मुस्कुरायी। उसके मन का उत्साह उसकी आँखों में चमक रहा था। वह तैयार थी इस जोखिम के लिए। फिर सोचने लगी जीवन में सब कुछ हासिल नहीं होता। ज़िंदगी में यहाँ किसी का 'काश' तो किसी का 'अगर' छूट जाता है, मुझे तो बहुत कुछ मिला है।

वह दिन भी आ गया, सभी मेहमान खूब सज-धज कर आए थे। सभी मेहमानों ने गाने-बजाने, डाँस चटकुले में डट कर भाग लिया। विशेष कर जब कैरीयोकि में फ़िफ़्टीज़, सिक्सटीज़, और सेवंटीज़ के गानों का दौर चला तो सबके पाँव थिरकने लगे। समारोह ही तो वह चाहती थी। पार्टी के समापन से पहले कोमल को स्पीच के लिए कहा गया।ऐसा लंदन में चलन है। कोमल ने मेहमानों को सम्बोधित करते हुए कहा .....

"जीवन भर के मेरे प्यारे मित्रो, आज आप सब के प्यार का अम्बार पा कर आत्मविभोर हो गयी हूँ। आप सब के साथ बिताए समय की यादें जो अभी तक मेरे मन और कानों में गूँजती हैं। मेरे पति की मृत्यु के पश्चात आप सभी पग - पग मेरे साथ लौह स्तम्भ बन के खड़े रहे हो। आज इस अवसर पर मैं आप सभी को अपना आभार व्यक्त करना चाहती हूँ।"

"सबसे पहला मेरा आदर भरा सम्मान पुरी परिवार को जाता है। भारत से लंदन आते ही सबसे पहले मेरी मुलाक़ात सत्या पुरी जी से हुयी थी। मेरे मायके का भी गोत्र पुरी होने के कारण, उन्होंने मुझ पर बड़ी बेटी सा स्नेह लुटाया। आपके इस असीम स्नेह के प्रति मेरे मन में बहुत गहरा सम्मान है, यह सम्मान दिन ब दिन बढ़ता ही गया। आपने अपने दिल के दरवाज़े और खिड़कियाँ सदा मेरे लिए खुले रखे हैं"

"अब मैं लंदन में मिली अपनी पहली सखी सीमा को धन्यवाद देती हूँ, भारत से आने के बाद जिसने प्रत्येक तरह की मदद के लिए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया। एक दूसरे के जीवन के उतार चढ़ाव साँझे किए है। अभी तक कर रहे हैं।"

"मुझे जीवन में सदा फादर स्मिथ और उनकी पत्नी ब्रेंडा जैसे हीरे मिले हैं। पति के देहांत बाद मेरा रंग, का भेद न करते हुए आपने मुझे सिखाया कि मानवता में कितनी शक्ति होती है। आपने सिखाया, समझौतों की स्थिति कैसी भी हो, मनुष्य उसमें जीना सीख लेता है। लम्हों के साये में जीवन क़ैद नहीं होता, ज़िन्दगी केवल वक़्त काटना नहीं है। जीवन का सतत प्रवाह भी क्या कभी अवरूद्ध हो पाया है। उन्हें कभी भी भूल नहीं सकती। जिन्होंने मुझे बिना स्वार्थ के प्यार दिया, मदद की, मुश्किलों में मेरा हाथ थामा है।"

"मनजीत रानी जी, आप तो साकारात्मकता का सघन गुलदस्ता हो, आप सदा यही सिखाती आयी हो कि जो दूसरों के मन की बात जान ले, वह चतुर है। और जो खुद को जान ले, वो आत्मज्ञानी। जो दूसरों को जीत ले उसे समर्थ कहते हैं।"

"ब्रिज जी आप कुम-कुम की भाँति सुंदर हो। जो दूसरों में भी सदा सुंदरता ढूँढती रहती हैं। आप में एक जादू है, मैं आपके इस जादू को बाँटना चाहती हूँ कि कैसे आप अपनी सोच से किसी को भी बड़ी सरलता से उनके दर्द से बाहर ले आती हो। आप सदा से कहती आयीं हैं कि ज़िंदगी वक़्त काटना नहीं , जीना ज़रूरी है। आपके स्वर की मिठास और आपके शिष्ट व्यवहार ने मुझे ख़रीद लिया था।"

"मेरे स्कूल और कॉलेज़ के समूह को भला कैसे भूल सकती हूँ, मेरे लंगोटिया सहेलियाँ। मुझे याद हैं अपने स्कूल के वो दिन जब हम हमेशा शरारतें करते पकड़े जाते थे। गुलशन तुम सदा से ही होशियार थीं और मैं कामचोर, स्कूल जल्दी पहुँच कर तुम्हारे किये गये हिसाब के होम वर्क की नक़ल मारती थी, डाँट से बचने के लिए। हाँ याद है तुम्हें, जब मैं तुम्हारे घर आयी थी, घण्टों हमने अपनी-अपनी सलवार ढूँढने में लगा दिए, बेटी ने पूछा क्या ढूँढ़ रही हो? जब बताया, हँसती हुईं बोली माँ ध्यान से देखो, आप दोनों ने एक दूसरे की सलवारें पहनी

हैं। दोनो को अपनी मूर्खता पर बहुत शर्मिंदगी हुई । अलग -अलग यूनिवर्सिटी में जाने के बावजूद, हमारा रोज़ का मिलना जारी रहा। कुछ समय की लिए सम्पर्क छूट गया था ,अचानक ऊपर वाले की कृपा से फिर मिल गये।"

"डाक्टर चोपड़ा आप और मेरे पति एक ही अस्पताल में कार्य करते रहे हैं । याद है वो घटना जो मैं कभी नहीं भूल सकती। एक बार मेरे पाँव की हड्डी टूटने के कारण मुझे अस्पताल जाना पड़ा, वहाँ मेरा नाम चोपड़ा देखते नर्स ने मेरे एक्सरे लेने से इंकार करते बोली" मैं तुम्हारा एक्सरे नहीं कर सकती क्यूँकि तुम प्रेगनेंट हो। "मैं" नहीं, नहीं, "का राग अलापती रही, अंत में पति के नाम से गुत्थी सुलझी, एक ही सरनेम होने के कारण नर्स असमंजस में थी, तभी आप से मिलना हुआ। उसी दिन से हम एक ही परिवार से जाने जाते हैं।"

"मैं लंदन के, बर्मिंघम, और चेयशर की अपनी सभी सह शिक्षिकाओं तथा अपने सभी पड़ोसियों की बहुत आभारी हूँ। जिन्होंने मेरा खुली बाहों से स्वागत किया। हर पल मदद के लिए तत्पर रहे।"

"अंत में यहाँ बैठे सभी दोस्तों, पड़ोसियों, मेरे कार्य में सहभागी, मेरे रिश्तेदारों की तहे दिल से आभारी हूँ और गौरवान्वित हूँ कि आप मेरे जीवन में आये। सभी मधुर यादें अभी तक मन में गूँजती हैं। सब कुछ छूट जाने पर भी स्मृतियाँ नहीं छूटतीं, मैंने सभी यादें संजो कर रखीं हैं।

मुझे जीवन में सदा अच्छे लोग मिले हैं। इतने अच्छे जिन्होंने बिना किसी स्वार्थ से मुझे प्यार दिया, मदद की, मुश्किलों में मेरा हाथ थामा, यह एहसास दिलाया कि कभी-कभी जीवन में खून के रिश्तों से प्यार के रिश्ते अधिक मज़बूत होते हैं

जीवन अपना रास्ता बनाता हुआ जैसे-तैसे निकल जाता है। इसका निरंतर गतिशील होना ही इसका सबसे बड़ा गुण है जो पगडंडियों पर निशान छोड़ता निरंतर आगे बढ़ता रहता है। केवल यादें ही रह जाती हैं।

"अब आप सेलीब्रेशन का आनंद लें, उसने हँसते -हँसते कहा, धन्यवाद! म्यूज़िक ओन प्लीज़, कैरी ओन .....उसने एक गहरी साँस लेते हुए कहा। उसने चुप चाप होस्पिस में फोन कर के अपना स्थान रिज़र्व कर लिया (होस्पिस संस्था ऐसे रोगियों के लिए है, जिनके बचने की उम्मीद ख़त्म हो जाती है, जहाँ कोमल सप्ताह में दो दिन समाज सेवा करती है) वह सोचने लगी, यह बसंत के बाद मेरे जीवन का कैसा पतझड़ है ।"

'दिल का दर्द हँसते हुए चेहरे पर झलकता रहा। आईना आज फिर रिश्वत लेता पकड़ा गया।'

लेखिका परिचय : अरुणा सब्बरवाल का नाम प्रवासी लेखिकाओं में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनकी आरंभिक शिक्षा भारत में हुई है। अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान ये पढ़ाई के साथ-साथ पाठ्येतर गतिविधियों में भी अग्रणी रही हैं। इन्होंने 26 जनवरी, 15 अगस्त जैसे राष्ट्रीय पर्वों पर विद्यालय का नेतृत्व किया है। एन.सी.सी. राइफल में अंडर ऑफिसर रहकर विद्यालय का नेतृत्व करती रही हैं एवं विद्यालय की यूनियन एग्जीक्यूटिव मेंबर रह चुकी हैं। विभिन्न खेलों में अपने विद्यालय का नेतृत्व करने के साथ-साथ कॉलेज के म्यूजिक एसोसिएशन की "बेस्ट सिंग ऑफ चेर पर्सन" का सम्मान भी प्राप्त कर चुकी हैं।

साहित्यक अवदान : भारत में जन्मी अरुणा जी ने समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव और सामाजिक विषमताओं का लंबे समय तक विश्लेषण करने के बाद लेखन कार्य आरंभ किया, अतः इनकी लेखनी अत्यंत प्रखर है और इनकी रचनाएं गहन संदेशप्रद हैं। आधुनिकता का दम्भ भरने वालों के अवचेतन मन की परतों में दबी पुरातनपंथी मानसिकता को उधेड़ कर रखना हो अथवा समाज के बनाए नियमों पर प्रतिप्रश्न करना हो, इनकी रचनाएं बेबाक आवाज उठाती हैं और पाठक के मानसपटल पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं। इन्हें 14 सितम्बर, 2023 को लंदन के भारतीय उच्चायोग में श्री विक्रम दोरेस्वामी द्वारा "डॉ. हरिवंश राय बच्चन हिन्दी लेखक-सम्मान" प्रदान किया गया है। हाल ही में आचार्य पथ स्मारिका के अंक में उनका लेख "हास्पिस-सिर्फ एक सुरंग प्रकाश की" प्रकाशित हुआ है, जो वयोवृद्धजनों को सम्मानित जीवन की ओर अग्रसर करता हुआ अत्यंत प्रेरक लेख है। वर्तमान समय में वे लंदन में वातायन-यू.के. की कोर कमेटी की सदस्या हैं।

संपर्क : Flat 2, Russettings, Westfield Park, Hatch End HA5 4JF, Pinner
U.K., 07557944220 (mobile)

पानी का पता के बहाने समकालीन समय की शिनाख्त

-डॉ. शशि शर्मा

मनीषा झा समकालीन दौर की चर्चित कवयित्री है। उनकी कविताएं अपने व्यापक सरोकारों और सुस्पष्ट चिंतन दृष्टि के कारण आकर्षित करती हैं। समाज, स्त्री, राजनीति, प्रकृति, पर्यावरण, दर्शन, प्रेम आदि विषयों पर उनकी एक अलहदा सोच है, एक नवीन दृष्टि है। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द, अर्थ, भाव, चिंतन हमारी आतंरिक संवेदना को उद्वेलित करने में पूर्ण समर्थ है। उनकी कविताएँ शोरगुल नहीं मचातीं बल्कि सहज और शांत रहकर हमारी अंतरात्मा को झकझोर डालती हैं, हमें पुनर्विचार के लिए सक्रिय करती हैं। 'शब्दों की दुनिया', 'कंचनजंघा समय' और सद्यः प्रकाशित 'पानी का पता', उनके तीन प्रमुख काव्य-संग्रह हैं।

'पानी का पता' काव्य-संग्रह पंचतत्वों में एक मुख्य तत्त्व पानी की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। प्रकृति से संवेदनात्मक स्तर पर आबद्ध मनीषा झा ने यह शीर्षक संभवतः इसलिए दिया है कि पानी सिर्फ एक पेय पदार्थ नहीं है, इसका नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, पारिस्थितिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ भी है। 'पानी का पता' संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए यह सोच सच हो जाती है। 'पानी का पता' के बहाने वह हमारे समय की विसंगति और विद्रूपताओं पर बार-बार चिंतन-मनन करती है। कहीं भोगवादी संस्कृति के विस्तार से विलुप्त होती 'नदी का एक घर' में पानी का पता खोजती दिखती है, तो कहीं उसके अभाव से उत्पन्न संकट से सचेत करते हुए उसकी रक्षा हेतु 'पृथ्वी की पुकार' सुनने का आग्रह करती है ताकि हम 'पानी को प्रेम दें/ धरा को रहने दें समृद्ध'। कहीं 'पानी का पता' ढूँढ़ने के बहाने 'पानी बन चलो' कहकर जीवन जीने की कला सीखाती है। गौरतलब है कि आज जब हम पानी के संकट को झेल रहे हैं, मनुष्य के अंदर से पानी के सूखने से विचलित है, पानी का पता तलाशना और बताना, दोनों ही मानवता के पक्ष में है। इसलिए पानी को देखकर वह 'आश्वस्ति' से भर जाती है – "नदी के पास होना एक आश्वस्ति है / कि तमाम ताप पीकर भी / उसका अंतरतम रहता है शीतलतम/ और ऊपर का ताप/ बस ऊपर-ही-ऊपर से बह जाता है।" यह शाश्वत सत्य है कि पानी है तो जीवन है, प्राणी है, प्रकृति है, सभ्यता है, संस्कृति है, सुख है, समृद्धि है, वैभव है।

इस संग्रह की पहली कविता 'यहां से देखो' एक सशक्त कविता है। कविता में भोगवादी संस्कृति की विसंगतियों के प्रति गहरी चिंता अभिव्यक्त है। यह संस्कृति सबकुछ लीलने पर आमादा है। पृथ्वी को क्षत-विक्षत करने के बाद वह चांद की स्वाभाविकता को नष्ट करना चाहता है। पर कवयित्री को लगता है – "कुछ चीजें अच्छी लगती हैं / अपने ही स्वभाव में / जैसे कि पृथ्वी/ जैसे कि सूरज / जैसे कि तारे/ जैसे नक्षत्र सारे"।

यह अस्वाभाविक भोगवाद जीवन-चक्र को असंतुलित कर विद्रूपताओं को जन्म दे रहा है। यह सृष्टि जितना मनुष्य का है, उतना ही मनुष्येतर प्राणियों का। परन्तु 'सिक्का' को जीवन का सर्वस्व समझने वाले, 'हड़पने की सभ्यता' के पोषक मनुष्य इस तथ्य को नहीं समझना चाहते कि - 'जीवन के चक्के को गति चाहिए / चाहिए संतुलन भी / जगह चाहिए सबको यहां / सबको जगह चाहिए थोड़ा-थोड़ा / चक्का कोई सिक्का नहीं है।"

एक साक्षात्कार में मनीषा झा बताती है –"मुझे लगता है कि मैं प्रकृति का एक अभिन्न हिस्सा हूँ। प्रकृति मुझे आकर्षित करती है। सभ्यता भी अपनी ओर खींचती है। मैं अपने को देवों के बीच पाती हूँ, लेकिन मेरी अंतःप्रकृति बाह्य प्रकृति से जुड़ कर सुकून पाती है।"

प्रकृति को अभिन्न महसूसने वाली मनीषा झा इसलिए जब देखती है - "सारे प्राकृत पशुओं का / हो रहा बुरा हाल / पानी का सोता सूख जाने से / सिकुड़ी पड़ी हैं तमाम नदियां / मेरे बिल्कुल पास से बह जाने वाली / तीस्ता हो, महानंदा या बालाशन की अंगड़ाइयां" वह विचलित हो उठती है। इन नकाबपोश लुटेरों की अमानवीयता और मंशा पर कवयित्री का बार-बार प्रश्न करना, प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण है – "पेड़ों की हत्या कर / हर सड़क को छह गली वाले राजमार्ग में / बदलने का क्या मतलब/ क्या मतलब है कि चिड़ियों का आश्रय छीनकर / धुआं को प्रशारी देने का / क्या यह तय हो चुका है / कि पेड़ों और अन्य प्राणियों को हटाकर / हर जगह / अब सिर्फ मनुष्य ही रहेगा ?"

दरअसल मनीषा झा के लिए प्रकृति 'मां' स्वरूपा है, जिसके हरेक उपादान में मां का स्नेह, ममत्व, फटकार,चिंता का भाव समाहित है - "तो क्यूं न करूं मैं प्यार / नदी पोखर चिड़िया और पेड़ को / बार-बार क्यूं न मिलूं/उसके पास जाकर उनके गले / जब तक है यह जीवन / बनी रहे मां के दुलार की छांव / सदा रहे पांचों तत्वों की नेमत / मिलता रहे मां का स्नेहिल आशीष।"

इस संग्रह की बहुत सारी कविताएं है, जिनमें प्रकृति के साथ उनकी आत्मीयता, प्रकृति के शोषण-दोहन से उत्पन्न विकलता अभिव्यंजित हुई है। सूचना, पृथ्वी की पुकार, प्रकृति –शक्ति, आपदा के मारे, फूल पर तितली, उसने सोख लिए मेरे दुःख, तुम अद्वितीय, शिशिर का आना आदि ऐसी ही उल्लेखनीय कविताएं हैं।

गौरतलब है कि यह पुस्तक स्त्री-मुक्ति की पक्षधर रचनाकार महादेवी वर्मा को समर्पित है। कहना न होगा कि कवयित्री महादेवी वर्मा से कितनी प्रभावित है। महादेवी वर्मा स्त्री-मुक्ति संघर्ष की पुरोधा है। उन्होंने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' निबंध-संग्रह में स्त्री अस्मिता, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता, समाज में उसकी भूमिका पर बड़ी गहराई से विचार किया है। महादेवी वर्मा ने न सिर्फ लिखा बल्कि तत्कालीन पुरूष वर्चस्ववादी समाज की मानसिकता को व्यक्तिगत और सर्जनात्मक, दोनों स्तरों पर चुनौती दी। एक साक्षात्कार में महादेवी वर्मा ने बताया- "नवीन जीवन-मूल्य नारी और पुरूष दोनों के लिए सामान हैं,क्योंकि वे मानव को गरिमा देने वाले गुण हैं। सत्य, अहिंसा, स्नेह, समता, बंधुत्व आदि न केवल पुरूष के गुण हैं न नारी के। नारी माता होने के कारण मानव-आत्मा की शिल्पी भी है, अतः उसका कर्म क्षेत्र अधिक अंतरंग हो जाता है। भारतीय नारी ही नहीं विश्व भर की नारियों को अपना वर्चस्व प्राप्त करना चाहिए।"

मनीषा झा स्त्री-अस्मिता और वर्चस्व के प्रति सजग है। 'पानी का पता' संग्रह की कविताएं नवीन स्त्री-दृष्टिकोण के कारण आकर्षित करती हैं। परिवार और समाज का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होकर भी स्त्री उपेक्षणीय रहें, यह उन्हें अस्वीकार्य है। 'पूर्णिमा का चांद' कविता में चांद की सुंदरता में उस अनथक, ऊर्जस्वित, सबकी क्षुधापूर्ति में लीन पर उपेक्षित अन्नपूर्णा स्त्री का जो बिम्ब उन्होंने उकेरा है, वह नवीन और आकर्षक है - 'भूख ही अखंड सत्य है / प्राणी के जीवन का / जिसे साधने को बेचैन सब/ जानती यह स्त्री xxx उस स्त्री के न होने से / कितना खाली दिखता चांद/ कितनी फीकी लगती दुनिया / तब कैसे बनाता वह पूर्णिमा का चांद।" स्त्री की महत्ता की इससे बेहतर परिकल्पना नहीं हो सकती।

मनीषा झा स्त्री मुद्दों पर चिंतन करती हई स्त्री विषयक सामाजिक अंतर्विरोधों की गहराई से पहचान करती है। पुरूष वर्चस्ववादी समाज में आज भी स्त्री को समाज का महत्त्वपूर्ण हिस्सा मानने में हिचकिचाहट होती है। 'दुर्घटना' शीर्षक कविता इसी मानसिकता की पहचान कराती है - 'होनी थी बहस / महिला-आरक्षण के मसले पर / कई-कई कोणों से विचार होना था / मगर जब तक हम पहुंचते कि / पास हो चुका था बहुमत से / रेजोल्युशन / आरक्षण की क्या जरूरत / काम करेंगे मिल-जुल कर''

साहित्यिक जगत भी इस भेदभाव से किस तरह आक्रान्त है, इसका लेखा-जोखा मनीषा झा के पास है। तभी तो स्त्री संबंधित गंभीर मुद्दों पर स्वयं को प्रगतिशील मानने वाले कवियों की चुप्पी उन्हें खलती है। वह सवाल करती है – "हे उत्तर भारतीय पूरबिये कवि! / दहेज़-हत्या और घरेलू-हिंसा के मुद्दे / क्यों हो जाती है / तुम्हारी लेखनी काठ / अपने से बाहर निकलकर / सोचोगे कभी स्त्री के बारे में / हो पाओगे प्रगतिशील / पुरस्कार-आदि का मोह त्यागकर / मदद कर सकते हो क्या / एक सही समाज बनाने के वास्ते!"

मनीषा झा स्त्री को उसका अधिकार और स्थान दिलाने के लिए प्रतिबद्ध है। 'तुम्हारा स्त्री बनना' कविता में वह अपनी बच्ची के माध्यम से उन तमाम बच्चियों को परंपरा के अवांछित मूल्यों की जकड़न से मुक्त करने की बात करती है। वह पारंपरिक मां की तरह 'पक्की गिरहस्थिन' बनने की सीख नहीं देना चाहती – "मेरी बच्ची मैं चाहती हूं देखना / तुममें आजाद देश की एक आधुनिक नागरिक / आत्मबोध की आभा से भरी इसलिए मैं नहीं दे सकती / वह शिक्षा तुम्हें / जो बना दे तुम्हें / 'तिरिया-चरित्तर' लिए एक गर्वीली स्त्री"

आज की सीता, रक्षाबंधन, राग, मैं शैली, सुख की तारीख, सन्दर्भ आदि इस संग्रह की कुछ उल्लेखनीय कविताएं हैं जिनमें स्त्री की मनोवेदना, प्रताड़ना, नियति और स्वीकृति की जद्दोजहद को कवयित्री ने सूक्ष्मता से रूपायित करते हुए समाज की दोहरी मानसिकता पर सवाल किया है।

इस संग्रह में कुछ कविताएं प्रेम पर आधारित है। मनीषा झा प्रेम को नए संदर्भ में देखती-परखती है। प्रेम में स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित रहते हैं बावजूद इसके स्त्री पूर्ण प्रेम से वंचित रह जाती है क्योंकि 'प्रेम के पूरेपन में पेंच' है। वह देखती है – "प्रेम के पूरेपन में पेंच थे बहुत / एक सुलझाओ तो दूसरा तन जाता / प्रेम, पास, पेंच,/ परनिर्भरता, पितृसत्ता/ सब प से ही बढ़ाते थे / एक को सुलझाते बढ़ती / तो दूसरे पाँव खींच लेते थे / प्रेम के पूरेपन में पेंच थे बहुत।"

प्रेम पर पितृसत्तात्मक समाज की कितनी गहरी पैठ है, इस संग्रह की प्रेम संबंधी कविताओं को पढ़कर समझा जा सकता है। अधिकांश प्रेम कथाओं में स्त्री का प्रेम दुखद परिणति को प्राप्त होता है। 'कन्हाई ने कहां किया था प्यार' कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मनीषा झा राधा-कृष्ण जैसे मिथकीय चरित्र की लोकप्रचलित प्रेम कथा पर प्रश्न चिह्न लगाती है। क्या वास्तव में राधा-कृष्ण का प्रेम इतना गहरा था कि वे पूजनीय हो गए या राधा के प्रेम की पीर ने कृष्ण को प्रेम के मंच पर लघुता के अहसास से भर दिया? कृष्ण ने सिर्फ प्रेम किया, राधा ने प्रेम की पीर सहकर प्रेम को उच्चस्तरीय और पूजनीय बना दिया। राधा ने स्त्री होकर भी प्रेम के लिए कठोर साधना की, संघर्ष किया, कृष्ण को पाने के लिए द्वारिका तक चली गयी पर प्रेमी कन्हाई उन्हें नहीं मिला। वह लिखती है – "मान मिला द्वारिका में मिला सम्मान / मगर मिला कहां / वो प्रेमी कन्हाई / प्रिय राधा चल पड़ी अकेली"

प्रेम के रूप में राधा-कृष्ण पूजनीय है, घरों और मंदिरों में उनकी पूजा की जाती है पर विचारणीय है कि यह जोड़ी पूजनीय कब हो गयी – 'फिर जो कन्हाई मिला/ राधा कृशकाय थी प्रिय के पास थी / प्रिय के प्यार में मूर्ति बन गई / खुद राधा नहीं / राधा की मूर्ति ही जग में पूजी गई।" मनीषा झा यहां प्रेम की पारंपरिक अवधारणा और मान्यताओं को तोड़ती है। वास्तव में स्त्री को प्रेम नहीं, प्रेम का छलावा ही मिला है। जिस प्रेम में वह जीती है, वह प्रेम ही उसकी पीड़ा बन जाती है।

मनीषा झा की दृष्टि न सिर्फ व्यापक है, सूक्ष्म भी है। उनकी सृजनात्मकता की विशिष्टता है कि वह जिस विषय को उठाती है, उसके पहलुओं पर कई कोणों से विचार करती है। युग परिवेश और परिवर्तन के प्रति सजगता उनकी लेखनी को सशक्त बनाती है। कोरोना महामारी की विभीषिका से हम सभी परिचित है। मनीषा झा कोरोना विषाणु की भयावहता की साक्षी रही है। उनका मानना है कि यह सिर्फ एक महामारी नहीं बल्कि उन्नत मानव सभ्यता को चुनौती देनेवाली ऐसी त्रासदी रही, जिसने नई त्रासदियों को जन्म देते हुए इंसान को असहाय होने का एहसास कराया है। कोरोना महामारी ने आर्थिक और सामाजिक स्थिति को बेपर्द कर दिया । इस तकनीकी और वैज्ञानिक युग में कोरोना विषाणु ने जिस भय और आतंक का वातावरण सृजित किया, वह निःसंदेह अकल्पनीय थी । उस भयावहता का दृश्य खींचते हुए वह लिखती है – " इधर उतर गया धरती पर अंधकार / दिन दोपहर हो गई अंधेरी शाम / हो गए निस्तब्ध / मानव के बनाए उपकरण / वैज्ञानिक जन / काम आये सिर्फ सूचना के / दिमाग टिमटिमा रहा / छप्पर उड़ गया बत्ती हो गई गुल/ प्रकृति और सभ्यता में मनुष्य एक पुल / लोग बदहवास जा रहे कहीं / शहर से उजड़कर / कोरोना विषाणु के मारे।"

कोरोना काल की विसंगति, विद्रूपता और विडंबनाओं को उजागर करती कई कविताएँ इस संग्रह में मिल जाती हैं। मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति और मानवेतर प्राणियों पर कोरोना के प्रभाव को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। जैसे- कोरोना में चक्रवात, मुरझाने से पहले, कर्फ्यू और रास्ता, वसंत में विवशता, बाहर फूल खिल रहें होंगे, ऋतु-चक्र और आशा, विषाणु और दुख, एकांत चिंतन आदि। कोरोना युग आम जन के लिए काल बनकर आया। प्रवासी मजदूरों की स्थिति इतनी बदतर हो गयी कि वे अपने घर और लोगों के पास वापस लौटने के लिए पैदल चल पड़े। कइयों ने भूख-प्यास से बेहाल रास्ते में दम तोड़ दिया –"प्राणी का जीवन/ दुर्दिन में था उस समय / घर में घुटते लोग थे / भूख से बेहाल लोक थे / सड़क पर मरता मौन था / बहुत बाद पता चला / वह कौन था।"

इस संग्रह की कई कविताओं में कोरोनाकाल की बैचनी को देखा जा सकता है। घर की चारदीवारी में कैद जीवन इंसान के भीतर घुटन, छटपटाहट पैदा कर रही थी। सभी लॉकडाउन के ख़त्म होने और सामान्य जीवन में लौटने का इंतज़ार बेसब्री से कर रहे थे। कोरोनाकाल की विसंगति को शब्दबद्ध करती हुई मनीषा झा लिखती है – "दरमियान लॉकडाउन / बंद घर में अनुभव होता / दिन के तीनों पहर की गति / आंखों में बसता था / अनगिनत चेहरों की हरियाली/ समुद्र के दीदार में विकल थीं मेरी आँखें / हवा की नमकीनिया

बुला रही हो जैसे / कितने ही पड़ावों को करना था पार / आएंगे, वो दिन भी आएंगे / हताशा को दुत्कार दो/ आशा पर मत आने दो सिलवट"

'पानी का पता' संग्रह की कतिपय कविताएं मनीषा झा की दार्शनिक प्रवृत्ति को उभारती है। वह मूलतः आशावादी है। संघर्ष को वह जीवनी शक्ति के तौर पर देखती है। कोरोनाकाल की विषम स्थिति के बावजूद वह आशावादी होकर लिखती है- "एक फूल के मुरझाने से पहले / तैयारी हो चुकी होती है / दूसरे फूल के खिल जाने की।" जीवन का यही परम सत्य है।

मनीषा झा का दार्शनिक रूप प्रकृति संबंधी कविताओं में विशेष रूप से उभरकर आया है। वह प्रकृति में न सिर्फ परम तत्त्व को देखती है, यह मानती भी है कि प्रकृति से बड़ी मार्गदर्शक और शुभचिंतक मनुष्य के लिए कोई नहीं है। प्रकृति में जो करुणा भाव है, जो निस्वार्थ भाव है, जो स्नेह, उमंग और उल्लास है, वह सभी के लिए वरेण्य है । पानी के बिम्ब द्वारा वह इस चिंतन को प्रस्तुत करती है – 'आओ पानी की तरह / सपनों के रंग लेकर /चलो पानी की तरह / हजारों रंग लेकर / रुको पानी की तरह / मेघ को संग लेकर / जीयो पानी की तरह / दिल में उमंग लेकर /बोलो, बोलो /हो सकेगा क्या ?" पानी की तरह जीवन जीना सहज नहीं होता इसलिए कवयित्री का प्रश्न स्वाभाविक है। पानी जीवन के झंझावतों को सहर्ष स्वीकार कर आगे बढ़ता जाता है । कवयित्री भी जीवन की जटिलताओं के बीच, संघर्षशील परिवेश के मध्य पगली नदी की भांति जूझने को तैयार है – "उठूंगी मैं भी उठूंगी और चलती चली जाऊंगी / कंकड़-पत्थर को ठेलकर / गुंथे अंधकार को चीरकर / पगली नदी की भांति / जब रहा-सहा बचा स्वप्न / हो जाएगा भंग"

सामाजिक जीवन के यथार्थ को व्यंजित करती कतिपय कविताएं इस संग्रह को सार्थक करती है। सामाजिक जीवन में बहुत परिवर्तन आ चुका है। एक 'नया रिवाज' चल पड़ा है। जो खुलकर बोलते हैं, वे परिदृश्य के बाहर कर दिए जाते हैं। जिस प्रकार गांव में पीपल और बरगद को बाहर कर दिया जाता है, ठीक वही स्थिति हमारे यहां बड़े-बुजुर्गों की है। वृद्धों की कारुणिक स्थिति का मार्मिक दृश्य इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है – "अपनी सारी ताकत और कमजोरी के बारे में / बोलते हैं दिल खोलकर खड़े-खड़े / वे गांव के बाहर के पीपल और बरगद हैं / वे वरिष्ठ नागरिक / दिल खोलना मतलब बाहर हो जाना / परिदृश्य से / सूने प्रांतर का इमली या बरहर हो जाना / जानते हैं सब / रिवाज उठ रहा है अब / बोलने का दिल खोलने का।"

'रोबोट लड़ते नहीं' शीर्षक कविता आसन्न समाज की विसंगतियों को दर्शाती है। आज AI (ARTIFICIAL INTELLIGENCE) पर जोर-शोर से कार्य हो रहा है। हम अब ऐसे युग में जीने को विवश होंगे जहां मशीनों का वर्चस्व होगा। मनीषा झा की दूरदृष्टि आसन्न समाज को परख ले रही है। उनके अनुसार – "रोबोट सभ्यता को संवारेंगे /संस्कृति को जन्म देंगे / मनुष्य को जन्म तब एक स्त्री ही नहीं / कोई भी दे देगा / कोई भी से जन्मा मनुष्य / बड़ा बुद्धिमान होगा / बड़े कारनामे करेगा / बदलकर रख देगा मानव संस्कृति /आमूलचूल नई कर देगा पृथ्वी को / लो जितनी चाहे ले लो नवीनता" कितनी बड़ी विडंबना है कि मशीन का जन्मदाता मनुष्य स्वयं मशीन का गुलाम बन जाएगा, क्योंकि उन्हें सिर्फ लड़ना आता है और मशीन मनुष्य की इस कमजोरी का फायदा उठायेंगे –"असल मनुष्य अब सिर्फ चुनाव लड़ेंगे / फिर जोर-जोर से ललकारेंगे / फिर छोड़ देंगे बाकी को लड़ने-मरने के लिए / रोबोट तब कुछ नहीं करेंगे / क्योंकि रोबोट लड़ते नहीं।"

अंततः यह कहा जा सकता है कि यह संग्रह उनकी प्रौढ़ विचार का प्रतिफलन है। इसमें सामाजिक युग और उसकी विसंगतियों को नयी दृष्टि से देखा और समझा गया है। यह संग्रह इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण और पठनीय है कि इसमें युगीन परिवेश को समय, समाज, प्रकृति और संवेदना के धरातल पर चित्रित किया गया है। अपने समय को समझने, उसके परिवर्तन के विविध कोणों को जानने-समझने में यह संग्रह सहायक है।

समीक्षक : शशि शर्मा

पुस्तक का नाम : पानी का पता
लेखक : मनीषा झा
प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन
मूल्य : 225 रु.

संपर्क : गौर आवासन, रविन्द्रपल्ली, माटीगाड़ा, सिलिगुड़ी – 734010, मो. 9832321080

गरिमा श्रीवास्तव का उपन्यास 'आउशवित्ज़ एक प्रेम कथा' पढ़ते हुए

-मंजुरानी सिंह

'आउशवित्ज़ एक प्रेमकथा' एक बेहतरीन किताब है - लेखक हैं, गरिमा श्रीवास्तव।

यह प्रेमकथा है बहुत बेचैन करनेवाली, रुचिकर, जिज्ञासाओं से भरनेवाली, शोधपरक और भरपूर बाँधनेवाली। आपकी इच्छा हो सकती है इसे एक बैठक में खत्म करने की।

इसके पहले गरिमा श्रीवास्तव ने अपनी जिस पुस्तक से मुझे बहुत प्रभावित किया वह है उनकी पुस्तक 'देह ही देश';

युद्धोन्माद की शिकार स्त्रियों के तार -तार हो जाते जीवन का सच्चा दस्तावेज।

उनकी पुस्तक 'आउशवित्ज एक प्रेम कथा' ऐसा उपन्यास है जिसे स्त्री संवेदना की पक्षधर के रूप में याद रखा जाना चाहिए। इसे पढ़कर सहज ही विश्वास होता है कि संकटग्रस्त, उत्पीड़ित, जघन्य यंत्रणाओं से गुजरती स्त्रियों के पक्ष में गुहार लगाने, करुणाजनित संवेदना जगाने, उनके पक्ष में कोई कदम उठाने की मानों लेखिका ने खुदपर कर्ज़ मानकर भरपूर जिम्मेदारी ले ली है।

इस उपन्यास के पहले युद्ध की विभीषिका और उसकी त्रासदी में कराहती मानवता की त्रासद कथा मैंने यान ओतचेनाशेक के चेक भाषा के उपन्यास का निर्मल वर्मा द्वारा अनूदित उपन्यास 'रोमियो जूलियट और अंधेरा' तथा एदिता मौरिस के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'फ्लावर्स ऑफ हिरोशिमा' के मोहन राकेश द्वारा हिंदी अनुवाद' 'हिरोशिमा के फूल' और 'वियतनाम को प्यार' पढ़ा था, – काफी वर्ष पहले जिन्होंने कई रातों की मेरी नींद गायब कर दी थी और मैंने अपनी करुणा जनित निस्पायता का अनुभव किया था।

अब कई वर्षों बाद गरिमा श्रीवास्तव के इस उपन्यास ने पुनः उसी तल पर बेचैन कर दिया है। आज हमारा दुर्भाग्य है कि एक भयानक युद्ध के हम पुनः साक्षी हो रहे हैं, रूस और यूक्रेन का युद्ध थमने का नाम ही नहीं ले रहा है जबकि सबको पता है कि युद्ध का तो निस्संदेह दुष्परिणाम ही होता है। इस संदर्भ में यह एक नायाब उपन्यास है जो युद्ध की त्रासदी को तो उकेरता ही है पर उसके समानांतर जीवन में उपजी प्रेमानुभूति की कथा का संचय भी साथ -साथ करता चलता है जिससे बची हुई जिंदगी मानवीय प्रेम की रसवंतता से सींची चली जाती है। मनुष्य की जिजीविषा मरने से रह जाती है।

स्त्रियां जो युद्ध का संत्रास झेलती हैं वे कई - कई बार मरती और जीवित होती हैं। वे अनबुझी राख होती हैं। वे आत्मा की दीवार होती हैं, पुरुष उसपर अपनी वासना की खूंटी टांग देता है।उपन्यास में 'ऑब्जरवेशन' बहुत तीक्ष्ण हैं। युद्धत्रस्त स्त्री और बच्चे के बारे में न्यूज़, रेडियो, टी.वी. या कि अखबार सभी कितने गाफिल होते हैं, यह तथाकथित विकसित मानव -समाज का खुला सच है। यहूदी कितने प्रतिभाशाली होते थे और होते हैं, वे न होते तो दुनिया में नक्काशी जैसी कोई कला होती इसमें संदेह है पर यह तथ्य कितना विस्मयकारी है कि ऐसी नस्ल वालों को पूरी सभ्य दुनिया एक देश देने को राजी नहीं।उनकी जरूरत तो है, तो रखेंगे गुलाम बनाकर या फिर उन्हें नेस्तनाबूद कर देंगे। जर्मनों का ज़ुनून था यह जो उन्होंने बर्बरतापूर्ण ढंग से साबित किया। उन्हें या तो गुलाम बनाकर रखा या मार डाला।

जलालत भरी जिंदगी के बावजूद अधिकांश औरतें आत्महत्या भी नहीं करतीं, भले ही पूरी जिंदगी सुलगती रहतीं, उनकी अपनी बुझी -जली आंच पर पलते जीवन को वे जीवन देतीं, वल्दियत की समस्या के बावजूद वे उन्हें किसी उन्नत आकाश का द्रष्टा, स्रष्टा बनाकर ही दम लेतीं और छोड़ती हैं। उपन्यास में अम्मा की बिटिया (असल में नातिन) इसका सार्थक उदाहरण है।

कैसे हिटलर ने आउश्वित्स में हज़ारों गैस चैंबर में स्त्रियों और बच्चों को झोंक दिया ,कैसे

उसने एक पूरी नस्ल को खत्म करने का खूनी खेल खेला इस सबका पक्का दस्तावेज है यह पुस्तक। वैसे तो जेरूसलम,इज़रायल, अरब, जर्मन सबका ऐतिहासिक तथ्य पुस्तकों, म्यूजियम और पुस्तकालयों में मिल ही जा सकता है पर युद्ध की विनाशक परिणति झेलनेवाली स्त्री - योद्धा का कोई इतिहास वहां नहीं मिलता, उनकी चीख पुकार, उनके दमन -दलन का कोई दस्तावेज इतिहास के पास नहीं होता।ज्यादा से ज्यादा जातिवाचक संज्ञा का हिस्सा बनकर वे रह जाती हैं। युद्ध मैदान में वे भी लड़ती रहती हैं बल्कि उनकी लड़ाई युद्ध में हुई क्षत - विक्षत की निर्मिति में, टूटे को समेटने, बचाने की होती है। वे युद्ध के बाद के जीवन की जद्दोजहद से जूझती योद्धा होती हैं, जिनके लिए किसी देश या प्रशासक ने कोई 'वीर-चक्र' या 'पराक्रम-चक्र' घोषित नहीं किया। असल में उनकी वीरता अपरंपार होती है, उनके लिए पराक्रमचक्र छूंछा सिद्ध हो जाएगा। हो भले पर यह पुरुष शासित प्रशासन का एक बड़ा श्रेय होता अगर उसे इस तरह का कोई अन्तःबोध होता। यूँ कहें कि सभ्य हो गए मनुष्य जाति का एक गौरव होता, सभ्यता का प्रतीक होता, वैशिष्ट्य होता है जो स्त्रियों के लिए उनके द्वारा परिकल्पित ही नहीं है।

पुरुषशासित व्यवस्था में उसके युद्धोन्माद से रक्तरंजित हुई भूमि व विध्वस्त हुई मानवीय दुनिया को भरपूर दुश्वारी में भी पुनर्जीवित करने की जो मुहिम स्त्रियां छेड़ती हैं, जीवन का जो रंग और राग वो अलापती हैं, जी - जान भर ही नहीं अस्मत को तार -तार होने देकर भी जो सच्ची दुनिया वो खड़ी कर देतीं वह उनके बिना ईश्वर से भी संभव नहीं। गरिमा श्रीवास्तव का उपन्यास 'आउश्वित्स एक प्रेम कथा' स्त्रियों के इस अनोखे सृजनकारी संघर्ष (युद्ध) और जीवटता को भरपूर श्रेय देता है।

उपन्यास में आउशवित्ज की दुर्दांत, मर्मान्तक, बर्बर, नृशंस घटनाक्रम की जहरीली हवा के नीचे से कुछ मानवीय प्रेमकथाओं की क्षीण धारा बहती चलती है साथ -साथ जो उपन्यास से उभरे चोटों, घावों पर शीतल मरहम करती लगती हैं, सच कहें तो ये ही उपन्यास का जीवन हैं, ऊष्मा और ऊर्जा देती हैं, गति और रोचकता भी।

गरिमा श्रीवास्तव की भाषा में एक ताज़गी है, जैसा देश, वैसा भेष, वैसी भूषा, वैसी भाषा। नायिका की अम्मा चूंकि बंगालिन है तो उपन्यास के अधिकांश अध्याय अपने शीर्षक रवींद्र संगीत के किसी बंद से सृजित हैं, साथ ही बंगला के कुछेक संवाद, कुछेक शब्द आदि, बाकि अन्य भाषाओं से चुने या निर्मित वातावरण के अनुकूल। उसी तरह बंगाल की स्थानीयता कायम करने में मछली के प्रकारों, गांव - घरों में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों के प्रयोग का ध्यान रखा गया है। विदेशी पात्रों से स्वाभाविक तौर पर जगह -जगह अंग्रेजी, पोलिश में बातें की गयी है। कहना चाहिए कि लेखिका ने पात्रानुकूल भाषा और वातावरण का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग किया है। कुल मिलाकर 'आउशवित्ज एक प्रेम कथा' हिंदी में एक नए शिल्प का शोधपरक मौलिक उपन्यास है जो पाठक के मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। उम्मीद है कि पाठकों का बड़ा वर्ग इसका स्वागत करेगा।

समीक्षक : मंजुरानी सिंह

पुस्तक का नाम : आउशवित्ज़ एक प्रेमकथा
लेखक : गरिमा श्रीवास्तव, 917678380738
प्रकाशक : वीणा प्रकाशन
मूल्य : 399 रु.

संपर्क : विश्वभारती, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, **पिन.** 731235 **मो.** 9434326334

समीक्षा की अवधारणा और कुँवर नारायण

-मनोहर कुमार कामती

समीक्षा, मनुष्य की चिंतन प्रक्रिया, उसके विवेक, ज्ञान चक्षु एवं ज्ञान साधन पर निर्भर करती है। समीक्षा व मानव-बुद्धि का सादृश्य संबंध है। समीक्षा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव इतिहास। किन्तु व्यवस्थित व साहित्यिक समीक्षा का इतिहास उतना पुराना नहीं है।समीक्षा की नई-नई पद्धतियों का विकास जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रगतिशील प्रक्रिया है और इसी प्रगतिशील प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय व पाश्चात्य समीक्षा केइतिहास में विभिन्न समीक्षा-सिद्धान्तों का उद्भव और विकास हुआ।

समीक्षा अर्थात अच्छी तरह देखना, जाँच करना- 'सम्यक ईक्षा या ईक्षणम'। किसी वस्तु, रचना या विषय के सम्बंध में सम्यक ज्ञान प्राप्त करना, प्रत्येक तत्त्व का विवेचन करना समीक्षा है।यूरोप मेंईसा पूर्व पाँचवींशताब्दीसे इस प्रणाली का प्रचार माना जाता है। 'हिंदी साहित्य ज्ञानकोश' के अनुसार समीक्षा का अर्थ है-'सम्यक निरीक्षण।'[1] वर्तमान में समीक्षा के लिए आलोचना शब्द प्रयोग में लाया जाता है। "समीक्षा के लिए जरूरी है- i. विषय बोध और अर्थ ग्रहण ii. विशेषताओं की उद्धरण सहित व्याख्या और तथ्यों का विश्लेषण iii. मूल्यांकन, मूल्य-निर्णय या महत्व का निरूपण। हर अच्छी समीक्षा मुख्यतः आलोचनात्मक सराहना है।"[2] कुँवरनारायण समीक्षा के संदर्भ में लिखते हैं- "मेरे लिए समीक्षा कृति के साथ चिन्तन है और इसे प्राथमिकता देता हूँ। वैसे समीक्षा कृति के विरूद्ध भीचिन्तन है। समीक्षा स्वयं भी चुनौती है। आप पाएँगे कि विशुद्ध साहित्य शास्त्रियों से भिन्न रचनाकारों का काम भी हमारे पास है और महत्त्वपूर्ण है।"[3]

भारतीय समीक्षाके इतिहास का अध्ययन करे तोभारत में सैद्धांतिक समीक्षा की शुरूआत काव्यशास्त्र से माना जाता है तथा व्यवहारिक समीक्षा की शुरूआत भारतेंदु युग से। सिद्धांतों के निर्माण की पृष्ठभूमि के संदर्भ में कुँवरनारायण बताते हैं कि किस प्रकार रचनात्मक साहित्य को स्पष्ट करने के लिए, उनके गुण-दोषों को उजागर करने के लिए सिद्धांतों का निर्माण हुआ। सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में रचनात्मक-साहित्य था, किंतु कालांतर में रचना से आलोचना नहीं, बल्कि, आलोचना से रचना प्रभावित होने लगी। "संस्कृत रचनात्मक साहित्य के आधार पर साहित्यिक सिद्धांत बने। रचनात्मक साहित्य उनसे अनुशासित नहीं रहा, बल्कि सिद्धांत उनसे आकलित हुए।"4 जिससे यह आवश्यक हो गया कि सिद्धांतों पर पुनर्विचार किया जाएऔर इसी का परिणाम था कि संस्कृत आचार्य ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए, सभी आचार्यों ने यह कोशिश किया कि उनके सिद्धांत अन्य और सिद्धांतों के ऊपर हो। फलस्वरूप भारतीय काव्यशास्त्र में विभिन्न सिद्धांतों का जन्म हुआ, जैसे- रस सिद्धांत के बाद, ध्वनि सिद्धांत, अलंकार सिद्धांत, रीति सिद्धांत और औचित्य सिद्धांत। इन सभी सिद्धांतों के आधार पर रचनाओं की व्याख्या की जाने लगी अथवा रचनाओं में इन तत्वों की तलाश प्रारंभ हुई। रचनात्मक-साहित्य के लिए नवीन सिद्धांतों की खोज, बाद के समय में प्रायः रूक सीगयी।सिद्धांतों के आधार परही रचनाओं का अवलोकन किया जाने लगा जिससे रचना अपनी शक्ति खोती चली गई या रचनात्मक साहित्य का विकास रूक सा गया। एक सिद्धांत प्रत्येक काल की रचना के लिए उपयोगी और सार्थक हो यह आवश्यक नहीं। परिणामस्वरूप "संस्कृत के साहित्य-सिद्धांत रीति-काल में इस प्रकार रूढ़ हो गए कि रचनात्मक-साहित्य का विकासही रूक गया।"5 परंपरागत सिद्धांतों के आधार पर सभी नवीन रचनाओं को देखना रचना के साथ न्याय नहीं है। रचना की सृजन-शक्ति का ह्यास है। इस संदर्भ में कृष्णादत्त पालीवाल का कथन है "परंपरागत प्रतिमान प्रायः नवीन सृजन के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं क्योंकि नया सृजन नवीन बोध एवं प्रतिमानों की मांग करता है। आरोपित समीक्षा के मूल्य सृजन की कमर ही तोड़ देते हैं।"6 कुँवर नारायण रचना के मूल को बचाए रखना चाहते हैं। रचना में जीवन-शक्ति को बनाए रखना समीक्षा का उद्देश्य होना चाहिए,न की जीवन-शक्ति केउदय के मार्ग में अवरोध बनना चाहिए।अपने आलोचनात्मक-लेख 'हिंदी आलोचना

और रचनात्मक साहित्य' के माध्यम से कविता का अवलोकन और निरीक्षण करते है और पाते हैं कि कविता का अवलोकन प्राचीन काव्य-सिद्धांत के आधार पर ही हो रहा है। इसमें कुछ अधिक जोड़ते हुए रीतिकालीन काव्य-सिद्धांतों को केवल जोड़ दिया गया है। नवीन रचनाओं के लिए किसी प्रकार का कोई नवीन मापदंड नहीं है। कुँवर नारायण लिखते हैं "कविता को परखने की कसौटी प्राचीन काव्य-सिद्धांत रहे चाहे वह संस्कृत से सीधे लिए गए हो, चाहे रीति-कालीन साहित्य शास्त्रियों द्वारा आए।"7 नामवर सिंह कविता के नए प्रतिमान में मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्यांकन की बात करते हैं किंतु तुलनात्मक रूप में नवीन व गुणात्मक परिवर्तन के साथ। 'पुनर्मूल्यांकन के माध्यम से हम युग-युग के साहित्य को समकालीन जीवन से जोड़ते चलते हैं।'8 किन्तु समकालीन जीवन की व्याख्या केवल सिद्धांतों के आधार पर संभव नहीं है। उसके लिए साहित्य का अध्ययन करना भी आवश्यक है। साहित्य के मर्म को, उसकी संवेदना को समझना समीक्षा के गुण के विकास के लिए आवश्यक है। 'समीक्षा में खुलापन उसका एक गुण है'? और इस खुलापन के द्वारा ही समीक्षा में वैविध्यता आती है।कुँवरनारायण का कथन है- "1990-91 के बाद से, जब से रूसी मार्क्सवाद का थोड़ा विघटन हुआ है, तब से समीक्षा विचारधारा को लेकर थोड़ा ज्यादा सहज हुई है और लेफ़्टिस्ट आग्रह भी अब उतना कट्टर नहीं रह गया है। इस तरह से जो एकेडेमिक, शास्त्रीय समीक्षा है वह फिर से सामने आई है और एक यह आग्रह है कि कृतियों को एक दूसरी तरह से ज्यादा व्यापक परिदृश्य में समझा जाए। अब एक ज़्यादा खुलापन आया है। इसका क्या नतीजा होगा अभी यह कहना बहुत जल्दी है लेकिन मैं समझता हूँ समीक्षा का क्षेत्र ज्यादा व्यापक होगा जो पहले संकुचित हो गया था, खेमों में बँट गया था।"[10]

कुँवर नारायण केवल सिद्धांत पर ही अपनी बात नहीं रखते हैं बल्कि उस साहित्य पर भी अपनी बात रखते हैं जो साहित्यकारों के द्वारा परंपरा के साथ चलते हुए लिखा जाता है। लीक से हटकर लिखने का सामर्थ्यजिन साहित्यकारों में नहीं,ऐसे साहित्यकार और साहित्य के विषय में भी अपनी लेखनी चलाते हैं। काल के इस युगमेंसमीक्षा पर अपनी बात रखते हुए आगे कुँवर नारायणकामाननाहै कि आज कीहिंदी-समीक्षा किस प्रकार बाह्य परिस्थितियों से बंधी हुई है कि वह पूर्ण स्वतंत्र रूप से रचना का विश्लेषण भी नहीं कर पाती है। यह चिंता का विषय है कि आज की अधिकांश समीक्षा रुचि, लाभ, द्वेष, संबंध, ख्याति आदि कई संदर्भों को ध्यान में रखते हुए की जा रही है जिससे समीक्षा अपना मूल तत्व को खोते जा रही हैं। वस्तुतः "समीक्षा का प्रधान उद्देश्य विशिष्ट कृति का विश्लेषण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करना होता है अतः समीक्षा की प्रक्रिया कृति के विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रक्रिया होती है।"11 किन्तु आपसी लाभ, ख्याति प्राप्त करने के उद्देश्य से कृति के गुण-दोष की अपेक्षा किसी अन्य विषय पर, किसी अन्य पक्षों का गुणगान करते हैंऔररचना की समीक्षा के लिए "आज भी हिंदी समीक्षा के सिद्धांत-पक्ष और व्यवहार-पक्ष में यह विषमता बनी है। अधिकांश समीक्षा के पीछे बिल्कुल व्यक्तिगत रूचि और काव्यानुभव रहता है- समीक्षा के सुचिंतित मापदंड या तो होते ही नहीं, या ऊलजलूल होते हैं। द्विवेदी जी या शुक्लजी जैसे योग्य आलोचकों के के हाथ में हिंदी समीक्षा-शैली अधिक पैनी और विश्लेषणात्मक अवश्य हुई, किंतु उनकी साहित्यिक रुचि मूलतः संस्कृत और रिति-कालीन कविता से ही बनी रही।"[12] अतः समीक्षक द्वारा किसी मत विशेष से बंध जाने के कारण रचनाकारों का आलोचना में प्रवेश करना, समकालीन समय से पूर्व ही चलता रहा है, जो छायावादी युग में रचनाकारों की समीक्षा में प्रवेश के रूप में देखा जा सकता है। छायावाद में कविता के नए संदर्भ और मान को स्पष्ट करने की जिम्मेदारी कवियों ने स्वयं अपने कंधों पर उठाया। यही स्थिति समकालीन कविता में भी देख सकते हैं, जब आलोचक किसी एक पक्ष की दृष्टि से रचना का अवलोकन करते हैं और शेष पक्ष को अनदेखा कर देते हैं तो उस हाशिए के पक्ष को प्रकाश में लाने का दायित्व स्वयंकवि/ रचनाकारने अपने हाथों में लेते हैं। क्योंकि "नए साहित्य के अनुरूप समीक्षा भी पहले रचनात्मक क्षेत्र से आती है, बाद में विशुद्ध समीक्षा के क्षेत्र से"[13] और यह तभी संभव है जब हिंदी में रचनात्मक और समीक्षात्मक संबंधों को बेहतर तरीके से समझा जाए। "किसी पुस्तक, सांस्कृतिक उत्पादन या कला-प्रदर्शन की समीक्षा में अपने को आरोपित करने की जगह समीक्षक द्वारा समीक्षा वस्तु की विशेषताओं को उभारना जरूरी

होता है, ताकि पाठक या दर्शन उसकी तरफ आकर्षित हो, भले समीक्षा में कुछ कमियों की ओर भी संकेत किया जाए।"[14] इस प्रकार की समीक्षावायवीय विस्तृत होती मरुभूमि की परिधि से बाहर निकाल समीक्षा के जनपक्षधरता के उन्नयन मार्ग को प्रशस्त करती है।

भारतीय समीक्षा के साथ ही कुँवर नारायण पाश्चात्य समीक्षा की भी बात करते हैं। आज के समय में किस प्रकार आलोचक पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांत की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। उनके द्वारा कृतियों के अवलोकन में केवल पाश्चात्य सिद्धांतों की झलक दिखती है। स्पष्ट करते हैं कि किसी साहित्य से प्रभावित होना एक बात है और किसी साहित्य से प्राप्त जानकारी (ज्ञान) से प्रभावित होना दूसरी बात है। साहित्य में प्राप्त ज्ञान आवश्यक है किंतु "एक ओर तो ऐसे आलोचक हैं जिनकी आलोचना पर, अन्य हिंदी आलोचकों की अपेक्षा, विदेशी समीक्षा का अधिक प्रभाव रहा है।"[15] इससे हिंदी आलोचना में द्वैध मान्यता आ गयी।यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब पाश्चात्य-समीक्षासिद्धांतों को बिना तर्क की कसौटी पर कसे, प्रयोजन-हीन एवं हीनार्थ, समीक्षक अपनी समीक्षा में इन सिद्धांतों का प्रयोग करते हैं। कुँवर नारायण समीक्षा की उन्नत संस्कृति के विकास के लिए ज्ञान के सभी माध्यमों को आवश्यक मानते हैं और यही कारण है कि सार्थक व अर्थवान भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा को पक्ष-विपक्ष के रूप में न देख और न ही दोनों को एक दूसरे का वैकल्पिक बताकर विरोधी खेमों मेंरखने के पक्ष में है।ज्ञान के इन दो ध्रुवों के लिए 'या' के स्थान पर 'और' शब्द का प्रयोग करते हुए, दोनों में उत्पन्न विरोधाभास को समाप्त करने की कोसिस करते हैं।वहीं दूसरी तरफआलोचक के संदर्भ में लिखते हैं कि आपसी संबंधों को मधुर बनाने के लिए आलोचक रचना के गुण बतातेरहते हैं। कभी-कभी रचना से अधिक रचनाकार के ऊपर अधिक बातें होती है। रचनाकार के व्यक्तित्व पर सारी आलोचना केंद्रित हो जाती है। समीक्षा की दृष्टि रचना से हटकर रचनाकार पर केंद्रित हो जाती है। "ये समीक्षाएं उस कोटि की होती है जिनसे पुस्तक के बारे में कम मालूम होता है, आलोचक के बारे में ज्यादा।"[16] इस प्रकार की समीक्षा करने वाले आलोचकों के संदर्भ में कुँवर नारायण का मानना है कि उनमें हौसला तो है, पर प्रतिभा नहीं। इन समीक्षाओं के अतिरिक्त एक समीक्षा ऐसी भी होती है जिससे लेखक का नाम, प्रकाशक, शीर्षक, मूल, आकार आदि की जानकारी तो मिलती है किंतु साहित्य की सटीक और सूक्ष्म विश्लेषण अभाव रहता है। "कठिनाई से कहीं वह जिंदा और ताजी समीक्षा देखने को मिलती है जो समीक्षक की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि एवं विवेकपूर्ण प्रतिक्रिया की परिचायक हो।"[17] समीक्षा एवं समीक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह साहित्यव जीवन को सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि के साथ देखें। सूक्ष्म में विराट और विराट में सूक्ष्म की तलाश करें। समीक्षा का खेमे में बंटना समीक्षा व साहित्य- दोनों का अपने लिए ह्रास की भूमि निर्मित करने के समान है। "समीक्षा के मामले में इस तरह की कट्टर रेखाएँ या दल नहीं बनें और ध्यान कृति पर रहे। हर कृति खुद बताती है कि उसे किस तरह देखा जाए, और उन्हीं शर्तों पर उसका आकलन होना चाहिए। जहाँ तक विचारधाराओं का सवाल है या पूर्वग्रहों का सवाल है, वह जरूर रहते हैं लेकिन उनको इतना आक्रामक नहीं होना चाहिए कि वह दूसरी तरह के लेखक को विलकुल स्वीकार ही न कर सकें। अच्छा लेखन हमेशा समझ में आता है चाहे इसके पीछे कोई भी विचारधारा हो, वहाँ कोई घपला नहीं होने पाता। घपला तब होता है जब घटिया लेखन को हम विचारधारा के बल पर स्थापित करना चाहते हैं। इससे फ़ॉल्स वैल्यूज़ या मिथ्या मूल्य पनपते हैं, जिससे सावधानी की जरूरत है।"[18] कुँवर नारायण समीक्षा को किसी भी पक्ष से अलग एक स्वतंत्र पक्ष मानते हैं। उनके लिए समीक्षा का केवल एक ही पक्ष है, वह सत्य का पक्ष हैऔरसमीक्षा को सदैव इसी का पक्ष लेना चाहिए और इसी के पक्ष में रहना चाहिए,न की आपसी लाभ के लिए सत्य के पक्ष का त्याग कर असत्य के पक्ष में जा खड़ा होना चाहिए। कुँवर नारायण लिखते हैं "वह (समीक्षक) वकील होते हुए भी किसी का प्राइवेट वकील नहीं, सरकारी वकील है। उसका पक्ष साहित्यिक सत्य का पक्ष है, किसी फीस का पक्ष नहीं।"[19] और यह तभी संभव है जब समीक्षक और समीक्षा आत्मालोचना करें। आत्मालोचना के लिए सदैव तत्पर रहे। क्योंकि 'आलोचनात्मक आत्मनिरीक्षण दरअसल पुनर्गठन और विकास की कुंजी है।'[20] कबीर भी आत्म आलोचना की ही बात करते हैं जो मन को निर्मल कर देती है।कुँवरनारायण के शब्दों में- "अपने को ठीक से समझे बिना हम दूसरों को भी ठीक से नहीं समझ

सकते। अच्छे सर्जनात्मक लेखन की एक बड़ी पहचान यह भी है कि उसके पीछे किस स्तर का लेखकीय व्यक्तित्व और सोच-समझ झलकती है-अपने बारे में भी और दूसरों के बारे में भी। इस अर्थ में भारतीय चिन्तन की शब्दावली और भाषा मुझे दर्शन की अपेक्षा मनोविश्लेषण के ज़्यादा नज़दीक लगती है। इस चिन्तन की दीर्घ परम्परा का गुणात्मक असर हमारे सोचने के ढंग, संस्कृति और भाषा पर भी पड़ा है। खासकर कविता में 'मैं' की परिकल्पना पर जिसके पीछे अद्वैत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है, के विस्तार में 'अन्य' के साथ समत्व की सम्भावना को खोजा गया है। द्वैत में द्वन्द्व और संघर्ष की भूमिका बनती है जिसे हम पश्चिम के Survival वाले सिद्धान्त में पहचान सकते हैं।"[21]

समीक्षाआवश्यकतानुसारअपने तीन रूपों में अर्थात कभी अनुयायी की तरह, कभी पथ-प्रदर्शक की तरह तो कभी साथी की तरह रचना (जीवन) के मार्ग को प्रशस्त कर सकती है। कुँवर नारायण की समीक्षा संबंधित अवधारणा किसी भी वाद, पुर्वानुमान व पूर्वाग्रहों से मुक्त, निर्वैयक्तित्व नैसर्गिक दृष्टि सम्पन्न,विरेचन पूर्ण समीक्षा पद्धतिपरआधारित है। ज्ञान के विभिन्न माध्यमों एवं विभिन्न मन्तव्यों में तादात्म्य स्थापित कर समन्वय पूर्ण समावेशी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।उन्नत एवं विकसित समीक्षा के लिए आत्मलोचन को उन्होंने आवश्यक माना है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. नाथ शंभू, सम्पादक, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 3998 2. वही, पृष्ठ 3998 3.भारद्वाज, विनोद, सम्पादक, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं कुँवर नारायण की भेंटवार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,संस्करण 2010, पृष्ठ26-27 4.नारायण, कुँवर,आज और आज से पहले [आलोचना], राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,पहलीआवृत्ति 1998, पृष्ठ 27 5. वही, पृष्ठ 27 6. पालीवाल कृष्ण दत्त, हिंदी आलोचना का सैद्धांतिक आधार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, वाणी संस्करण 2009, पृष्ठ 90 7. नारायण, कुँवर, आज और आज से पहले [आलोचना], राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 1998, पृष्ठ 28 8. सिंह, नामवर, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, नौवीं आवृत्ति 2013, पृष्ठ 73 9. नाथ शंभू, सम्पादक, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 3998 10. नारायण, अपूर्व, सम्पादक ,जिये हुए से ज़्यादा कुँवर नारायण के साथ संवाद, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2023, पृष्ठ 33 11. दीक्षित आनंदप्रकाश, आलोचना प्रक्रिया और स्वरूप, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 13 12. नारायण, कुँवर, आज और आज से पहले [आलोचना], राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 1998, पृष्ठ 29 13. वही, पृष्ठ 31 14. नाथ शंभू, सम्पादक, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 3998 15. नारायण, कुँवर, आज और आज से पहले [आलोचना], राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 1998, पृष्ठ 26 16. वही, पृष्ठ 43 17. वही, पृष्ठ 44 18. नारायण, अपूर्व, सम्पादक,जिये हुए से ज़्यादाकुँवर नारायण के साथ संवाद, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2023, पृष्ठ 32-33 19. नारायण, कुँवर, आज और आज से पहले [आलोचना], राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 1998, पृष्ठ 44 20. नाथ शंभू, सम्पादक, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 417 21. भारद्वाज, विनोद , (सम्पादक), तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं कुँवर नारायण की भेंट वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृष्ठ 29

संपर्क : शोधार्थी, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय, राजा राममोहनपुर,
दार्जिलिंग, पि. 734913 **मो.** 6294916705

रवि कथा : साहित्यिक गलियारे की एक अनोखी प्रेमकथा

-ऋतु वर्णवाल

"अतीत की स्मृति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक आकर्षण है। अर्थपरायन लाख कहा करे कि गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा पर हृदय नहीं मानता,बार बार अतीत की ओर जाया करता है।" ये उक्तियाँ कहीं है पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने जिसका उल्लेख राजमल बोरा अपनी किताब 'भाव, उद्वेग और संवेदना' में करते हैं। अतीत के प्रति यह आकर्षण मुझे लगता है जीवन के सहज गतिशील बहाव के प्रति आकर्षण है।हमारे जीवन का अतीत कहीं पीछे नहीं छूटता बल्कि हमारे वर्तमान में ताक झांक करता है। कभी ओट के पीछे से देखता है तो कभी एकदम सामने आ जाता है। अतीत की यादें हर मनुष्य की जमा पूंजी है, धरोहर है। इसी धरोहर को हमेशा के लिए अपने हृदय में संजोकर रखने की चाह लिए ममता कालिया वर्तमान समय में संस्मरण लेखन कर रही हैं।

कई उत्कृष्ट उपन्यासों एवं कहानी संग्रह की रचयिता ममता कालिया अपनी रचनाओं को कलाकारी के बेल बूटे से नहीं सजाती बल्कि जीवनवादी यथार्थ ही उनकी सभी रचनाओं का सौंदर्य है। उन्होंने कई अच्छे संस्मरण लिखे हैं। 'कितने शहरों में कितनी बार' संस्मरण में मथुरा, पूना, इंदौर, दिल्ली, मुंबई, इलाहाबाद और कलकत्ता हर शहर बोलता है, इन शहरों में न केवल ममता कालिया ने अपना जीवन बिताया है बल्कि इन शहरों को जीया भी है। 'कल परसों के बरसों' एवं 'जीते जी इलाहाबाद' भी ममता जी द्वारा रचित बेहद रोचक एवं श्रेष्ठ संस्मरण हैं, वहीं 2020 में प्रकाशित आलोच्य संस्मरण 'रवि कथा' भी बेहद चर्चित संस्मरण है। रवि कथा में जैसा नाम से ही ज़ाहिर है कि इसमें रवि की कथा अर्थात साठोत्तरी कहानी के प्रमुख कथाकार, प्रमुख संपादक रवींद्र कालिया की कथा है और ये कथा कहती है उसी समय की बेहद महत्वपूर्ण कथाकार एवं रवींद्र जी की धर्मपत्नी ममता कालिया। ममता कालिया रवि कथा को इस अंदाज में बयां करती हैं कि न केवल रवींद्र कालिया बल्कि उस समय का खास कर इलाहाबाद का पूरा साहित्यिक वातावरण हमारे सामने सजीव हो उठता है। साथ ही ये कथा एक प्रेमिका एवं एक पत्नी द्वारा कही गई है तो इसमें दाम्पत्य जीवन के तमाम रंग मौजूद हैं जिसमें नोकझोंक हैं लड़ाइयां है, और एक दूसरे के प्रति अटूट प्रेम है। परिवार की जिम्मेदारी के साथ ही साहित्य के प्रति भी जिम्मेदारी है। लैला-मजनू, हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल जैसे ना जाने कितनी प्रेम कथाएं हमने कई बार देखी हैं पढी हैं। इन प्रेम कथाओं में बड़े बड़े षडयंत्र हैं एवं एक दुख भरा अंत है, किंतु रवि कथा एक ऐसी प्रेम कथा है जिसमें लगभग 50 वर्षों का लंबा साथ है। रोज़मर्रा के जीवन की चिल्ल-पों है, झगड़ें हैं, पचड़े हैं, अंतहीन जिम्मेदारियां हैं, लेकिन फिर भी, एक दूसरे के लिए अनंत एवं कभी भी न टूटने वाला प्रेम है। इस अटूट प्रेम के विभिन्न रंगों के आनंद के लिए यह कथा जरूर पढ़ी जानी चाहिए।

इकत्तीस अध्यायों में विभक्त 'अंदाज-ए-बयाँ उर्फ रविकथा' उस रवि की कथा कहती है जो ताउम्र अलबेले रहे, मलंग रहे एवं साहित्यिक गतिविधियों में पूरी तरह लिप्त रहें। इसी रवि की तमाम संघर्षों के, उनके बनने एवं बिगड़ने की कहानी इस रवि कथा में है जो हमें लगातार प्रेरणा देती है। दो अध्यायों में रवींद्र कालिया की बीमारी का जिक्र है। आई सी यू, कीमोथेरेपी, पोर्टल मेन अवरूद्ध होना, डॉक्टर, आपातकक्ष, सुइयां, वेंटीलेटर, जीवन रक्षक मशीन आदि इन सबके बीच रवि की जीवटता एवं कर्मठता का वर्णन है। आसन्न मौत के बारे में जानकर भी रवींद्र कालिया का अनवरत पूरे जज्बे एवं प्रखरता के साथ काम करते रहना हमें चौंकाता है। "इस लिहाज से रवि के जीवन में रोजाना मुठभेड़ और पलायन आमने सामने होते हैं । यह उनकी जीवन-शक्ति थी जो वे जानलेवा हालात में भी हंसते हंसाते जीते गए।" रवींद्र कालिया को

साथी, शराब एवं साहित्य का नशा था। रवींद्र कालिया को केंद्र में रखकर ममता कालिया कई ऐसी कथाएं कहती है जो इसे नितांत निजी के घेरे से बाहर निकाल कर समाज में अंगड़ाई लेने का अवसर देता है।

पूरी किताब तब और महत्वपूर्ण हो उठती है जब ममता जी अपने एवं रवींद्र जी के समय के साहित्यिक हलचल का पूरा चित्र हमारे सामने ला देती हैं। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, अमरकांत, मार्कण्डेय इसके साथ ही छठवें दशक के कहानीकारों जैसे दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह,ज्ञानरंजन,गिरिराज किशोर आदि का वर्णन पूरे पुस्तक के साहित्यिक मूल्य में वृद्धि करता है। संस्मरण लेखन ईमानदारी से लिखने के लिए साहस की बेहद जरूरत होती है और यह साहस हमें इस संस्मरण में हर जगह देखने को मिलता है। ममता कालिया उस प्रसंग का उल्लेख बड़ी बेबाकी से करती है जहाँ मोहन राकेश रवींद्र कालिया को पहली बार शराब पीने देते हैं एवं तभी से रवींद्र कालिया शराब पीने के आदि होते जाते हैं। मोहन राकेश जिन्हें हम उनके द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' 'लहरों के राजहंस', 'आधे- अधूरे' (नाटक), 'अंधेरे बंद कमरे' 'न आने वाला कल' (उपन्यास) आदि कालजयी रचनाओं के माध्यम से जानते हैं वहीं इस पुस्तक द्वारा हमें उनकी व्यक्तिगत जीवन मे झांकने का मौका मिला। पत्नी से संबंध विच्छेद के कारण वे बेहद दुख में थे लेकिन बुलंद ठहाकों से वे अपना गम छुपाने का कौशल भी जानते थें। यहाँ उस प्रसंग का भी उल्लेख है जब रवींद्र कालिया द्वारा कृष्णा सोबती पर लिखे संस्मरण की कुछ बातों से चिढ़कर सोबती जी पलटवार करती हुई रवींद्र कालिया पर एक व्यंग्यात्मक लेख लिखती हैं। रवीन्द्र जी इससे बेहद आहत होते हैं। जबकि छपने से पहले रवींद्र कालिया कृष्णा सोबती को पूरा संस्मरण पढ़कर सुनाते हैं तब वे एतराज नहीं जताती। ममता जी लिखती हैं "यकायक एक सुबह कृष्णा जी ने हल्ला बोल हमले की तरह जनसत्ता में लेख लिखा 'मेरे छह फुटिया एडिटर साहब'।" 'अगले से अगले रोज़ सूरज उगने के बाद कृष्णा जी के अंदर से एक औसत बदमिजाज और शिकायती वृद्धा निकली जिसे लगा कि उनसे छोटे लेखक की यह मजाल कैसे हुई कि उन पर दोस्ताना लेख लिखे।'

ममता कालिया ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में रोज़ के मोर्चे पर लड़ती स्त्री का वर्णन किया है। इस रवि कथा को पढ़कर मालूम चलता है वो स्त्री कहीं और से नहीं बल्कि ममता कालिया के अंदर से ही निकली है। रवि कथा में ममता कथा भी स्वतः वर्णित होती चली जाती है। उनके जीवन में हर कदम पर संघर्ष था चाहे वो नौकरी हो, घर हो, बच्चे हो या फिर साहित्य लेखन, सब एक साथ संभालना सच में कितना मुश्किल होता होगा। फिर भी वे दाम्पत्य की डोर को कसकर पकड़ के रखती हैं।इसके साथ ही अपने रवि के लिए सहारा भी बनती हैं। रवींद्र कालिया का जिद्दी एवं अड़ियल स्वभाव,उनकी निराली दिनचर्या, शराब का नशा इन सब से जूझते हुए ममता लगातार साहित्य सृजन करती रहतीं। अंतहीन जिम्मेदारियों एवं रवींद्र कालिया की कठोरता ने उन्हें एक दिन इतना तोड़ दिया कि वो गंगा में आत्महत्या करने पहुँच गई। बिना झिझके वे इस प्रसंग का उल्लेख करती हैं।कहीं ना कहीं मुझे लगता है जितना साहस वो रविकथा लेखन में दिखाती है उतना शायद निजी जीवन में नहीं दिखाया है।यह संस्मरण पढ़ कर तो ऐसा ही लगता है जैसे अक्सर ममता ही समझौता कर लेती थीं।रवि तन जाते थे और वे झुक जाती थीं शायद इसकी वजह यह रही होगी की वो एक स्त्री से पहले एक पत्नी और एक माँ थीं।यह भी एक सच था कि बात बहुत आगे बढ़ने से पहले रवींद्र कालिया उन पर अपना प्यार उड़ेल देते थे।

दाम्पत्य जीवन के तमाम मीठे तीखे अनुभव से सजी यह पुस्तक ममता कालिया को एक पत्नी, एक बहू एवं एक माँ के रूप में भी हमारे सामने लाती है। रवींद्र जी जितने तड़फड़,अलबेले एवं मलंग थे ममता कालिया उतनी ही सामाजिक थी। एक अध्याय में उन्होंने विवाह के तुरंत बाद के पलों का बेहद जीवंत एवं रोचक वर्णन किया है। मारवाड़ी परिवार से पंजाबी परिवार में आकर तालमेल बिठाना उनके

लिए मुश्किल था। पंजाबी खान-पान का बेहद दिलचस्प वर्णन है। गिलास भरकर मलाई मार कर चाय, मुट्ठी मारकर गंडा प्याज, मक्के दी रोटी, सरसों दा साग एवं विभिन्न भरवाँ पराठों का ऐसा वर्णन है जिससे मुँह में पानी आ जाता है। कड़ाके की ठंड को धत्ता बताकर चार बजे तड़के उठकर नल पर कपड़े धोती पंजाब की महिलाओं का बेहद सजीव वर्णन है। कुल मिलाकर पूरा पंजाब ही जैसे हमारे सामने आ जाता है। रवींद्र कालिया एवं ममता कालिया जी की शादी तब हुई थी जब हिंदी साहित्य के अधिकांश रचनाकारों की जोड़ियां टूट रही थी। ऐसे में उनके लंबे विवाहित जीवन का राज क्या है, यह पुस्तक पढ़कर समझ में आ जाता है। दाम्पत्य जीवन के सभी रस यहाँ मौजूद हैं, जहाँ प्रेम सौ प्रतिशत थे तो झगड़े भी निन्यानबे प्रतिशत नहीं थे। पक्की बात है कि इनके जीवन में असहमतियां थीं, तंज थे, तेवर थे, दोषारोपण भी थे जिम्मेदारियों की खींचतान भी थी लेकिन सबसे ऊपर था एक दूसरे के प्रति अटूट प्रेम जो सब कुछ झेलकर फिर से हरा भरा हो जाता।

यह पुस्तक विभिन्न रंगों में रंगी किताब कही जा सकती है, जिसमें कहीं बहुत ही चटक रंग है तो कहीं स्लेटी रंग सी गहरी उदासीनता। रवीन्द्र एवं ममता कालिया की पहली मुलाकात का दिलकश अंदाज में बयां है तो कभी चिकित्सा के चक्रव्यूह में फंसे रवींद्र कालिया के तकलीफ भरे अंतिम दिनों के भी चित्र हैं। साथ बिताए उन पलों का वर्णन है जहाँ दोनों एक दूसरे से प्रेमी बन कर लंबी लंबी सैर पर निकलते हैं तो एक पक्षी के उड़ जाने से दूसरे साथी अर्थात् ममता जी के काट खाने वाले अकेलेपन, एकांतवास एवं मनहूसियत का भी वर्णन है, जिससे नौकर चाकर भी ऊबकर दूर भागते हैं।

बातों-बातों में ममता जी आज के पाठकों एवं रचनाकारों को हिंदी साहित्य एवं उसकी सभा गोष्ठियों का महत्त्व समझा देती हैं क्योंकि वहाँ जाने से एकरसता तो टूटती ही है वहीं दिमाग को भी ऑक्सीजन मिलता है। संस्मरण में कई सामाजिक मुद्दों को भी उठाया गया है। पुलिस के काम करने के तरीके पर जहाँ सवाल उठाया गया है वहीं बड़े बड़े क्लब हाउस, बड़े बड़े रेस्टोरेंट के छल-छद्म एवं दिखावे का वर्णन इस संस्मरण को कहीं न कहीं आज से जोड़ता है।

सबसे अंत में फोटो एलबम है जिसमे उस समय के कई साहित्यकारों के दुर्लभ चित्र हैं।कुछ महत्वपूर्ण पत्र भी हैं। ममता एवं रवि जी के कुछ पुराने चित्र हैं जिन्हें देखने के बाद कई घटनाएं जैसे एकदम से सजीव रूप में हमारी आँखों के सामने आ जाती हैं।

रवि कथा में कई ऐसी बातों का उल्लेख है जिन्हें हम ममता जी के अन्य संस्मरणों में पढ़ चुके हैं। इसी कारण कई बार कई बातें गड्डमगड्ड हो जाती हैं।गालिब छुटी शराब से भी कई घटनाएं मिलती हैं, लेकिन एक ही प्रसंग को लेकर रवींद्र कालिया एवं ममता कालिया दोनों के अलग अलग नज़रिए का पता चलता है।

इसमें कोई शक नहीं कि कर्मठ एवं प्रतिपल अपने कार्य के प्रति लगनशील रवींद्र कालिया को जानने के लिए एवं उस समय के महत्वपूर्ण साहित्यिक हस्ताक्षरों को समझने में यह पुस्तक बेहद महत्वपूर्ण है। कैंसर जैसी भयावह बीमारी से लड़ते हुए रवीन्द्र जी ने जिस तरह साहस के साथ जीवन जिया है एवं इन सब में ममता कालिया ने जिस तरह हर बार हर कदम पर साथ दिया है,वह वाकई काबिलेतारीफ है और हमें लगातार प्रेरणा देती है।

संपर्क : शोधार्थी, काजी नजरुल विश्वविद्यालय, आसनसोल, **पिन.** 713340, **मो.** 9851661897

समकालीन हिंदी कवियों की कविता में स्त्री जीवन

-दुर्गावती प्रसाद

समकालीन हिंदी कविता में जीवन एवं जगत का वास्तविक चित्रण सूक्ष्मता के साथ किया गया है। समकालीन हिंदी कविता में आमजन के जीवन का चित्रण मिलता है। समकालीन हिंदी कवि विभिन्न विषयों पर अपनी लेखनी चलाते हैं, जिसमें महंगाई, भ्रष्टाचार, दलित, मजदूर, स्त्री जीवन का चित्रण प्रमुख है। समकालीन समय अनेक विमर्शों के दौर का समय है। इनमें स्त्री विमर्श एक महत्वपूर्ण विमर्श है।

प्रकृति ने इस सृष्टि को चलाने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की रचना की। दोनों को समान अधिकार दिया, परन्तु यह समानता कालांतर में पराधीनता में बदल जाती है। स्त्री को पुरुष से कमतर आँका जाने लगा। इसके साथ ही स्त्री अधीनता का इतिहास शुरू हो जाता है। समय- समय पर स्त्री जागरूकता के द्वारा स्त्री समानता और स्त्री जीवन पर विचार किए गए तथा स्त्री पराधीनता से मुक्ति के प्रयास किए गए। समकालीन कविता के दौर में स्त्रियों की समानता, स्वाधीनता उनके अधिकारों की बातें खुल कर हुई हैं। समकालीन हिंदी कवियों के यहाँ स्त्री चेतना मिलती है।

विशेषरूप से समकालीन हिंदी कवि रघुवीर सहाय, अरुण कमल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश की कविताओं में स्त्री जीवन की समस्यायों के चित्रण के साथ - साथ उन समस्यायों के समाधान भी मिलते हैं साथ ही समकालीन जीवन की विभिन्न समस्याएं जैसे- आमजन की समस्याएं,राजनीतिक-सामाजिक स्थिति, रिश्तों की स्मृतियाँ, बाजार आदि का चित्रण हुआ है ।

समकालीन हिंदी कविता के वरिष्ठ कवि रघुवीर सहाय ने स्त्री को भी समाज के अन्य शोषित वर्ग की भांति मानते हैं। इनके प्रमुख कविता संग्रहों में 'सीढ़ियों पर धूप में' (1960), 'आत्महत्या के विरुद्ध' (1965), 'हंसो - हंसो जल्दी हंसो' (1975), 'लोग भूल गए हैं' (1982), 'कुछ पत्ते कुछ चिट्ठियां' (1989), एक समय था (1994) प्रमुख है।

इनकी स्त्री संबंधी कविताओं में 'पढ़िए गीता', 'औरत की जिंदगी', 'दयावंती का कुनबा', 'किले में औरत', 'स्त्री', 'अधेड़ औरत', 'खड़ी स्त्री', 'अभी तक खड़ी स्त्री', 'बड़ी हो रही लड़की', 'नारी' प्रमुख हैं।

साहित्य में स्त्रियों का चित्रण हमेशा से होता आ रहा है । पहले उसे दया, प्रेम, सहनशीलता और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति के रूप में देखा जाता था, परन्तु रघुवीर सहाय के यहाँ स्त्री एक नए रूप में सामने आती है । वह स्त्री आम स्त्री है जो शोषित है, दुःखी है उसके भी कुछ सपने हैं जिसे वह पूरा करना चाहती है।

रघुवीर सहाय की कविता में जो स्त्री आती है वह छायावादी कविता की स्त्री से भिन्न है। छायावादी काव्य की नारी अलौकिक रूप संपन्न थी। उसमें उल्लास था, प्रेम था, भावुकता थी, कहीं से दुख नहीं था सिवाय एक विरह के। रघुवीर सहाय की कविता में जो स्त्री आती है वह श्रम में रत है उसके दुख-दर्द हैं। वह बच्चा को गोद में लिए बस में चढ़ रही है। कवि कहता है –

'बच्चा गोद में लिए / चलती बस में / चढ़ती स्त्री'1

रघुवीर सहाय के बारे में डॉ.अनन्तकीर्ति तिवारी कहते हैं –"रघुवीर सहाय की सबसे बड़ी विशिष्टता है कि स्त्री का इस्तेमाल वे इस समाज की भयावह सच्चाई को व्यक्त करने के लिए करते हैं। उनके पहले काव्य – संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' से लेकर उनके अंतिम संग्रह तक स्त्री, लड़कियाँ कवि की कविता के केन्द्रीय चरित्र हैं। स्त्री की समूची यंत्रणा, इस पुरुष प्रधान समाज में उस पर किया गया अत्याचार, उसके सारे दुखों को वे अपनी कविताओं में समेटते हैं।' 2

'पढ़िए गीता' नामक कविता में कवि मध्यवर्गीय स्त्री का व्यंग्य के माध्यम से चित्रण करता है। व्यंग्य के माध्यम से स्त्री जीवन का चित्रण करने का प्रमुख

उद्देश्य स्त्री को इस स्थिति से बाहर निकालना है। कवि इस स्थिति के लिए कहीं न कहीं स्त्री को दोषी मानता है। कवि स्त्री को अपनी अस्मिता और अस्तित्व की पहचान करने के लिए प्रेरित करता है। कवि कहता है -

'पढ़िए गीता / बनिए सीता / इन सब में लगा पलीता / किसी मूर्ख की हो परिणीता / निज घर बार बसाइए।'3

वही कवि 'खड़ी स्त्री' के माध्यम से स्त्री स्वालंबन की बात करता है, यहां स्त्री का खड़ा होना आत्मनिर्भरता की ओर संकेत करता है। वहीं स्त्री जीवन की विडंबना का भी चित्रण मिलता है कि स्त्री सदियों से अपने अधिकारों की मांग में खड़ी है। कवि कहता है'

'वह खड़ी थी— / क्योंकि ऐसे ही वह पूर्ण होती है।'4

स्त्रियों को बचपन से ही समाज द्वारा बनाए गए दायरें में बाँधने का प्रयास किया जाता है। उसे घर परिवार की जिम्मेदारी उठाना, सबकी देख भाल करना सिखाया जाता है। जिससे ससुराल में उसकी प्रशंसा हो सके। माता-पिता का लड़की को यह सब शिक्षा देना अच्छी बात है, परन्तु हर समय लड़की ही समझौता करे यह सोच अच्छी नहीं है। एक बेटी जब किशोरावस्था की ओर बढ़ने लगती है तो माता-पिता को उसकी विवाह की चिंता होती है। विवाह करना उसकी सुरक्षा करना माना जाता है, लेकिन विवाह के बाद स्त्रियों के साथ ससुराल में भी दुर्व्यवहार किया जाता है। कवि कहता है कि यह कैसी विडंबना है कि स्त्रियों की सुरक्षा उसके विवाह से मानी जाती है। लेकिन आज के समय में विवाह के बाद तो लड़की उससे भी ज्यादा असुरक्षा का अनुभव करती है। कही दहेज़ के नाम पर तो कही कन्या भ्रूण हत्या के नाम पर। एक लड़की की पीड़ा को देखकर एक पिता के मन में बहुत तकलीफ होती है। कवि एक पिता की संवेदना व्यक्त करता हुआ कहता है -

'जब तुम बच्ची थी तो मैं तुम्हें / रोते हुए देख नहीं सकता था / अब तुम रोती हो तो देखता हूं।'5

दरअसल कवि जब स्त्री समस्या की बात करता है तो वह दया नहीं दिखाता, बल्कि उन्हें उनका अधिकार दिलाने की बात करता है क्योंकि समाज में अगर स्त्री- पुरुष बराबर है तो उसके साथ दया क्यों दिखाया जाए? पूर्व में तमाम रचनाकारों की कृति में अनुगामिनी, अबला आदि शब्द तो दिखाई देते हैं, परंतु रघुवीर सहाय के काव्य में इन सबका अभाव है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय ने स्त्री उत्थान की तमाम कविताएं लिखी है। कवि यह बताना चाहता है कि समाज में स्त्रियों के लिए तमाम कानून बनाए गए हैं लेकिन अभी भी व्यवहारिक रूप से यह लागू नहीं हुआ है। इसके लिए कवि कहता है कि स्त्रियों को खुद लड़ाई लड़नी होगी अगर वह आत्मनिर्भर होकर प्रतिरोध नहीं करेगी तो उनका हक नहीं मिल पाएगा। अब वक्त आ गया है कि स्त्रियाँ अपना हक छीन कर लें। किसी भी बात को बिना जांचे परखे स्वीकार न करें।

समकालीन कवि उदय प्रकाश की कविता अपने आस-पास के जीवन एवं जगत से जुड़ी हुई कविता है। इनकी कविताओं में जीवन के यथार्थ का चित्रण हुआ है। साथ ही साथ संवेदनाओं का भी विस्तार हुआ। समकालीन कवि उदय प्रकाश की कविताओं में भी स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता हैं। उदय प्रकाश के प्रमुख काव्य संग्रहों में 'सुनो कारीगर' (1980), 'अबूतर कबूतर' (1984), 'रात में हारमोनियम' (1998), 'एक भाषा हुआ करती है', 'अंबर में अबाबील' (2019) प्रमुख हैं। उदय प्रकाश के स्त्री संबंधी कविताओं में 'औरतें', 'तपस्या', 'नींव की ईट हो तुम दीदी', 'बेटी', प्रमुख हैं।

स्त्री का संघर्ष अपनी निरंतरता के साथ प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में रहा है। स्त्री युगों-युगों से पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा शोषित होती आ रही है। वह एक अजीब सी घुटन, निराशा और कुंठा से घिरी होती है। स्त्री के इसी अतृप्त जीवन को उदय प्रकाश की कविताओं में स्थान मिला है। कवि कविता के जरिए स्त्री जीवन के प्रत्येक पहलू का चित्रण प्रस्तुत करता है ।

कवि की 'औरतें' कविता स्त्री जीवन की पीड़ा से रूबरू कराती कविता है। कवि का स्त्री दशा को लेकर चिंता होना महज कवि का कविता लिखना

नहीं है बल्कि समाज के प्रति जिम्मेदारी है। एक स्त्री के साथ होने वाले अत्याचारों को देखकर आँख मूंद लेना और मूक बन जाना एक संवेदनशील साहित्यकार का काम नहीं है।

उदय प्रकाश की 'औरतें' कविता में प्रत्येक वर्ग की स्त्रियों का चित्रण मिलता है वह घरेलू हो या कामकाजी या मजदूर वर्ग की स्त्रियाँ सभी वर्ग की स्त्रियों की दशा दयनीय और शोचनीय है। समाज के सभी वर्ग की स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार को कवि अपनी कविता के माध्यम से समाज के सामने लाते हैं। समाज के लोगों को स्त्री पर हो रहें अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने की सलाह देते हैं। उदय प्रकाश की कविता की स्त्री दिन भर मेहनत-मशक्कत कर रोजी-रोटी कमाने वाली स्त्री है। कवि कहता है-

'एक पोंचा लगा रही है / एक बर्तन मांज रही है / एक कपडे पछिंट रही है / एक बच्चे को बोरे पर सुलाकर सड़क पर रोड़े बिछा रही है' ।6

'औरतें' कविता में स्त्री शोषण, स्त्री प्रताड़ना और स्त्री अत्याचार की भव्य तस्वीर दिखाई देती हैं। दहेज उत्पीड़न से स्त्री दुखी और अपमानित होकर या तो स्वयं ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर रही है या परिवार के लोग ही कोई षड्यंत्र रच कर उसे मौत के घाट उतार देते हैं। एक ओर वह अन्याय सहकर भी चुप्पी साध रखी है और वह अपनी किस्मत को ही दोष देती है''

'अस्पताल में हजार प्रतिशत जली हुई औरत का कोयला दर्ज कराता है / अपना मृत्यु-पूर्व बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने / उसके अलावा बाकी हर कोई है निर्दोष / गलती से उसके हाथों ही फूट गयी किस्मत और फट गया स्टोव।'7

उदय प्रकाश की दुनिया की औरतें अपने घर में ही असुरक्षित महसूस करती है ।

'वह पति या सास के हाथों मार दिये जाने से डरी हुई सोती-सोती अचानक चिल्लाती है।'8

इस प्रकार के अमानवीय और असहनीय व्यवहार के बाद भी वह स्त्री सुहागन रहने की कामना करती है और पति की लंबी आयु के लिए करवा चौथ का ब्रत भी करती है ।यह एक स्त्री के लिए कितनी बड़ी विडम्बना है'

'वह औरत जो सुहागन बने रहने के लिए रखे हुए है करवा चौथ का निर्जल ब्रत'9

आज कन्या भ्रूण हत्या से समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा होने का भय बढ़ चुका है। कन्याओं को गर्भ में ही हत्या किये जाने के नृशंस व्यवहार का कवि बहुत ही दर्दनाक चित्रण करता है'

'हजारों-लाखों छुपती है गर्भ के अंधेरे में / इस दुनियां में जन्म लेने से इंकार करती हुई / वहाँ भी खोज लेती हैं उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें / वहाँ भी भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार।' 10

रघुवीर सहाय की तरह उदय प्रकाश भी बेटी को याद करते हैं। रघुवीर सहाय की कविता 'बड़ी हो रही लड़की' में एक पिता का अपनी बेटी के लिए चिंता दिखाई देती है । वहीं उदय प्रकाश भी बेटी के प्रति चिंतित है। कवि उदय प्रकाश तो बेटी के बिना घर की कल्पना भी नही कर सकते हैं। 'बेटी' नामक कविता में कवि बेटी को याद करता है । बेटी का होना घर-परिवार में कितना जरूरी होता है यह भी बताता है । जब आज कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ावा दिया जा रहा वहाँ कवि बेटियों को महत्त्व देता है । कवि कहता है-

'किस तरह बोला जाय ? / बिटिया का न होना / क्या-क्या ना होना / हुआ करता है?'11

उदय प्रकाश के यहाँ स्त्री जीवन का बखूबी चित्रण हुआ है। कवि स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करते हुए समाज के लोगों से स्त्री पर होने वाले अत्याचार और अन्याय को दूर करने का आग्रह करता है। स्त्रियों को भी सचेत रहने का सलाह देता है। इस प्रकार देखते हैं कि कवि उदय प्रकाश वास्तव में स्त्री के दुख, दर्द से गुजरते हुए कविता लिखते हैं, इसमें कोरी कल्पना नहीं वास्तविकता है।

अरुण कमल समकालीन हिंदी कविता के प्रमुख कवि हैं। अरुण कमल की कविता में जीवन के विविध क्षेत्रों का चित्रण मिलता है। अरुण कमल की कविताओं में आमजन के दुःख, दर्द, किसान, मजदूरों की स्थिति, प्रकृति चित्रण, स्त्रियों की स्थिति इत्यादि का चित्रण मिलता है। जीवन का कविता से गहरा लगाव होता है और अरुण कमल की कविता जीवन

के गहरे लगाव की कविता है। अरुण कमल के प्रमुख काव्य संग्रहों में 'अपनी केवल धार'(1980), 'सबूत' (1989), 'नए इलाके में' (1996), 'पुतली में संसार' (2004), 'मैं वो शंख महाशंख', 'योगफल' प्रमुख हैं।

अरुण कमल की कविताओं में समसामयिक जीवन का संवेदनशील लेखा-जोखा मिलता है। अरुण कमल की कविताएं स्त्री जीवन एवं मुक्ति के सवालों को उठाती हैं। अरुण कमल की कविताएं स्त्री जीवन का चित्रण ही नहीं करती बल्कि उसे अत्याचार से मुक्ति के लिए प्रेरित करती हैं। स्त्री को अपने अधिकारों के लिए बोलने की प्रेरणा देती हैं। अरुण कमल भी उदय प्रकाश की तरह मूकदर्शक बने रहने के खिलाफ हैं। समाज के सभी वर्ग के लोगों से गुजारिश करते है कि मूकदर्शक बनकर न रहें बल्कि सक्रिय योगदान करें। अरुण कमल के काव्य संग्रहों में स्त्री जीवन के कई प्रसंग और समस्याएं खुलकर चित्रित हुई हैं। स्त्री की तमाम यातनाओं के चित्रण के बावजूद उम्मीद को बरकरार रखते हैं। अन्याय के खिलाफ स्त्रियों को खड़ा करते हैं । आज की स्त्री अपने घर की चौखट लाँघ कर बाहर संसद तक पहुंच रही है। स्त्री भी प्रगति के पथ पर बढ़ रही है। अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को वह केवल समझ ही नहीं रही बल्कि इसका प्रतिकार भी कर रही है। कवि को भी उम्मीद है की स्त्री को इस अव्यवस्था, अन्याय, अत्याचार से मुक्ति मिलेगी। स्त्री संबंधी कविताओं में 'एक बार बोलती', 'जिस पर बीता', 'कल्याणी', 'कुबड़ी बुढ़िया', 'ऐसा क्यों हो रहा है' और 'लेडी पैसेंजर' महत्त्वपूर्ण हैं।

'एक बार भी बोलती' कविता में कवि स्त्री के मूक बने रहने के खिलाफ है। कवि कहता है पुरुष सदियों से स्त्री पर अत्याचार करता आ रहा है इसका प्रमुख कारण स्त्री का मूक बनी रहना है। अपने प्रति आवाज न उठाना भी एक कायरता है। कवि स्त्री को अपनी मूकता छोड़ने और आवाज उठाने की बात करता है। कवि स्त्री समाज से प्रश्न करता है कि तुम कुछ क्यों नहीं बोलती'

'मैंने उसे इतना डाँटा / गलियाँ दीं / दो तीन बार पीटा भी / फिर भी वह चुपचाप सारा काम करती गयी — / अभी भी मैं समझ नहीं पाया / कि वह कभी बोली क्यों नहीं / मरते वक्त भी वह कुछ नहीं बोली / आंखें बस एक बार डोली और — / वह कभी बोली क्यों नहीं / एक बार भी बोलती।'12

'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया' नामक कविता में कवि स्त्री की संघर्षशीलता और उसकी बेबसी का चित्रण प्रस्तुत करता है। एक स्त्री पूरा जीवन घर गृहस्थी के काम-काज में लगी रहती है और एक दिन वह मर जाती है। हद तो तब है जब उसे कोई याद नहीं करता। वह बुढ़ापे में और भी असहाय हो जाती है। वह आर्थिक रूप से भी विपन्न है। उसके पास अपना कहने के लिए न घर न सम्पति है। वह बेचारी वृद्धावस्था में भी श्रम करती है फिर भी वह अपना पेट नहीं पाल पा रही है। इसके माध्यम से कवि स्त्री की विपन्नता और समाज में स्त्री की स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है । कवि स्त्री को सचेत करता है कि स्त्री के लिए आर्थिक स्वालंबन बहुत जरूरी है। आर्थिक स्वालंबन के बिना वह बेबस होकर अपनी जिंदगी का निर्वाह करती है । कवि कहता है-

'अचानक ही चल बसी / हमारी गली की कुबड़ी बुढ़िया — दिन भर कपड़ा फींचा, घर को धोया / मालिक के घर गयी और बर्तमान भी मांजा – / ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया !'13

वहीं कवि एक 'नवजात बच्ची को प्यार' कविता में समाज में व्याप्त बेटा-बेटी में फर्क को सामने रखता है । बेटा के जन्म होने पर सभी खुशी मनाते हैं, वहीं बेटी के जन्म लेते ही गमगीन हो जाते है। यह भेदभाव कवि को अंदर से सालता है। कवि कहता है -

'ओ नन्ही-सी बच्ची / क्या हुआ जो तुम्हें किसी ने चूमा तक नहीं / तुम्हारी माँ मुंह फेरे रोती रही रात भर / और तुम्हारा पिता लौट गया बाहर ही बाहर।'14

इसके पीछे का कारण कवि तलाश करता है तो पता चलता है कि इसके पीछे परिवार के लोगों की चिंता है। परिवार के लोग जानते हैं कि स्त्रियों की दशा समाज में क्या है ? स्त्री को दोयम दर्जा प्राप्त है। दहेज जैसा दानव समाज में व्याप्त है। इस कारण वह नवजात बच्ची को लेकर चिंतित है। ऐसे समाज में लोगों का चिंतित होना जायज है। स्त्री के

प्रति कुरीतियों को देखकर घर परिवार के लोग परेशान हैं-

'जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुजार दी जिंदगी / जिस माँ ने अपनी पति की मार चुपचाप सही / और जिस पिता ने देखा है तिलक दहेज का क्रूर व्यापार / वे कैसे खुश होंगे?'15

इस प्रकार देखा जाता है कि अरूण कमल न केवल समाज में अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं बल्कि समाज की कुरूपताओं का भी चित्रण करते हैं। स्त्री के बारे में समाज में व्याप्त कुरूपताओं का चित्रण करने के साथ- साथ इसके कारणों के जड़ तक भी जाते हैं। वहीं कवि स्त्री मुक्ति के लिए स्त्री को मूक न रहकर सवाल करने और अपने अधिकारों के प्रति उदासीन न होकर सक्रिय होकर अन्याय और अत्याचार का विरोध करने की प्रेरणा देते हैं ।

राजेश जोशी समकालीन कविता के कवियों में से एक प्रमुख कवि हैं जिनकी कविताएं सामाजिक सरोकार की कविताएं हैं। जीवन के संकट में ही उम्मीद जगाती हैं। उनकी कविताओं में मनुष्यता को बचाए रखने का निरंतर संघर्ष है। साथ-ही स्त्री जीवन की व्यथा का भी चित्रण मिलता है। उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रहों में 'समरगाथा', 'एक दिन बोलेंगे पेड़', 'मिट्टी का चेहरा', 'धूपघड़ी', 'नेपथ्य में हंसी', 'दो पंक्तियों के बीच', 'चांद की वर्तनी' इत्यादि हैं।

'उसकी गृहस्थी' कविता में कवि एक गृहस्थ और कामकाजी दोनों प्रकार की स्त्री का चित्रण करता है। कामकाजी स्त्री जब घर लौटती है तो वह एक और दूसरी जंग की तैयारी करती है। घर बाहर दोनों तरह के जिम्मेदारी का निर्वाह करती हुई स्त्री का चित्रण करता हुआ कवि कहता है -

'थकी हारी लौटी है वो आफिस से अभी / टिफिन बॉक्स को रसोई में रखती है / मुंह पर पानी के छींटे मारती है / बाहर निकल आई लट को वापस खोंसती है / उठती है और रसोई में जाने को होती है।'16

'एक आदिवासी लड़की' की इच्छा कविता में कवि साधारण वर्ग की एक लड़की की इच्छा व्यक्त करता है। उसे समाज में ज्यादा नहीं बल्कि कुछ अधिकार अपनी इच्छा को व्यक्त करने का अधिकार चाहिए जो आज की स्त्री की मांग। वही मांगे कभी इस कविता के माध्यम से समाज में रखता है वह स्वच्छंदता एवं स्वतंत्र होकर समाज में जी सके। कवि कहता है -

'लड़की की इच्छा है / छोटी सी इच्छा / हॉट इमलिया जाने की।'17

'क्यों रोई वह इतने बरस बाद' कविता में समाज में व्याप्त स्त्रियों के प्रति धारणा को व्यक्त करता है। समाज में स्त्रियाँ आज भी अपने नाम से नहीं पहचानी जाती हैं। उसे उसके पति के नाम से जोड़कर देखा जाता है। उसे फलाने की बहू,बेटी,पत्नी के नाम से जाना जाता है। समाज की इसी सच्चाई को कवि उजागर करते हुए कहता है'

'गांव में ऐसा ही रिवाज था कि औरत के नाम / उनके पतियों के नाम का पद नाम बिगाड़ कर लिए जाते थे / डॉक्टर की बीवी डॉक्टरनी और कलेक्टर की कलेक्टराइन कहलाती थी।'18

कवि 'रैली में स्त्रियां' कविता के माध्यम से निम्न वर्ग की महिलाओं का चित्रण करता है। उनकी स्थिति अत्यंत खराब है। वह रैली में नारे लगा चल रही है परंतु उन्हें घर परिवार बच्चे सभी की चिंताएं सता रही है और वह रैली में चली जा रही है। अपने नवजात बच्चों को लेकर भी चल रही है। अपनी मांगों को मांग रही है। उनके भी कुछ सपने, इच्छाएं हैं । वह भी अपने बेहतर जीवन की प्रतीक्षा कर रही है। वह थक चुकी है फिर भी उसके हौसले कम नहीं हुए हैं।

'कहीं कभी तो कुछ बेहतर होगा उनके जीवन में / यही सोचकर घर द्वार छोड़कर इस शहर तक आई हैं यह स्त्रियां / थक चुकी हैं बुरी तरह पर थके नहीं हैं उनके हौसले।'19

राजेश जोशी, उदय प्रकाश और रघुवीर सहाय की तरह ही बेटियों के प्रति भावुक है । कवि 'बेटी की विदाई' कविता में भावुक पिताओं का चित्रण प्रस्तुत करता है। यह चित्रण वास्तविक एवं मर्मस्पर्शी है। बेटियों के प्रति पिताओं की चिंता कवि के साथ-साथ पाठक वर्ग को भी होने लगती है। कवि बेटियों के बिना घर की कल्पना ही नहीं कर पा रहा है। कवि कहता है'

'तुमने देखा है कभी बेटी के जाने के बाद का कोई घर ? / जैसे बिना चिड़ियों की सुबह / जैसे बिना तारों का आकाश।'20

समकालीन कवियों ने रिश्तों पर अनेक कविताएं लिखी हैं। राजेश जोशी भी मां, बहन, बेटी पर कविताएं लिखते हैं। कवि स्त्री के इन रूपों के चित्रण के माध्यम से स्त्री जीवन का चित्रण प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार देखते हैं कि समकालीन हिंदी कवियों की कविता में स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। विशेषरूप से रघुवीर सहाय, उदय प्रकाश, अरुण कमल, राजेश जोशी की कविताओं में स्त्री पर हो रहें अत्याचार, अन्याय, शोषण का चित्रण तो हुआ ही है साथ ही साथ इस अन्याय, अत्याचार शोषण के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा भी देते हैं। स्त्री स्वयं ही अपने पर हो रहे अत्याचारों को जब दूर करने का प्रयास नहीं करेगी तब तक स्त्री मुक्त नहीं हो सकती है।

समकालीन कवि स्त्रियों की मां, बहन, पत्नी, बेटी,सखी,सहयोगी हर रूप की प्रतिष्ठा करता है। समकालीन कवि मजदूर, निम्न वर्ग की स्त्रियों का भी वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि समाज में निम्न वर्ग की स्त्रियों की स्थिति और भी खराब है।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री को एक नई पहचान दी गई है। उन्हें संघर्ष के लिए प्रेरित किया गया है। स्त्रियों को स्वयं को पहचानने पर बल दिया गया है। स्त्रियों को आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनने की प्रेरणा दी गई है। अपने अस्तित्व को पहचानने पर बल दिया गया है। स्त्री सौंदर्य की नई परिभाषा दी गई हैथ् स्त्री के श्रम और संघर्ष में उसका सौंदर्य देखा गया है। उसे पुरुष की सहयोगी के रूप में देखा गया है थ् समकालीन कवियों की कविताएं स्त्री को एक नई पहचान देने की कोशिश करती हैं। एक नई चेतना तथा नया रूप प्रदान करती हैं।

संदर्भ - सूची : 1.सहाय, रघुवीर, आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृति '2014,पृष्ठ संख्या' 48.

2. तिवारी, डॉ.अनन्तकीर्ति, रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति और काव्यभाषा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या – 92.

3. सहाय,रघुवीर, सीढियों पर धूप में, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2008, पृष्ठ संख्या-115.

4. सहाय, रघुवीर, आत्म हत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण – 2009, पृष्ठ संख्या – 49.

5. सहाय, रघुवीर,लोग भूल गये हैं, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, नौवाँ संस्करण – 2019, पृष्ठ संख्या-29.

6. प्रकाश, उदय,रात में हारमोनियम,वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण - 2015, पृष्ठ संख्या – 33.

7. वही, पृष्ठ संख्या – 32.

8. वही,पृष्ठ संख्या-31.

9. वही, पृष्ठ संख्या-31.

10. वही,पृष्ठ संख्या-33.

11. प्रकाश,उदय अंबर से आबाबील, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण-2019,पृष्ठ संख्या-31.

12. कमल, अरुण, सबूत, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली, पेपर बैक, तृतीय संस्करण – 2021, पृष्ठ संख्या-18 -19.

13. कमल,अरुण,अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली ,आवृति संस्करण – 2012, पृष्ठ संख्या-30.

14. वही, पृष्ठ संख्या-48.

15. वही, पृष्ठ संख्या-49.

16. जोशी,राजेश,दो पंक्तियों के बीच,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,चौथा संस्कर – 2019,पृष्ठ संख्या-40.

17. जोशी,राजेश धूप घड़ी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृति – 2014 ,पृष्ठ संख्या-38.

18. जोशी,राजेश,दो पंक्तियों के बीच,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,चौथा संस्करण-2019,पृष्ठ संख्या-104.

19. जोशी,राजेश,चाँद की वर्तनी,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,तृतीय संस्करण – 2019,पृष्ठ संख्या – 32.

20. वही,पृष्ठ संख्या- 40.

संपर्क : हिंदी विभाग, (रिसर्च स्कॉलर), उत्तर बंग विश्वविद्यालय, राजा राममोहनपुर, दार्जीलिंग,
पिन. 734013 **मो.** 7001372234

प्रेम और राजनीतिक चेतना के कवि मदन कश्यप : पनसोखा है इन्द्रधनुष

-अरुण कुमार तिवारी

मदन कश्यप समकालीन हिंदी कविता जगत के अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। वे समकालीन हिंदी कविता में सघन राजनीतिक चेतना एवं लोक संवेदना संपृक्त रचनाकार के रूप में परिचित हैं। इनके रचना-कर्म में वैश्विक परिदृश्य के वैविध्य के साथ-साथ स्थानीयताबोध भी गहराई से विन्यस्त है। मदन कश्यप के अब तक छह कविता–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं – उदास है पृथ्वी (1992), नीम रोशनी में (2000), कुरूज (2006), दूर तक चुप्पी (2014), अपना ही देश (2016), पनसोखा है इन्द्रधनुष (2019)। मदन कश्यप को कवि–कर्म के लिए कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजा गया है। प्राप्त पुरस्कारों में हैं-शमशेर सम्मान, केदार सम्मान, नागार्जुन सम्मान, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान।

मदन कश्यप के इन संग्रहों में मानवीय सम्बन्ध एवं उसके विविध रूप तो हैं, उसकी संवेदनात्मक संरचना में भी वैविध्य है। शोषक वर्ग एवं उनकी विभिन्न चालाकियों के प्रति गहरा संघात है, लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी है, संघात के समानांतर जनता के प्रति गहरा आत्मिक लगाव भी है। समकालीन कविता अपने समय और समाज की खामोशी को अभिव्यक्त करने वाली कविता है। यह कविता अपने समय के अंतर्विरोधों को शिद्दत के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ है। समकालीन कविता पदबंध पर कवि केदारनाथ सिंह का कहना है कि - "रही बात समकालीनता की, यह शब्द आया और जल्द ही कॉनटेम्परोरी के अर्थ में जाना जाने लगा। और जो भी कॉनटेम्परोरी पोइट्री की चर्चा विदेशों में होती थी, उसकी देखा-देखी हिन्दी में भी हुई।.. तो अगर 65-67 के बीच ये शब्द करन्सी में आया, प्रवाह में आया और आगे ध्यान रहे इसका इस्तेमाल किया जाने लगा बातचीत में और फिर तब से करीब–करीब 60 वर्षों से हिन्दी कविता समकालीन बनी हुई है। यह कुछ ज्यादा है इतने कालखंड को लगातार समकालीन कहा जाए।"[1] कवि केदारनाथ सिंह इस पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। समकालीन हिन्दी कविता अपने समय की विसंगति,विडंबना को व्यक्त करने वाली कविता है। सत्तर के दशक में विशेष रूप से आपातकाल के बाद की कविता केवल मूल्य के स्तर पर ही नहीं बल्कि अपनी संरचना, प्रकृति में भी पहले की कविता की अपेक्षा ज्यादा जनपक्षधर हुई। वैश्वीकरण, मुक्त बाजार, उदार अर्थव्यवस्था, सूचना क्रांति आदि ने सामाजिक और मानवीय संबंधों में बड़ा बदलाव लाया। वैश्वीकरण नए साम्राज्यवाद का सिर्फ़ व्यापारिक आक्रमण नहीं रहा, सांस्कृतिक पतन का भी जिम्मेदार रहा है। कवि राजेश जोशी का कहना है कि – "विनोद कुमार शुक्ल की एक पंक्ति हैं; 'घड़ी देखना समय देखना नहीं होता' समकालीनता को घड़ी या कैलेंडर से तय करना मुमकिन नहीं। समकालीनता को अर्जित करना होता हैं, अपने समय के साथ मुठभेड़ करते हुए उसमें हस्तक्षेप करते हुए। समकालीनता रचना की अंतर्वस्तु के साथ-साथ शिल्प और भाषा से जुड़ा प्रश्न है। समकालीनता में एक किस्म की समसामयिकता अन्तर्निहित होती है।"[2] मदन कश्यप अपने समय और समाज की स्पंदन और सामाजिक गतिकी को अच्छे ढंग से पकड़ते हैं, पूरे इतिहास की निरंतरता के साथ। यही विशिष्टता उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग करती है। मदन कश्यप साहित्य के समय निर्धारण को दशकों में बांटकर देखना सही नहीं समझते, वे आन्दोलनों एवं प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजन को सही एवं तर्कसंगत समझते हैं। कविता को दशकों में बांटकर देखने से इसके पीछे वैचारिकता का निषेध काम कर सकता है जो बहुत खतरनाक हो सकता है। प्रवृत्तियों का विस्तार दो दशक तक हो सकता है और तीन, चार साल तक भी। कविता की दृष्टि से नब्बे का दशक बहुत महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता ने भारतीय समाज पर भूमंडलीकरण के व्यापक प्रभाव को देखा है।

बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में मदन कश्यप की कविताएँ पाठकों का ध्यानाकर्षण तो, करती हैं लेकिन नब्बे के दशक में हिंदी की दुनियां उन्हें कवि के रूप में मान्यता देती हैं। कविता, राजनीति, इतिहास, जनांदोलन, और आदिवासी जीवन का अध्ययन इस कवि का कार्य क्षेत्र रहा है। व्यापक जीवनानुभव से समृद्ध यह कवि अपनी पीढ़ी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाकार है। ध्यान देने की बात है कि जहाँ हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि चार - पांच कविताओं के अलावा अपने संग्रहों में अपने को रिपीट करते चले जा रहें हैं वहाँ मदन कश्यप अपने प्रत्येक संग्रह में अपने को दुहराव से बचाते हैं। हर नये संग्रह में यह कवि कंटेंट हो या अभिव्यक्ति के ढंग में कुछ नया व ताजा–टटकापन लेकर आता है। कवि को भली-भांति मालूम है कि भूमंडलीकरण केवल पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है। उसका दावा बिल्कुल खोखला है कि सारी दुनिया का खान-पान, वेश – भूषा, सोच-विचार बोली-बानी आदि एक जैसा होगा। किसी तरह का भेद–भाव नहीं रहेगा। सभी एक ही कंपनी के खान–पान करे तो कंपनी को बड़ा लाभ होगा ही, देशी वस्तुओं का विस्थापन भी होगा। हम अपनी जड़ और जमीन से विस्थापित भी होंगे। कवि भूमंडलीकरण की चालाकिओं को समझता हैं –

"अभी भी बचे हैं
कुछ आखिरी बेचैन शब्द
जिनसे शुरू की जा सकती हैं कविता
बची हुई हैं कुछ उष्ण सांसें
जहाँ से संभव हो सकता है जीवन।"3

'अभी भी बचे हैं' शीर्षक यह कविता मनुष्यता के हित में संघर्ष की यह कविता अपनी उम्मीद नहीं छोड़ती और निरंत्तर उस बृहत्तर वंचित जनता का पक्ष लेती है जो अब तक वंचना का शिकार रही है।

मदन कश्यप की कविताएँ अपने छोटे आकार में भी व्यापक सन्दर्भ को समेटती है, और समय के बड़े सवालों से टकराती है, जैसे दुःख, सबसे बड़ा पाप, संकट, दंतेवाड़ा इत्यादि। मदन कश्यप की एक महत्वपूर्ण कविता है 'घसियारे'-

"घास काट कर
घास काटने की जगह बनाते हुए
आगे बढ़ रहा है घास में दुबका लड़का
उसके वजूद को निगल जाने की
घास की कोशिशें हो रही हैं नाकाम!"4

कवि मदन कश्यप के छठे कविता संग्रह 'पनसोखा है इन्द्रधनुष' की कविताओं में आस्वाद के कई स्तर हैं।' प्रेम की बहुत गहरी आदिम अनुगूंजें, वर्तमान की धूल- मिट्टी का धूसर रंग, देशकाल के विकट यथार्थ से मुठभेड़ करने की तत्परता और वह सजग परंपरा-बोध भी जिसने समकालीन हिंदी कविता को अपनी तरह के संस्कार दिए हैं।

संग्रह की पहली कविता ही बता देती है कि मदन कश्यप सुघड़, सतर्क और संवेदनशील कवि हैं। भाषा और जीवन दोनों की तहें वे पहचानते है। मदन कश्यप जितने प्रतिरोध के कवि है उतने ही प्रेम और सौन्दर्य के भी कवि है। पनसोखा है इंद्रधनुष शीर्षक की कविता में इंद्रधनुषी प्रेम को इस कविता में सशक्त मेटाफर के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इंद्रधनुष, वर्षा की बूंदों को रोकने का कार्य करता है लेकिन कवि का कहना है कि वर्षा रुक भी जाए तो कोई बात नहीं प्रेम की वर्षा अनवरत जारी रहना चाहिए। मदन कश्यप के यहाँ प्रेम छायावादी कवियों के सूक्ष्म, काल्पनिक प्रेम से इतर है, नई कविता के कवियों के यहाँ के सिर्फ़ मांसल और देह के प्रेम से भी अलग है। यही मदन कश्यप के यहाँ का डिपार्चर पॉइंट है, इनके यहाँ प्रेम रूह, आत्मा का प्रेम है, देह का निषेध नहीं है, बल्कि देह का अतिक्रमण कर आत्मा का प्रेम है।

"हम इंद्रधनुष थे लेकिन पनसोखे नहीं अपनी–अपनी देह के भीतर ढूंढ रहे थे अपनी – अपनी देह बारिश की बूंदें जितनी हमारे बदनपर थी उससे कहीं अधिक हमारी आत्मा में।"5

हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार –"मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचकर खुद आश्चर्य हुआ था कि मदन कश्यप मूलतः प्रेम के कवि हैं। उनकी प्रेम कविताओं में उनका कवि समृद्ध रूप में, शायद अपने स्वाभाविक व्यक्ति रूप में प्रगट हुआ है, इसलिए अपने ढंग का है।"6

यह समझने में समय नहीं लगता कि हम जीवन की सूक्ष्म समझ से भरी कविताएँ पढ़ने जा रहे

हैं। खोने की नियति को उपलब्धि की तरह पाने की विडंबना के बीच अंगुलिओं को झुलसाती हुई प्रेम की पसु लगती हुई सिगरेट एक अनूठा बिम्ब बनाते हैं। लेकिन कविता का चरम तब आता है जब वह लगभग प्रेम की अमूर्तता और स्त्रीत्व – पुरुषत्व के परे जाकर भी घटित होती है।

प्रेम पर कुछ बहुत मर्मस्पर्शी कवितायँ इस संग्रह में है। 'एक अधूरा प्रेम' कविता तो अपनी उत्कटता और अपने फैलाव में इतनी गहन है कि बृहद व्याख्या की मांग करती है। लेकिन मदन कश्यप की कविता में प्रेम जितना गहरा है, सामाजिक यथार्थ की गहरी पकड़ भी है। महानगर में फूटपाथ पर सोने वालों के साथ हुए हादसों के बाद न्याय का खिलवाड़ हो या बीमारिओं को शहरों और नदियों के नाम देने की संवेदनहीनता। संग्रह पढ़ते हुए ख्याल आता है मदन कश्यप इस दौर के उन कवियों में है जिन्होंने बिल्कुल तात्कालिक और राजनीतिक प्रसंगों पर कविताएँ लिखते हुए इस साम्प्रदायिक से जम कर यह कविता रक्षात्मक नहीं है बल्कि अपने प्रतिरोधात्मक गुण से व्यवस्थाजनित शोषण से मुक्ति की कविता है। मदन जी की कविताएँ सघन अनुभूति और गहराई से उत्पन्न हैं। मदन कश्यप का नया कविता संग्रह 'पनसोखा है इन्द्रधनुष' की एक बहुत महत्पूर्ण कविता 'जब पैसे बहुत कम थे' शीर्षक से है जिसे पाठकों ने खूब सराहा है–

"गन्ने में मिठास ज्यादा थी
एक आने में मुढ़ी-बतासे से पेट भर जाता था
मिठाई की जरूरत क्या थी
मोथे की जड़ें मीठी लगती थीं।"7

आलोचक अरुण होता का कहना है कि - "भूमंडलीकरण के लिए सभ्यता का अर्थ पश्चिमी सभ्यता है तो मूल्य से आशय बाजार- मूल्य है। पुनः यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के नाम पर `वसुधैव कुटुंबकम` को नहीं बल्कि संस्कृतियों के दमन और उत्पीड़न के कारण वर्चस्वशाली संस्कृति के आक्रामक रूप को प्रस्तुत करता है।"8 यहाँ बाजार एक प्रवृति की तरह आता हैं जिसने हमारी सोचने-समझने की शक्ति तथा विवेकशीलता को निष्क्रिय बना दिया है। चयन और पसंदगी का महत्पूर्ण पक्ष भी अब बाजार ही तय करने लगा हैं। उपर्युक्त कविता में यही चिंता व्यक्त की गई है। आज एक ध्रुवीय विश्व में डॉलर के आधिपत्य में हम एक तरह से उपनिवेश ही बन चुके हैं। इरान, रूस से सामान के बदले सामान खरीद-बिक्री पर वैश्विक साम्राज्यवादी अमेरिका इन देशों पर प्रतिबन्ध लगा देता हैं, क्योंकि इससे उसकी साम्राज्यवादी पकड़ कमजोर होती हैं। स्थानीय हुए बिना वैश्विक नहीं हुआ जा सकता हैं। मदन कश्यप हाशिए पर पड़े हुए विषय और प्रसंगों को उठाते हैं, इसी तरह 'निकारागुआ', 'अमेरिका', 'डॉलर' जैसी कविताएँ पूंजीवादी साम्राज्यवादी ताकतों के चालाक षड़यंत्र का पर्दाफाश करती हैं और चुप्पी के ख़िलाफ जनता के प्रतिरोध की आवाज बनती हैं। मदन जी के काव्य संसार में लोक और शहर का सह-अस्तित्व दिखाई पड़ता है, लेकिन बिद्रूप शहरीकरण और पूंजीवाद का अनिवार्य विरोधी तत्व स्पष्ट मिलते हैं।

हिंदी कविता में प्रेमिकाओं, बेटियों, इत्यादि रूपों पर काफी व्यापक और विविधता के रूप में अंकित करने वाले मदन जी स्त्री संवेदना को उसके समग्र रूप में अंकित करते हैं। मदन कश्यप की 'बेरोजगार पिता की बेटी' शीर्षक कविता हमारे समाज में बेटी को लेकर सोच और समझ को प्रश्नाकित करती है–

"वह सबके बीच चलती है
सबसे छिपती हुई
उसे दौड़ना और गिरना मना है
ऐसा हुआ तो अनर्थ हो सकता है
फट सकता हैं
वह भूख से कहीं ज्यादा लोगों की नजरों से डरती है।"9

इस मार्मिक कविता में बेरोजगार पिता की बड़ी होती बेटी की पीड़ा साकार होती है तो उसका मर्म पूरे परिवेश में उभर कर सामने आता है। बेटी की संवेदना और कविता का भावबोध पारिवारिक संवेदना के साथ घुल मिलकर व्यक्त हुआ है। भावपूर्ण भाषा में तरल संवेदना प्रवाह में बेटी की चिंता की महत्पूर्ण कविता है। जवान बेटी की पीड़ा निम्नवर्गीय परिवार की नियति है। बेरोजगार पिता की बेटी किस तरह से दुनिया से नजरें चुराती हैं, वह भयावह

अनिश्चितता में जीती हैं कि उसे भय है कि लोग उसकी दयनीयता को देख न सके। वह अपनी पीड़ा, संत्रास को अकेलेपन में जीने को अभिशप्त है–

यह पीड़ा सिर्फ बेटी की नहीं रह जाती, वह वृहत्तर समाज, वंचित शोषित तबके की नियति बनकर उभरती है। बड़ी होती बेटी की जिंदगी से शुरू हुई यह कविता हमारे समय के वृहत्तर शोषित वर्ग की आन्तरिक आलाप की कविता है जो आजादी के पचहत्तर साल के बाद भी भयावह गरीबी में जीने को अभिशप्त है। निराला की 'वह तोडती पत्थर' कविता की तरह "जो मार खा रोई नहीं"। कविता पढने के बाद हम वहीं नहीं रह पाते जहाँ पढ़ने या कविता से गुजरने से पहले होते हैं, मदन जी की कविता हमारे अन्दर से हलचल पैदा कर हमारी संवेदना और विवेक को उद्बुद्ध कर नयी चेतना और दृष्टि देती है। गांव और समाज में नया सामंती वर्ग पैदा हुआ है जिसके पास जादूगर की कला है जिसने आम लोगों को अपनी जाल में जकड़ लिया है। सामाजिक और आर्थिक विषमता इस समाज में अपने उच्च स्तर पर है। पांच फीसदी लोगों के पास अस्सी फीसदी संसाधन है देश का। सत्ता बड़े बड़े राज घरानों तथा पूंजीपतियों के हाथों बिकती जाती है। 'पहरेदार के नाम' मदन कश्यप की पहली प्रकाशित कविता है। यह कविता आपातकाल के दौरान लिखी गयी थी और उसी वर्ष 'पुरुष' के पांचवें अंक में प्रकाशित हुई थी। अँधेरे समय में किरण की एक झलक की उम्मीद ही नहीं सत्ता की क्रूरता का विरोध भी मौजूद है।

"मेरी भाषा अभी भी चीख के रूप में बची हैं
पहरेदार पर तुम तो बिल्कुल गूंगे बना दिए गये हो।"[10]

2017 में लिखी गयी एक कविता 'तब भी उसने प्यार किया' में मदन जी कहते हैं कि प्यार बाजार, चमक, या दिखावे का मोहताज नहीं है, प्यार में जीता जागता कवि परिवेशगत दिखावे की दुनिया से दूर रहता है। इस भावबोध की कविता 'प्रेम में हत्या' का पाठ किया जा सकता है–

"कब कितनी मारी गयी
लड़कियों का तो कुछ पता ही नहीं चला
इतने तरीके हैं उनको मारने के
कि जानना मुश्किल
जिनके जीने की पहचान न हो
उनके मारे जाने की क्या पहचान।"[11]

मदन कश्यप की कविताएं अपने सघन और प्रखर राजनीतिक चेतना और निर्भीकता के साथ तरल स्त्री विविध संवेदनात्मक संरचना और अस्मिता की पहचान की कविता है। अँधेरा दूर करने से कम महत्पूर्ण नहीं है अँधेरे की शिनाख्त करना। यहाँ कवि स्त्री शोषण और दमन के मूल में समाज की सामंती और क्रूर मानसिकता को कटघरे में खड़ा करता है। इस महत्वपूर्ण कविता में क्रूर पितृसतात्मक और सामंती सोच को उजागर किया गया है। इस कविता में धरती के शेष नागरिकों यानि मानवेतर। प्रकृति से कवि स्त्री संवेदना और खुद को जोड़ता है। मानवेतर प्रकृति से मदन जी का वैसा ही आवयविक सम्बन्ध हैं जैसा मनुष्यों से। पाब्लो नेरुदा का कथन, जीवन में प्रेम ही हमें बचा सकता हैं। मदन कश्यप गहरे अर्थो में सघन राजनीतिक चेतना के कवि हैं। प्रहार और संघात के समानांतर जनता के प्रति गहरा लगाव, अपनी जड़ों से जुड़ाव, मनुष्यता की उच्चतम् भावों का स्वीकार्य भी हैं। तभी वह कहता हैं -

"भूमि और पर्वत की तरह आसान नहीं हैं
आदमी को पराजित करना।"[12]

मदन जी इस भयावह अमानुषिक परिस्थितियों में प्रेम को बचा लेने की बात करते है। इस षड्यंत्रकारी सामंती शोषण के खिलाफ .चुप्पी के खिलाफ प्रतिरोध की आवाज बनते हैं। यहाँ नदी, पंछी, और दरख़्त स्त्री के दुःख और रुदन को महसूस करते हैं, मनुष्य को तो पता भी नहीं चला कहकर कवि मनुष्य के संवेदनशीलता की घोर अभाव और जड़ता की ओर संकेत किया है। महिलाओं अल्पसंख्यक सहित समाज की बड़ी आबादी की संभावित ऊर्जा को राष्ट्र निर्माण में नहीं लाया जा सका है इसके पीछे पितृसत्ता के स्वार्थ छुपे हैं। समय और समाज का स्पंदन पकड़ते हैं इस कविता की तीव्रता, बेचैनी, खालीपन के पीछे उस गहरी स्त्री की संवेदना और तरल मानवीय लगाव से है। कविता से गुजरते हुए नया काव्यलोक जैसे खुलने लगाता। मदन जी की स्त्री चेतना में

संवेदना, स्वप्न और बिद्रोह का बेहतर समन्वय मिलता है। इस वैश्विक टोले में अपना गाँव और हमारी संवेदना कहीं खो गयी है। `पनसोखा है इंद्रधनुष` संग्रह की इस कविता को देखा जा सकता है -

मनुष्यता के हित संघर्ष की यह कविता अपनी उम्मीद नहीं छोड़ती और लगातार उस वृहत्तर शोषित आम जन के पक्ष में खड़ी होती है। मदन कश्यप अपनी पूरी काव्य–यात्रा में मानवीय पक्षधरता को अपनी कविता का लक्ष्य बनाते हैं, और उन्होंने संघर्षरत जनता की वेदना को स्वर दिया है –

"दुःख इतना था उसके जीवन में कि
प्यार में भी दुःख ही था
उसकी आँखों में झाँका
दुःख तालाब के जल की तरह ठहरा हुआ था।"[12]

उम्मीद की प्रतीक्षा करते-करते दुःख इतना सघन होता चला गया है कि यातना में परिवर्तित हो गया है और अब तो वह देह को ढँकने का कपड़ा ही बन गया है।

"रक्षा करना माता पोचम्मा
रक्षा करना करना
हमारी फसलों की रक्षा करना
हमारे बच्चों की रक्षा करना।"[13]

'एक दलित प्रार्थना' शीर्षक से यह कविता अपनी रचनात्मक प्रतिरोध की बेजोड़ कविता है। यह कविता धीरे- धीरे मन पर उतरती है। इस कविता संग्रह की एक जरूरी कविता है फिर लोकतंत्र। यह कविता मूल्यों के पतन को लेकर लिखी गई है। लोकतंत्र भले ही एक देश की राजनीतिक व्यवस्था है जिसके बुनियाद पर देश आगे बढ़ता है और इन्क्लूसिव तत्वों को प्राथमिकता देता है। फिर लोकतंत्र देश के सभी जन की अभिलाषा से जुड़ा स्वप्न है। इसी लोकतंत्र में ऐसी गिरावट देखने को मिलती है कि उसे भी लोग बिकाऊ समझने लगे हैं– "बिकता है सब कुछ बस खरीदने का सलीका आना चाहिए उसी उद्दंड विश्वास के साथ लोकतंत्र लोकतंत्र चिल्लाता है अभद्र सौदागर।"[14]

यह अभद्रता सिर्फ़ कुछ सौदागरों तक सीमित नहीं है। जन–जीवन में भी यह संक्रमण पसर चुका है और इस संक्रमण के रहते लोकतंत्र बिकाऊ प्रोडक्ट में तब्दील हो चुका है। लोगों के सपने कब के टूट चुके हैं और सहभाव खत्म हो चुका है। ऐसे में लोकतंत्र की समावेशी दृष्टि समाप्त हो चुकी है। इस तरह हम देखते हैं कि मदन कश्यप इस संग्रह में प्रेम और राजनीतिक चेतना के कवि रूप में दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. होता, अरुण, समकालीन कविता : चुनौतियां और संभावनाएं (2016), प्रथम संस्करण, सर्वप्रिय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 10

2. जोशी, राजेश, समकालीनता और साहित्य (2010), दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ सं 30

3-कश्यप, मदन, पनसोखा है इंद्रधनुष (2019), पहला संस्करण, सेतु प्रकाशन प्रा. लि., नोएडा, पृष्ठ सं 48

4-कश्यप, मदन, दूर तक चुप्पी (2014), पहला सं. सेतु प्रकाशन प्रा. लि., नोएडा यूपी, पृष्ठ सं 56

5-कश्यप, मदन, पनसोखा है इंद्रधनुष (2019), प्रथम संस्करण, सेतु प्रकाशन प्रा. लि., नोएडा यूपी, पृष्ठ सं 20

6-होता, अरुण, मदन कश्यप का कवि-कर्म (2023), प्रथम संस्करण, वाग्देवी प्रकाशन, नोएडा यूपी, पृष्ठ सं 25

7. यथोपरि, पृष्ठ सं 241

8. कश्यप, मदन, पनसोखा है इंद्रधनुष (2019), प्रथम संस, सेतु प्रा. लि., नोएडा यूपी, पृष्ठ सं 49

9. यथोपरि, पृष्ठ सं 52

10. यथोपरि, पृष्ठ सं 91

11. यथोपरि, पृष्ठ सं 67

12. यथोपरि, पृष्ठ सं 54

13. यथोपरि, पृष्ठ सं 46

14. यथोपरि, पृष्ठ सं 92

संपर्क : प. बंगाल राज्य विश्व विद्यालय, बारासात, **जिः** नोर्थ 24 परगना,
कोलकाता-700126 **मो.** 6389946636

नवगीत पर डॉ. शान्ति सुमन से मोहन कुमार का संवाद, डा. मोहन कुमार

-मोहन कुमार

प्रश्न- अपने गीत-रचना यात्रा के बारे में बताएँ? आपने किन कारणों से अपने सृजन के लिए गीत-विधा का चयन किया?

उत्तर- मैं अपने रास्ते पर चलने वाली कवयित्री हूँ। गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। क्रांति विचार से आती है। गीत जन-भावना को सुरक्षित रखने का सबसे सशक्त माध्यम है। आग उगलती समस्याओं के बीच जिन्दगी की, संवेदनाओं की, जन-भावनाओं की तथा मनुष्यता के हरेपन की लय को बनाये रखने की कोशिश मैंने गीतों के माध्यम से की है। गांव,परिवार तथा मानवीय रिश्ते मेरे गीतों को उर्जा प्रदान करते हैं। अपने जीवन के संघर्षों ने मुझे सदैव काव्य-सृजन के लिए प्रेरित किया। जब मेरा मन संघर्षों से जूझता रहा है और आस-पास की परिस्थितियाँ भी मुझको कसने का ही काम करती रही हैं तब अनायास गीतों ने ही मेरे द्वन्द्वों और तनावों से मुझको मुक्त किया है। गीत मेरे लिए मनोरंजन का माध्यम नहीं बल्कि संघर्षरत श्रमजीवी जनता की तरह वह मेरे जीवन-संघर्ष में भी औजार की तरह रहा है। गीत मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों में गीत हमारी आत्मिक आवश्यकता है। गीत में हमारी मनुष्यता और जनवादिता सुरक्षित रहती है। गीतों के अवयवों में विन्यस्त माधुर्य, संवेदनशीलता तथा गंभीरता और आत्मीय संस्पर्श आदि विशेषताओं के कारण मैंने गीत को अपने लेखन का मूल माध्यम बनाया।

गीत और कविता को पढ़ाते हुए प्रारंभ में ही यह महसूस हो गया कि गीत-रचना कविता लेखन की तरह आसान नहीं है। मेरी कविता यात्रा विशेषकर गीत-यात्रा की शुरुआत बचपन में ही हो गई। माध्यमिक शिक्षा के समय मैंने गीत लिखना शुरू किया था। 1960 के बाद उसको स्तरीय और स्थायी संयोग मिला। मैंने कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक, असम से लेकर उत्तर प्रदेश, उड़ीसा तक देशभर में अनेक जगहों पर कवि-सम्मेलनों में काव्य-पाठ किया। लगातार यात्रा करते रहने के कारण मुझे आर्थिक नुकसान भी हुआ लेकिन कविता के सामने मैंने कभी पैसे को महत्व नहीं दिया, क्योंकि कविता ही हमको बड़ा मनुष्य बनाती है और बड़ा मनुष्य ही बड़ा कवि या रचनाकार होता है। मेरे गीतों ने ही मुझे बनाया और अपार प्रतिष्ठा दिलायी। लोगों ने मुझे बहुत स्नेह और सम्मान दिया।

प्रश्न-आपने अभी कहा कि आप अपने रास्ते पर चलने वाली कवयित्री हैं। तो यह बताइए कि बचपन में आपको किस कवि को पढ़ना ज्यादा अच्छा लगता था अर्थात् किस कवि को पढ़-सुनकर आपको कविता लिखने का मन हुआ?

उत्तर- मैं गांव में पैदा हुई। मेरे गांव के बगल में एक गांव था बाराही। मेरे चाचा जी वहां बाराही के पुस्तकालय से किताबें पढ़ने के लिए घर लाते थे और मैं उन सभी किताबों को पढ़ती थी। इस तरह जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविताएं और गीत पढ़ती थी। उस समय मैं पांचवी कक्षा में पढ़ती थी। कुछ ज्यादा तो समझ नहीं पाती थी परंतु पढ़ती खूब थी। इस समय से कविता के प्रति मेरी अभिरुचि गाढ़-गाढ़ प्रगाढ़ होती गई। जो समझ में नहीं आने वाली चीज होती थी, उनको भी समझने के प्रयास में उनके प्रति मैं ज्यादा आकर्षित होती गई। यहीं से मेरी कविता में रोमान आया। मेरी कविता में जो रोमांटिक स्पर्श है वह भी यहीं से इसी पढ़ने-लिखने के मूल्य के कारण आया। साहित्य के प्रति मेरी रुचि इतनी अधिक थी कि गणित में मुझे रेखागणित के अंक से पास होना पड़ता था जबकि साहित्य मुझे अधिकतम अंक मिलते

थे। बचपन में महादेवी वर्मा के गीतों का प्रभाव मुझ पर अधिक पड़ा जबकि प्रसाद रचित 'आंसू' के दुखांत भावों की रचनाओं ने हृदय को स्पर्श किया। निराला के 'भिक्षुक' और 'भारति जय विजय करे' जैसे गीतों ने मन को उस समय आन्दोलित किया। अर्थात् मुझे सभी कवियों की कविताएं और गीत को पढ़ना पसंद था परंतु गीत-लेखन में मैंने किसी का अनुकरण नहीं किया।

प्रश्न- आपके साथ मंचों पर और कौन-कौन से कवि-गीतकार होते थे?

उत्तर- उस दौर के सारे कवि-गीतकार बहुत प्रतिष्ठित और चर्चित रहे हैं। गीत-विधा में उन सभी का महत्वपूर्ण अवदान है। प्रसिद्ध गीतकार जानकी वल्लभ शास्त्री और उमाकांत मालवीय मंचों पर मेरे वरिष्ठ और मार्गदर्शक थे। रमेश रंजक, माहेश्वर तिवारी, सोम ठाकुर और उमाशंकर तिवारी आदि गीतकार साथ के थे। बुद्धिनाथ मिश्र मंच पर मुझसे कनिष्ठ गीतकार थे। बाद में नचिकेता भी आए। प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के साथ भी मैंने मंच साझा की है।

प्रश्न-आपने महादेवी वर्मा के साथ काव्य-पाठ किया है और मंच साझा की है। कैसा अनुभव रहा? कोई विशेष बात जो अभी याद आ रही हो ?

उत्तर- मैंने उस जमाने के कई बड़े-बड़े कवियों, गीतकारों और साहित्यकारों के साथ मंच साझा किया है। एक बार आकाशवाणी-दूरदर्शन वालों ने लखनऊ में एक युवा लेखिका सम्मेलन आयोजित किया था। उसमें देशभर से तीन सौ के करीब कवयित्रियाँ आईं थीं। उन कवयित्रियों में मैं सबसे कम उम्र की थी। उस आयोजन में छठवें दिन 'नारी-विमर्श' पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। मंच पर महादेवी वर्मा के साथ डॉ कमला रत्नम, डॉ रमा सिंह, शशिप्रभा शास्त्री और मैं बैठी थी। बीज वक्तव्य महादेवी जी को देना था। अपने बीज वक्तव्य में महादेवी जी ने एक गलती कर दी (मेरे मतानुसार)। उन्होंने कहा कि- आज के समय में देश में जो अमानवीयता, हिंसा, क्रूरता, संबंधों का घालमेल आदि है, उसके मूल में मातृतत्त्व का ह्रास है। बाकी वक्ताओं ने महादेवी वर्मा के इस कथन के पक्ष या विपक्ष में ठीक ढंग से अपनी बात भी नहीं रखी। जब मेरी बारी आई तो मैंने कहा कि- 'महादेवी वर्मा ऐसी कवयित्री हैं जिनको पढ़-पढ़के सदियां कविता सीखेंगी, गायेंगी, कविता का मूल्य समझेंगी। परन्तु उनका यह कथन कि आज देश में अमानवीयता, हिंसा और क्रूरता का वातावरण मातृतत्त्व के ह्रास के कारण है अशोभनीय है। महादेवी जी का यह कथन एक अन्याय है और अक्षम्य है। उनका यह कथन मां की प्रतिष्ठा को कम करने वाला है, क्योंकि हर मां सेठों- पूंजीपतियों की मां, बहन, बेटी नहीं होती हैं। कुछ मां ऐसी भी होती हैं जो पीठ पर बच्चों को बांधकर खेतों में धान रोपती हैं, ईंट के भट्ठे पर बच्चों को छाती से चिपकाकर माथे पर ईंट ढोती हैं, जंगल में लकड़ी चुनने जाती हैं, स्वयं आधा पेट खाती हैं परंतु बच्चों को भरपेट खिलाकर सुलाती हैं। इसलिए मां की संवेदना इतनी कातर नहीं हो सकती कि उसका ह्रास हो जाए। मैं उनके इस कथन का तिरस्कार करती हूँ।' पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। सभी ने मेरी बात का समर्थन किया। कार्यक्रम के बाद महादेवी वर्मा जी से मेरी देर तक बातचीत हुई। उन्हें भी अपनी भूल का एहसास हुआ और वह भी मेरी बातों से सहमत हुईं।

प्रश्न-नवगीत में पारंपरिक गीत से क्या अलग है?

उत्तर- इसका उत्तर गीत के शिल्प से जुड़ा है। लोग जब नवगीत के शिल्प को लेकर आगे बढ़े तो पारंपरिक गीत पीछे छूट गया और वह पुराना लगने लगा। पारंपरिक गीतों में शिल्प की मर्यादा शिथिल थी। बिम्ब, प्रतीक, उपमान, मुहावरे यह सब नवगीत के अलंकार हैं। ये सब गीत में नहीं मिलेंगे। गीत बहुत सीधे-सपाट ढंग से लिखे जाते थे। उसमें व्यंजना नहीं होती थी। नवगीत ने पूरी तरह अभिधा, लक्षणा, व्यंजना को अलग कर काव्य शक्तियों का उद्धार कर दिया। नवगीत व्यंजनामूलक अधिक है। नवगीत में अभिधा का पूरी तरह तिरस्कार है। वह अभिधा को कविता मानता ही नहीं है। गीत मनः

स्थितियों का काव्य है, उसमें शब्दों के ध्वन्यात्मक सौंदर्य और अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। नवगीत गीत को नयी दृष्टि से देखने, सोचने और लिखने का गुरूतर कार्य है। अछूते बिंबों की उपस्थिति, उपमा, रूपक की ताजगी और भाषा की सादगी के कारण भी नवगीत पूर्ववर्ती पारंपरिक गीतों से अलग है। तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण नवगीत में तनाव, पीड़ा, पराजय, कुंठा और रंगीन सपनों की उपस्थिति अधिक दिखाई पड़ती है। नवगीत में मध्यवर्गीय त्रासदी अधिक है क्योंकि अधिकांश नवगीतकार मध्यवर्ग से आए थे। नवगीत का आगमन गीत रचना की अनिवार्य परिणति है, जिसके कारण नवगीत का तेवर भी पारंपरिक गीतों से भिन्न दिखाई पड़ता है। पारंपरिक गीतों की तुलना में नवगीत की पुनर्नवता को सभी ने एक मत से स्वीकार किया।

प्रश्न- जनगीत और नवगीत में मुख्य रूप से क्या अंतर हैं?

उत्तर - उन दिनों जो किसान और नक्सलबाड़ी आंदोलन हुआ, उसके प्रभाव में और मजदूरों के हौसले को बढ़ाने के प्रयास में जनगीत आया। जनगीत में गीत लिखने की शब्दावली और उसका मोटो अर्थात् उद्देश्य दोनों बदल गया। नवगीत रचना का मुख्य वैचारिक आधार जहां आधुनिकतावाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद है, वहीं जनवादी गीत रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन-दृष्टि और सर्वहारा विश्व-दृष्टिकोण से युक्त समाजवादी यथार्थवाद है। नवगीत के मध्यवर्गीय जन-जीवन की निराशा और असमंजस के बजाय जनगीत संघर्षशील मेहनतकश जनता की मुक्ति कामना का उद्घोष है। नवगीत जिस सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन का एहसास कराता है, जनगीत उनकी उत्पत्ति के कारणों की तलाश करता है और मुक्त होने के रास्ते भी खोजता है। वैचारिक अंतर्वस्तु की उपरोक्त भिन्नता के साथ ही जनगीत का शिल्प, रूप, भंगिमा और तेवर भी नवगीत से अलग हैं। जनगीत में जाने-पहचाने और जनसंघर्षों के बीच से बिंबों और प्रतीकों का चुनाव किया गया। जनवादी गीत- रचना की रचना-प्रक्रिया काफी जटिल और दुहरी होती है। अनुभूति की सघनता, भावों की गहराई और आकार में संक्षिप्तता पर जनगीत में बल दिया जाता है। जनगीत में क्रांतिकारी वैचारिक अंतर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अंतर्वस्तु के साथ मिलाकर प्रस्तुत करना पड़ता है। नचिकेता जैसे कुछ उथले जनगीतकारों ने जनगीत में जबरदस्ती कुछ खास तरह के शब्दों का बार-बार प्रयोग किया है। परंतु विचार हथौड़ा से नहीं आता है और न क्रांति करछी-कुदाल से होती है। क्रांति विचार से होती है। विचार की भूमि ही क्रांति की जननी है। जनवादी गीतों में विचार से क्रांति लाने का प्रयास है, न कि हंसिया-हथौड़ा से। जनगीत ने आधी दुनिया को परिचालित किया। सामंतों और उच्च मध्यवर्ग से इतर यह पूरी दुनिया जनगीत की है। ये किसान-मजदूर, शोषित-पीड़ित, गरीब-कमजोर वर्ग– ये सब जनगीत के केन्द्र में हैं।

प्रश्न- आप स्वयं को नवगीतकार मानती हैं या जनगीतकार?

उत्तर- यह बहुत पीड़ादायक प्रसंग है। इसके लिए मैंने बहुत मूल्य चुकाया है। जनगीत लिखने के लिए मैंने बहुत आलोचनाएं सुनीं। मेरे नवगीतों की प्रशंसा में जिस डॉ सुरेश गौतम ने कभी कहा था कि- शांति सुमन के नवगीत के आगे दूसरे नवगीतकार पासंग भर भी नहीं होते हैं, वही डॉ सुरेश गौतम ने मेरे बारे में लिखा कि- शांति सुमन ने अपना बिंब अपने हाथों तोड़ा है, ये अब नवगीत नहीं जनगीत लिखने लगी हैं। यह बात उन्होंने व्यंग्य में कही क्योंकि शायद उनको मेरा जनगीत लिखना पसंद नहीं था और जनगीत की कोई परिभाषा उनके मन में नहीं थी। वस्तुतः जनगीत को कमतर आंकने का कारण मजदूरों- किसानों पर गीत लिखने से रोकने का प्रयास था। सच्चाई यह है कि ये मजदूर, ये किसान नहीं रहेंगे तो केवल उच्च मध्यवर्ग और सामंत क्या करेंगे? मजदूरों- किसानों के दम पर

दुनिया चलती है। इसलिए जनवादी गीत लेखन जरूरी था। मेरे गीत लेखन का आरंभ नवगीत लिखने से हुआ परंतु मैंने नवगीत और जनगीत दोनों ही लिखे हैं। तथा मेरे लिखे नवगीत और जनगीत दोनों को ही स्वीकृति और प्रसिद्धि प्राप्त हुई। बाद में लोगों ने यहां तक कहा कि–एक शान्ति सुमन ही है जिसने नवगीत और जनगीत दोनों पर साधिकार अपनी कलम चलाई है।

प्रश्न- गीत में तुक अनिवार्य है? या क्या तुक गीत-नवगीत का अनिवार्य अंग है?

उत्तर- गीत में तुक का दूसरा परिपेक्ष है। गीत में जिसे तुक कहा जाता है, नवगीत में उसको टेक कहा जाता है। टेक नवगीत के लिए अनिवार्य नहीं है जबकि गीत के लिए वह (तुक) अनिवार्य है। गीत में जब तक तुक नहीं मिलेगा तबतक गीत नहीं होगा। जबकि नवगीत में जहां भी टेक मिलेगा, वहीं नवगीत अपने को प्रतिफलित कर लेगा।

प्रश्न-क्या इस समय गीत की धारा कमजोर लग रही है? इसके पीछे आपको क्या कारण लगता है?

उत्तर- नहीं! गीत की धारा कमजोर नहीं हुई है। गीत की उपादेयता थोड़ी कम हुई है। गीत में मानसिक व्यायाम ज्यादा होता है। कविता को पढ़कर हम जो समझते हैं, वही गीत को पढ़कर नहीं समझते हैं। अर्थात् जब कविता में सबकुछ गद्य की तरह बांच दी जाती है तो उसको हम आसानी से समझ लेते हैं लेकिन गीत को समझना पड़ता है। यही अंतर है। कई कवियों की कविता भी गीतात्मक लगती है क्योंकि उसमें भी छंदानुशासन का पूरी तरह अनुकरण किया जाता है। गीत-रचना में अनुभूति के साथ ही विचारों और समस्याओं को भी अभिव्यक्त करने की भरपूर क्षमता होती है। जिस रचनाकार में प्रतिभा और जीवन की गहरी पकड़ होती है उसके गीत सशक्त और सक्षम होते हैं। गीत विधा चिरन्तन है। आदिकाल से लेकर आज तक यह सतत प्रवाहित है। हर समय का अपना एक सच होता है और गीत की विशेषता है कि वह समय के साथ चलता रहा है। युगबोध के कारण गीत में परिवर्तन भी होते रहे हैं। समयानुकूल होना गीत के दीर्घायु होने का सबसे बड़ा कारण है।

प्रश्न- आपके गीतों में गांव-घर और पारिवारिक रिश्ते बार-बार आते हैं!

उत्तर- हाँ, मेरे गीतों में ये विशेषताएं खूब हैं। गांव,घर की पावन स्मृति और पारिवारिक रिश्तों का सौंदर्य मेरी रचनात्मक ऊर्जा के स्रोत हैं। इस तरह के गीतों से मुझे खूब प्रसिद्धि और प्रशंसा मिली। 'मां की परछाईं-सी लगती/गोरी-दुबली शाम/ पिता-सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम', 'दरवाजे का आम-आंवला/घर का तुलसी-चौरा/ इसीलिए अम्मा ने अपना/ गाँव नहीं छोड़ा', 'धीरे पांव धरो/आज पिता-गृह धन्य हुआ है/मंत्र सदृश उचरो!/तू अम्मा के घर की देहरी/बाबूजी की शान/तू भाभी के जूड़े का पिन/ भैया की मुस्कान'- आदि गीतों से मेरी विशिष्ट पहचान बनी।

प्रश्न- अपने संघर्ष के दिनों को किस प्रकार याद करती हैं? परिवार के सदस्यों का कितना सहयोग रहा?

उत्तर- मेरा जीवन संघर्षों से भरा रहा है। यह कहना ठीक होगा कि पूरा जीवन ही संघर्षमय रहा है। गांव में पढ़ाई से लेकर, विवाह, पीएचडी, नौकरी की भागदौड़, कवि-सम्मेलनों की यात्राएं, घर-परिवार, बच्चों की देखभाल, अध्यापकीय दायित्व - एक तरफ जहां ज़िन्दगी की पूरी यात्रा ही संघर्षों से भरी रही, वहीं दूसरी तरफ परिवार के लोगों का सहयोग भी मिलता रहा। मैं जीवन में जो कुछ भी हो सकी उसका बहुत सारा श्रेय मेरी दादी को जाता है। मेरे पति ने भी हर कदम पर मेरा भरपूर साथ दिया। मेरी मेधा को बचाने और बढ़ाने के लिए मेरे पति ने अपना सब कुछ खपा दिया। मेरी सुविधा के लिए उन्होंने अपनी नौकरी में कभी प्रमोशन तक नहीं लिया। पुत्र अरविंद, पुत्री डॉ चेतना वर्मा, बहू डॉ विशाखा वर्मा के होने से मेरे घर-आंगन में रौनक है। शालीना, श्रेयसी, अपूर्व और ईशान मेरे तप के सुफल हैं।

प्रश्न-जीवन में साहित्य का विशेषकर गीतों की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है?

उत्तर-गीत ही है जो आदमी को श्रम करने की प्रेरणा देता है। जब हम थक जाते हैं, जब हम निराश और उदास होते हैं, जब हमको लगता है कि अब हम कहीं के नहीं रहे, वह जो निरुपाय वाली स्थिति है, उससे गीत हमारी रक्षा करता है। मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मरण तक गीत की उपस्थिति है। हर्ष-उल्लास, सुख-दुख, पर्व-त्योहार आदि अवसरों पर भी आदमी गीत ही गाता है। इसलिए गीत की सीमा निर्धारित नहीं हो सकती। गीत असीम है। गीत व्यंजनाहीन अर्थात व्यंजना से ऊपर है। व्यक्तिगत जीवन में गीत ने मुझे टूटने से बचाया है। गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। जब मर्यादा और अनुशासन आडंबर बनने लगे, संस्कृति धीरे-धीरे विदा होने लगे, विचार निर्माण के पूर्व ही समाप्त होने लगे, चुनौतियों से भरे ऐसे कठिन समय में गीतों में ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है, उसी में मनुष्यता सुरक्षित रह सकती है। इसलिए जीवन में गीत की व्यापक और महत्वपूर्ण भूमिका है।

प्रश्न- आपका पसंदीदा गीत जो आपके मन के बेहद करीब हो, जिसको आप गुनगुनाती हों?

उत्तर- मैंने बहुत सारे गीत लिखे हैं। मेरा एक बहुत प्रसिद्ध गीत है - 'केसर रंग रंगा मन मेरा / सुआपंखिया शाम है/बड़े प्यार से सात रंग में/ लिखा तुम्हारा नाम है।' यह गीत मुझे बहुत पसंद है। इस गीत को मैं बहुत गुनगुनाती थी। कवि सम्मेलनों के मंच पर भी लोग इस गीत को सुनाने की फरमाइश करते थे। मेरे गीत संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' में एक गीत है- 'फटी हुई गंजी ना पहने/खाये बासी भात ना/ बेटा मेरा रोते, मांगे/ एक पूरा चन्द्रमा।'- यह गीत भी मुझे बहुत प्रिय है। इसी तरह मेरा एक प्रिय गीत है- 'हाथों में एक दो मूंगफली/और कुछ अंतरंग बातें/सांसों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।' - यह गीत भी खूब प्रसिद्ध हुआ। लोगों ने इस गीत के विषय में कहा कि प्रेम को महानगर के पार्कों में ले जाने वाली शान्ति सुमन हैं। इसका अर्थ यह कि चोरी-छुपे का काम नहीं होता प्रेम। अर्थात प्रेम सामाजिक होता है।

प्रश्न- गीत के भविष्य को लेकर आप आश्वस्त हैं? गीत का भविष्य किस प्रकार दिखाई पड़ता है?

उत्तर- ये आग पर चलने के बराबर है। ऐसा इसलिए क्योंकि लोगों की, कवियों की, भावकों की, आलोचकों की, पसंद करने वालों की जो नयी पीढ़ी आ रही है, उसमें लोगों के पास गीत को समझने की मार्मिकता नहीं है। लोग अपनी संवेदना को उस खुरदुरे रास्ते पर ले ही नहीं जाना चाहते हैं कि वे उस बात को भी समझ सकें। इसलिए हमको लगता है कि गीत थोड़ा मर्माहत होगा। फिर भी गीत के चाहने वाले बने रहेंगे। आप जब किसी से प्रेम करते हैं और कोई कविता ढूंढ़ते हैं तो वो प्रेमगीत ही होता है, वो कविता नहीं होती है। अगर कविता होती भी है तो गीत में जो मार्मिकता होती है; प्रभाव की क्षमता होती है, वह उस कविता में नहीं होती है। गीत-विधा में अपार संभावनाएं भी हैं। इसलिए गीत का भविष्य पूरी तरह सुरक्षित और उज्ज्वल है।

संपर्क : मोहन कुमार, शोधार्थी हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी, **मो.** 7839045007

मुक्तांचल पत्रिका ने 10 वर्ष पूरे किए

3 मार्च (कोलकाता/हावड़ा) : पश्चिम बंगाल के हावड़ा जिले से प्रकाशित होने वाली हिंदी की साहित्यिक पत्रिका मुक्तांचल ने अपने प्रकाशन के 10 वर्ष पूरे कर लिए हैं। मुक्तांचल ने रविवार 3 मार्च को अपने संयुक्तांक (जुलाई-दिसंबर 2023, अंक 39-40) के लोकार्पण के साथ ही यह उपलब्धि हासिल कर ली है। मुक्तांचल के 10 वर्ष की पूर्ति के उपलक्ष्य में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में पश्चिम बंगाल के कई वरिष्ठ साहित्यकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। कार्यक्रम के आरंभ में मुक्तांचल पत्रिका की संपादक डॉ. मीरा सिन्हा ने मुक्तांचल के पिछले एक दशक की यात्रा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि मुक्तांचल पिछले एक दशक से साहित्यिक अभिव्यक्ति और बौद्धिक चर्चा को बढ़ावा देने के लिए अपनी प्रतिबद्धता के साथ कार्य कर रहा है।

डॉ. प्रकाश अग्रवाल (खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल) ने सोशल मीडिया के युग में साहित्य के सामने आने वाली समकालीन चुनौतियों को रेखांकित करते हुए कहा कि आज डिजिटल आकर्षणों के बीच साहित्य के मूल्य को बचाए रखने की आवश्यकता है। उन्होंने फेसबुक और व्हाट्सएप जैसे प्लेटफार्मों पर साहित्यिक कृतियों के तुष्टिकरण पर खेद व्यक्त किया और छात्रों से साहित्यिक लेखन के मानकों को बनाए रखने का आग्रह किया। डॉ. विजया सिंह (रानी बिरला गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता) ने शिक्षा में नवाचार और अनुकूलन के महत्व पर बल दिया। सीखने के अनुभवों को बढ़ाने के लिए आधुनिक उपकरणों और माध्यमों के एकीकरण की वकालत की। उन्होंने शिक्षकों से पारंपरिक सीमाओं को पार करने और फेसबुक और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे माध्यमों के माध्यम से शिक्षा के नए दृष्टिकोणों को अपनाने का आग्रह किया।

डॉ. विनय मिश्र (बंगवासी कॉलेज, कोलकाता) ने पत्रिका के पहुंच को विस्तार देने के लिए सोशल मीडिया और शैक्षणिक नेटवर्क के महत्व को उजागर किया। डॉ. स्नेहा सिंह (वूमेंस कॉलेज, कोलकाता) ने शिक्षा के क्षेत्र में नवीनता के आग्रह और पुरानी परिपाटी के परित्याग पर बल दिया। रितेश पांडेय (रंगकर्मी, नीलांबर) ने आज के विद्यार्थियों के तकनीकी क्षमताओं की सराहना की और साहित्यिक अभिव्यक्ति में नवाचार को प्रोत्साहित करने पर बल दिया। डॉ. पंकज साहा (खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल) ने साहित्य और शोध को बढ़ावा देने के लिए मुक्तांचल पत्रिका के प्रयासों की सराहना की। डॉ. सत्या उपाध्याय (प्रधानाचार्या, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता) ने मुक्तांचल पत्रिका को 10 वर्ष पूरे करने के लिए शुभकामनाएं देते हुए राज्य के विभिन्न कॉलेजों के पुस्तकालयों में पत्रिका रखवाने और कविता कार्यशाला आयोजित करने का प्रस्ताव रखा।

आज की संगोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. ऋषिकेश राय (सचिव टी बोर्ड, कोलकाता) ने रोजगारोन्मुखी साहित्य के प्रकाशन पर बल दिया और भारतीय भाषाओं के अनुवाद साहित्य पर चर्चा की।

इसके अतिरिक्त शुभ्रा उपाध्याय (खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता), प्रिया श्रीवास्तव, सरिता खोवाला, आकाश गुप्ता, प्रिंस मिश्रा आदि ने भी अपने विचार रखें। अक्षिता साव ने अपनी स्वरचित कविता का पाठ किया। कार्यक्रम को सफल बनाने में बलराम साव, पद्माकर व्यास, नगीना लाल दास, युवराज सिंह आदि लोगों का विषेश योगदान रहा। कार्यक्रम का सफलतापूर्वक संचालन विनोद यादव ने किया। अंत ने धन्यवाद ज्ञापन विवेक लाल ने दिया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रतिवेदन

दिनांक 23/02/2024, शुक्रवार को ओड़िशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट के प्रांगण में विश्वविद्यालय हिंदी विभाग तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के संयुक्त तत्वावधान में 'पूर्वोत्तर भारत का लोक साहित्य' विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का सफलता पूर्वक भव्य आयोजन किया गया। संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र का शुभारंभ सरस्वती पूजन, स्वागत गीत तथा अतिथियों के स्वागत सत्कार से हुआ।

संगोष्ठी की अध्यक्षता ओड़िशा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट के कुलपति प्रो. चक्रधर त्रिपाठी जी ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में स्वामी माधवानंद महाराज जी तथा विश्वविद्यालय के कुलसचिव प्रो. नरसिंह चरण पंडा जी उपस्थित रहे।

स्वामी माधवानंद महाराज जी ने अपने उद्बोधन में अध्यात्म एवं लोक साहित्य पर चर्चा की। उन्होंने

भाषा की शक्ति को अप्रतिम बताया। एक सभ्य भाषा की परिकल्पना में लोक भाषा तथा समृद्ध संस्कृति के लिए लोक साहित्य के महत्वपूर्ण योगदान की बात की। साथ ही उन्होंने पूर्वोत्तर तथा भारतीय लोक भाषाओं को गरिमापूर्ण बताया।

इसके पश्चात विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित प्रो. नरसिंह चरण पंडा जी ने हिंदी को सम्पूर्ण भारत की भाषा बनाने तथा लोक साहित्य की एक नई परंपरा विकसित कराने का संदेश दिया।

मुख्य अतिथि के रूप में आभासी पटल के माध्यम से जुड़े केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक प्रो. सुनील बाबूराव कुलकर्णी जी ने भारतीय परंपरा में लोक की अवधारणा एवं इसके विकास पर चर्चा की। संगोष्ठी संयोजक प्रो. हेमराज मीणा जी ने पूर्वोत्तर राज्यों की भाषाएं , लोकभाषाएं, लिपियां तथा उसके साहित्य पर चर्चा की एवं अपनी अनुभूतियों को रखा ।

इसके पश्चात संगोष्ठी में खड़कपुर (प.बं.) से आए अतिथि प्रो. पंकज साहा जी ने बांग्ला लोक साहित्य तथा उसमें प्रतिवाद के स्वर पर चर्चा की।

अतिथि के रूप में पधारे डॉ. रंजन दास(क्षेत्रीय निदेशक, भुवनेश्वर) जी ने लोक साहित्य को एक विस्तृत परंपरा के रूप में बताया।

अंत में संगोष्ठी के अध्यक्ष माननीय कुलपति महोदय ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में लोक साहित्य की चर्चा करते हुए शोध विषयों के रूप में उसके महत्व को दर्शाया।

संगोष्ठी संयोजक तथा विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. चक्रधर प्रधान जी के धन्यवाद ज्ञापन के साथ संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र का समापन हुआ।

संगोष्ठी का द्वितीय सत्र पूर्वोत्तर तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों से पधारे विद्वानों के वक्तव्यों से पूर्ण रहा।

जिनमें श्रीमती मनोमाला हजारिका (जोड़हाट, असम), डॉ. नरसिम्हलु (आंध्रप्रदेश), डॉ चंद्रशेखर सिंह (छत्तीसगढ़), डॉ. एस. श्रीनिवास राव (तेलंगाना), श्री प्रेमचंद्र ओरांव (झारखंड), डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा (छत्तीसगढ़), डॉ. चक्रधर प्रधान (बरगड़, ओड़िशा), डॉ. देवाशीष कर्मकार आदि वक्ता के रूप में उपस्थित रहे। जिसकी अध्यक्षता प्रो. पंकज साहा ने की। उपर्युक्त विद्वानों ने अपने वक्तव्य से अपने-अपने प्रांतों के लोक साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की तथा नये-नये तथ्यों को उजागर किया।

संगोष्ठी का संचालन हिंदी विभाग के सहायक प्राध्यापक डॉ. मनोज कुमार सिंह ने किया।

संगोष्ठी में हिंदी विभाग के सहायक प्राध्यापक डॉ. मयूरी मिश्रा, डॉ. सौम्य रंजन दास, डॉ. सुनीत पासवान तथा डॉ. श्रीकांत आरले के साथ ही अन्य विभागों के प्राध्यापकगण भी उपस्थित रहे। साथ ही श्रोताओं के रूप में विशेष रूप से हिंदी विभाग के छात्र-छात्राएं उपस्थित रहे। संगोष्ठी को सुचारू रूप से संचालित करने में हिंदी विभाग के लिपिक श्री असीम जी, टंकक श्री गौरव जी, तकनीकी सहयोगी रश्मि रंजन जी आदि ने सहयोग किया।

प्रस्तुति : डॉ. मनोज कुमार सिंह, सह-प्राध्यापक : हिन्दी विभाग सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ ओड़िसा, कोरापुट,
पि. 763004 **मो.** 9434332256

केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

-प्रस्तुति डॉ. रंजन कुमार दास

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (भुवनेश्वर केंद्र) एवं पूर्वी क्षेत्रीय भाषा केंद्र (ERLC), भुवनेश्वर के संयुक्त तत्वावधान में "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ पूर्वी भारतीय भाषाओं की स्थिति और संभावनाएँ" विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 13-14 मार्च, 2024 को किया गया। इस संगोष्ठी में उद्घाटन और समापन सत्र को लेकर 6 सत्र चलाए गए, जिसमें 31 विद्वानों ने अपने विचार एवं प्रपत्र प्रस्तुत किए।

कार्यक्रम का उद्घाटन मुख्य अतिथि के रूप में पधारे पद्मश्री देवी प्रसन्न पट्टनायक, विशिष्ट भाषाविद्, संस्थापक पूर्व निदेशक, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर ने किया। मुख्य अतिथि और मंचस्थ विद्वानों द्वारा दीप प्रज्वलन किया गया। इसी समय डी.एम. स्कूल के छात्रों ने मंत्रोच्चार किया, तत्पश्चात् स्वागत गीत प्रस्तुत किया।

उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष डॉ. रंजन कुमार दास, क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, भुवनेश्वर केंद्र, मुख्य अतिथि पद्मश्री डॉ. देवी प्रसन्न पट्टनायक, विशिष्ट भाषाविद्, संस्थापक पूर्व निदेशक केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, विशिष्ट अतिथि प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल, प्राचार्य, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (NCERT), भुवनेश्वर, बीज वक्ता प्रो. बसंत कुमार पण्डा, परियोजना निदेशक, शास्त्रीय ओड़िया उत्कर्ष अध्ययन केंद्र एवं सह-संयोजक डॉ. संजय कुमार बाग, अध्यापक, पूर्वी क्षेत्रीय भाषा केंद्र, भुवनेश्वर आदि उपस्थित रहें। क्षेत्रीय निदेशक सत्राध्यक्ष ने अतिथियों का परिचय और सम्मान पुष्पगुच्छ और अंगवस्त्र से किया। अतिथियों के स्वागत में श्रीमती संगीता शर्मा एवं श्रीमती संगीता मिश्रा, बी.जे.ई.एम. स्कूल-2 ने सहयोग दिया।

प्रो. बसंत कुमार पण्डा ने पूर्वी क्षेत्र में ब्रिटिश समय लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा क्षेत्र में हुई अविरत परिवर्तन की धारा तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में अपने अनुभव पर प्रकाश डाला। पद्मश्री देवी प्रसन्न पट्टनायक जी ने कोठारी कमीशन से लेकर नई शिक्षा नीति-2020 तक राष्ट्र निर्माण शिक्षा नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका तथा अपना अनुभव एवं योगदान के बारे में बताया। प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल ने भारतीय भाषाओं एवं समावेशी शिक्षा के संदर्भ में अपना महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया। इन्होंने अपने वक्तव्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को चैप्टर वाइज विस्तार से समझाया तथा सामुदायिक पुस्तकालयों के प्रयोग पर बल दिया। सह-संयोजक ने धन्यवाद ज्ञापित किया। संचालन डॉ. चंद्र प्रताप सिंह ने किया।

उक्त संगोष्ठी में कुल 4 तकनीकी सत्र रहे। प्रथम सत्र "पूर्व भारत की जनजातीय भाषाएँ और हिंदी" विषय पर आधारित था। सत्राध्यक्ष डॉ. लक्ष्मीधर दाश, पूर्व प्राचार्य, HTTI, संबलपुर, मुख्य वक्ता डॉ. परमानन्द पटेल, राज्य सह-समन्वयक, जनजातीय अकादमी, भुवनेश्वर, वक्ता डॉ. गोविन्द चंद्र पेन्ठोई तथा आलेख वाचक सुश्री वर्षा साहु ने अपने प्रपत्र एवं विचार प्रस्तुत किए। द्वितीय सत्र "हिंदी और पूर्व भारतीय भाषाओं के अंतःसंबंध" पर आधारित था। सत्राध्यक्ष प्रो. सत्यनारायण पण्डा, प्रचार्य, हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, कटक, वक्ता/आलेख वाचक डॉ. चंद्र प्रताप सिंह, डॉ. चक्रधर प्रधान, डॉ. लोपामुद्रा बेहेरा, श्री पंकज मिश्रा, सुश्री शार्श्वती मिश्र, ने वक्तव्य रखा।

दिनांक 13 मार्च, 2024 को सायंकाल सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी किया गया जिसमें डी.एम. स्कूल की छात्रा सुश्री संगीता स्वाईं एवं शिक्षिका श्रीमती मेघना मोहंती ने ओड़िशी नृत्य प्रस्तुत किया। साथ ही सामूहिक संबलपुरी नृत्य भी छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया।

दिनांक 14 मार्च, 2024 को संस्थान गीत एवं संस्कृत में देशात्मबोध गीत के उपरांत सत्र आरंभ हुआ। तृतीय एवं चतुर्थ सत्र "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में पूर्वी भारतीय भाषाओं में शिक्षण की स्थिति और संभावनाएँ" विषय पर आधारित था। तृतीय सत्र की अध्यक्षता प्रो. संध्या साहू, अध्यक्ष, समाजिक विज्ञान मानविकी शिक्षा विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान (NCERT), भुवनेश्वर ने किया। वक्ता डॉ. मैरी हांसदा, विश्वभारती, शांति निकेतन, डॉ. अमूल्य रत्न महांति, डी.के.एन. कॉलेज, एरंच, कटक, डॉ. अभिषेक शर्मा, रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक, डॉ. गणेश रजक, टी.डी.बी. कॉलेज, रानीगंज एवं डॉ. विनोद कुमार, बारासात, कोलकाता ने वक्तव्य प्रस्तुत किया। चतुर्थ सत्र की अध्यक्ष प्रो. गीता दूबे, हिंदी विभाग, स्कॉटिस चर्च कॉलेज, कोलकाता, वक्ता/आलेख वाचक डॉ. शंभुदयाल अग्रवाल, डॉ. जानकी झा, सुश्री स्वाति तपन्विता राउत, सुश्री सइदा खातून एवं श्री सौरभ मिश्र ने वक्तव्य रखा।

समापन सत्र की अध्यक्षता प्रो. पंकज साहा, खड़गपुर ने किया। मुख्य अतिथि श्री अखिलेश्वर मिश्रा, प्राधानाध्यापक, डी.एम. स्कूल (NCERT), भुवनेश्वर, विशिष्ट अतिथि डॉ. अजित प्रसाद महापात्र, पूर्व प्राचार्य, HTTI, कटक ने अपना विचार व्यक्त किया। संगोष्ठी का प्रतिवेदन डॉ. चंद्र प्रताप सिंह ने किया। कार्यक्रम की सफलता केंद्रीय हिंदी संस्थान, भुवनेश्वर केंद्र के क्षेत्रीय निदेशक तथा कर्मचारी वर्ग श्री विवेकानंद विश्वकर्मा, श्री संतोष कुमार राणा, श्री अजय कुमार सिंह तथा श्री शेख नसीमुद्दीन एवं पूर्वी क्षेत्रीय भाषा केंद्र के डॉ. संजय कुमार बाग, श्री चितरंजन आचारी एवं कर्मचारी वर्ग के कठिन परिश्रम का परिणाम है। क्षेत्रीय निदेशक डॉ. रंजन कुमार दास द्वारा धन्यवाद ज्ञापन एवं राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

संपर्क : निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान (भुवनेश्वर केन्द्र), **भुवनेश्वर,** उडीसा, **मो.** 9604608980

इस पार तक.....

कुँवर नारायण

(19 सितम्बर, 1927 - 15 नवम्बर, 2017)

आह्वान

यह - 'आज' भी वैसा ही है
जैसा कोई 'आज' रहा होगा
इस आज से कहीं बहुत पहले।
तब भी पूरी दुनिया को
जीत लेने की हड़बड़ियों से लैस
निकलते रहेंगे
सजेधजे सूरमाओं के झुंड
और शाम को घर लौटते होंगे पस्त
दिन भर की धूल चाट कर
थकीमाँदी हताशाओं के बूढ़े सिपाही!
याद आतीं वे सुबहें भी
इसी तरह आँखें खोलतीं
ऐसी ही किसी उदासीन पृथ्वी पर
आह्वान करता हूँ
उस अपराजेय जीवनशक्ति का
उनकी प्रकट अप्रकट प्रतीतियों को
साक्षी बना कर
धारण करता हूँ मस्तक पर
एक धधकता तिलक।
और फैल जाता है
दसों दिशाओं में
भस्त हो कर मेरा अहंकार।

- वाजश्रवा के बहाने, 2008

RNI NO. WBHIN/2014/70173
POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

विद्यार्थी मंच की नई पहल

गाथा

गाथा प्रकाशन

अलग अकादमिक पहचान

हावड़ा विद्यार्थी मंच (8/2L No. 8053 of 20/3-2014) 6/2/1, आंशुतोष मुखर्जी लेन, सलकिया, हावड़ा - 711106 द्वारा प्रकाशित एवं गोपी कृष्ण पालुई, शिक्षण द्वारा 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा